रामनगरी

राम नगरकर

मराठी से अनुवाद
दामोदर खडसे



राधाकृष्ण

मॅजेस्टिक बुक स्टॉल, बम्बई
द्वारा प्रकाशित मराठी पुस्तक
'रामनगरी' का अनुवाद

1979

राम नगरकर,
पुणे

प्रथम हिन्दी संस्करण 1983

मूल्य 30 रुपये

प्रकाशक
राधाकृष्ण प्रकाशन
2 अंसारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली 110002

मुद्रक
शान प्रिंटर्स, शाहदरा दिल्ली 32

वसन्त बापट,
श्रीनाथ हगट
नीरू पुरे
और
सुधाताई वरे
को।
सादर-प्रणाम

जय-जयकार !

कोल्हापुर के पास की पहाडी पर विराजमान हैं महाराष्ट्र के कुल देवता 'जोतिबा' ! हर वर्ष चैत्र की पूर्णिमा को वहाँ विशाल तीर्थ मेला लगता है। 'जोतिबा'—बहुजन समाज के कुल-देवता ! तीर्थ मेले मे आधा महाराष्ट्र उमड पडता है।

इस तीर्थ मेले मे चारो दिशाओ से देवता की काँवरें आती है। ये काँवरें कांधे पर रखकर नचायी जाती हैं। काँवर नचाते-नचाते मन्दिर की परिक्रमा करते समय श्रद्धालु जन उन पर गुलाल नारियल चढाते हैं। भैरव की जय जयकार करते है।

काँवर नचाते समय, उन्हें सीधी रखने के लिए दस पाच लोग कावर के छोर म बँधी लम्बी रस्सी को पकडकर खडे रहते है। उनके चेहरे आसपास की भीड के कारण नही दिख पाते। कावर नचानेवाला की ही ओर सबका ध्यान केन्द्रित रहता है।

सारे महाराष्ट्र मे फैले प्रबुद्ध मराठी वाचको के समक्ष देवस्थान के सामने की रगभूमि पर, आज मैं अपनी काँवर कांधे पर रखकर नचाने के लिए खड़ा हूँ।

मेरी काँवर सीधी रखने के लिए जिन्होने बोझ की रस्सियाँ थामी हैं, उनके चेहरे भीड मे किसी को दिखायी नही देते, परन्तु मुझे हमेशा यह याद रहा है कि किसने कौन सी रस्सी थाम रखी है। याद रखना भी मेरे लिए बहुत आवश्यक है क्योकि उनकी सहायता के बिना मेरे लिए यह काँवर नचाना बिलकुल असम्भव था।

मेरे इस महत्कार्य मे राष्ट्र सेवादल के कुछ करीबी

गंगा भोंडवे, वसंत सबनीस, पुंडलिक नाईक, चंद्रकांत कावतकर, अनंत सालुंके, नंदा तिरोडकर, बाबुतात्या—तो हैं ही, 'मनोहर' साप्ताहिक के दत्ता मराफ और श्री भा० महाबल भी हैं।

इन सबका ऋण शब्दों में समाने योग्य नहीं है, क्योंकि इन्होंने यदि मदद न की होती, तो आपके सामने आज मैं जिस रूप में खड़ा हूँ, उस रूप में न रह पाता। किसी चौराहे पर या तो हजामत कर रहा होता, या खाली समय में दीवाल पर सीसी लगाता बैठा रहता, क्योंकि जाति का नाई हूँ न मैं!

28/622 लोकमान्यनगर,
पुणे-411030

—राम नगरकर

राम की 'रामनगरी'

काफी दिनों पहले मैंने हास्य-लेखन का हेतु स्पष्ट करते हुए कहा था कि 'दाढ़ी चिकनी होनी चाहिए, पर बनाते समय खरोंच नहीं आनी चाहिए। जिसकी दाढ़ी बनी है, उसे स्वच्छता अनुभव हो।' यह लिखते समय इसकी कल्पना भी न थी कि कभी सचमुच का कोई नाई हास्य विनोदी साहित्य लिखते समय इस प्रकार की कोई करामात कर जायेगा। राम नगरकर ने यह करामात बड़ी सहजता से कर दिखायी है।

राम नगरकर, नीलू फूले, दादा कोंडके—यह हमारी पुरानी मित्र-मंडली! हँसाने के धंधे वाली! जनता में 'नवकाल' के रूप में परिचित! इन तीनों के सिर्फ नाम लेने मात्र से पब्लिक खुश! तमाशा (लोकनाटक) से नाटक सिनेमा में गये, तो भी नवकाल की भूमिका से जुड़े हुए। सेवा दल में, कलापथक के लोकनाटक से हमारा लगाव! मेरा भी मूल धंधा वही है, परन्तु राम, नीलू, दादा अधिक प्रतिबद्ध। नीलू अभिनेता के रूप में अधिक गहरा इंसान। नहीं, इंसान के रूप में भी बहुत संवेदनशील!

वैसे इन तीनों में राम छोटा है, परन्तु राम ने एक अलग दुनिया में छलांग लगायी और जो चमत्कार कर दिखाया, वह अद्भुत! परसों संक्रांति के दिन नीलू फूले और राम नगरकर सुबह घर आये और राम ने 'तिलगुड़' के साथ 'रामनगरी' पुस्तक भी मेरे हाथों पर रख दी।

एक बार शुरू करने पर जिस पुस्तक को छोड़ने की इच्छा न हो, वह पुस्तक अच्छी—यह मेरी अपनी परिभाषा है अच्छी पुस्तकों के बारे में! सुनने की इच्छा बनी रहे, वह अच्छा गाना, देखते रहने को मन करे वह अच्छा नाटक और पढ़ने की इच्छा बनी रहे वह अच्छी पुस्तक, या जीते रहने की जहाँ चाह हो, वह अच्छा जीवन! राम ने इसी तरह जीते रहने की इच्छा से परिपूर्ण अपने जीवन की कथा लिखी है। उस जीवन की

खूब रगतदार पावती भी मिलती है।

नाई जाति मे जन्म लेने वाला राम का दादा कहता था, "हम ब्राह्मण के बराबर !" यह 'ब्राह्मणपन' लेकर जीते समय उसे मालूम होता है कि अपनी बहू अर्थात राम की माँ एक तमाशागीर (लोक नाटक मे काम करने वाले) की बेटी है। बूढा बिफरता है, "नाई जैसे कुल मे पैदा होकर यह धन्धा करना !" यह उसे स्वीकार नही था, "बजनिया नाई और मशालची नाइयो म हम ऊँचे।" और ऊँचे कैसे, यह कथा राम का दादा सीधे ब्रह्मदेव तक ले जाकर भिडा देता है। ब्रह्मदेव ने ब्राह्मण के हाथो मे कटोरी दी। वह भिक्षुक हुआ। नाई के हाथ मे जो कटोरी दी और उसमे पानी डाला तो उसने भगवान के हाथ का सुदशन चक्र लेकर उसकी धार से उनकी दाढी बनायी और बोला, "भगवन, मैं भूतल मे जाकर लोगो की ऐसी ही सेवा करूँगा। कटोरा सामने रखकर भीख नही माँगूगा (मेरी कटोरी म पानी तो सवत्र आबादानी !)। एक भगवान की पूजा करके भीख माँगकर जियेगा और दूसरा 'नाऊभीक' माँगकर जियेगा।" राम का दादा, आज की भाषा म कहें तो, असली स्वाभिमानी 'आइडेंटिटी' के साथ जीता था। उस बेचारे को 'डिग्निटी ऑफ लेबर' की यह कल्पना स्वय की पीढी फाक्ट करवा लेने वाले चतुर पुरोहित ने ही दी होगी। किसी भी तरह क्या न हो सारे गाँववालो की मुडियाँ अपने घुटना म दबाकर रखने वाला राम का नाई दादा, स्वय अपनी गरदन सीधी और तनी रखकर जिया। वह 'शान' राम के बाप मे भी उतरी थी। इस रामनगरी का राम का दादा, बाप, उसकी मौसियाँ, माँ—ये सारे लोग मन मे ऐसी ईर्ष्या जगा जाते हैं कि ये लोग हमे भी मिलने चाहिए थे। राम ने अनेकानेक प्रसगो पर उन्हें रेखाकित किया है।

स्वय 'राम' की जन्म कथा बडी मजेदार है। अपनी बहू की जचगी, रिवाज के अनुसार, उसके मायके मे होनी चाहिए ! परतु वह राम के ननिहाल मे न करके उसके माँ बाप ने अपने घर मे करना 'तय' किया इस लिए दादा भतीजे पर बल्ला उठा। वह भी स्पष्ट शब्दो मे— 'तुम्हें दनादन बच्चे हो और हम उन्हे पोसें, क्यो रे ?" इस प्रश्न पर भतीजे ने उत्तर दिया— 'तात्या, ऐसे कितने हैं ? यह सिफ चौथा ! तुम्हारी तरह ग्यारह

तो नहीं ?' इस पर राम के दादा द्वारा राम के बाप के थोबड़े पर सन-सनाती हुई थप्पड़ जड़ने की आवाज ! और इसी सबके दौरान जच्चा के कमरे से राम की पहली आवाज ! सिर्फ यही सीन का क्लाइमेक्स पूरा नहीं होता इसलिए कोई ग्रामीण, 'दौड़ो, दौड़ो ! कुशाबा वाले के घर में आग लगी," चिल्लाता हुआ वहाँ हाजिर ! बाप पुत्र मुख देखने से पहले ही आग देखने भाग गया और मा बोली, "लगता है मुआ, मनहूस पैदा हुआ। पैदा होते ही बाप भाग गया। कुशाबा वाले के घर आग लगी। ठीक होली में ही जन्मा !'

'राम जन्म का यह उत्सव राम के घर और गाव में इस तरह शान से सपन्न हुआ।

राम की मा का बाप भी धन्धे से नाई ही था पर उसे था नौटंकी (तमाशा लोकनाटक) का शौक। राम कहता है, 'मा के बाप की एक इच्छा थी—घोड़नदी के बाजार में गैस बत्ती के नीचे अपनी नौटंकी हो !" अपने नाती का दादा कोंडके के इच्छा' में पडित-ब्राह्मण के आगे 'मौसी' और हल्या' की भूमिका में बालगधर्व थियेटर में देखते, तो मारुति नाई पब्लिक के बीच भरी आखो से कहते, वाह रे, मेरे नाती ! और सयोग से राम के बाप का चचा वहा होता तो समधी के कान में कहता, 'पहल तिलक रोड की वेदन सैलन देख ! वह मेरे नाती का सच्चा पराक्रम है।' राम ने दादा नाना—दोनो की इच्छा पूरी की। पर अपना राम्या इस तरह बुक लिखेगा—यह दोनो ने सपने में भी नहीं सोचा होगा। यहा राम ने, मैं मैं करने वाले विनोदी लेखकों को स्वय की दाढी की खूटियाँ सुजाने पर मजबूर कर दिया है।

विनोद—यह मात्र शैली नहीं है एक वत्ति है, एक 'स्व' भाव है ! उस पहले स्वय की ओर देखकर हँसने के गुण की आवश्यकता होती है। स्वय को छोटा मानकर जीना पडता है ! इस पुस्तक में राम का छोटापन बहुत-बहुत मीठा है। स्वय की फजीहत की कहानी सुनाते सुनाते फालतू अहकार लिये जीने वाले कइयो की उसने फजीहत की है, वह भी इतने सहज रूप में और हँसते-खेलते कि जिसकी फजीहत हुई है वह बेचारा अपनी बारीक हजामत करवा कर अपने मन को स्वच्छ करने

का अनुभव करता है।

राम का विवाह प्रसग मात्र इस पुस्तक का ही नही, मराठी के सम्पूर्ण विनोद साहित्य का अलकार सिद्ध होने योग्य अश है। विवाह किसी पडित-ब्राह्मण के घर हो या और किसी जाति के—'बाराती' और दोनो पक्ष के 'मेहमान' एक अजीब स्थिति पैदा कर देते हैं। उन चार दिनो म प्रत्येक व्यक्ति का फालतू वर्ताव त्रिकालदर्शी ऋषियो की औकात स भी बाहर का होता है। विनोदी लेखक के लिए विवाह जैसा 'निमत्रण' नही। बारात' विपय पर जिसे भी गम्भीर लेखन करना हो वह आदमी हाड-मास का खड्स होना चाहिए। यहा तो एक खानदानी हँसोड अपने स्वय के विवाह की कथा बताने बैठा है। बाप द्वारा विवाह का वड तय करने से लेकर, दूल्हे की शौच जाने के लिए बाजे-गाजे के साथ निकाली गयी शौच बारात तक की यह कथा मराठी के विवाह विपयक विनोदी साहित्य मे बेजोड है।

पर ऐसी अनेक घटनाएँ है। कुछ तो आदमी का सिर सुलगा देने वाले ज्वालामुखी जसी हैं। परन्तु राम ने उस ज्वालामुखी को फुलझडिया म बदल डाला है। पार्ला के डॉक्टर शहा, राम को धनवान समझते हैं, क्योकि उसके ब्लॉक म एक नही, तीन तीन महरियाँ दिखायी पडती है। राम शान्ति स कहता है, 'वे तीन—अर्थात मेरी माँ एक पत्नी और एक बहन।'' 'आई एम व्हेरो सारी ,' डॉक्टर चकराया। जैसा डाक्टर चकराया उसी तरह सफेदपोश समाज को भी चकरा दने वाली कई घटनाएँ इस पुस्तक म हैं। परन्तु राम ने वे इसलिए नही लिखी कि उच्च वग से निचले (?) वग को मिलने वाले व्यवहार के दशन हा बल्कि पूवसस्कार ग्रस्त ऊपर नीचे के सारे लोग किस तरह वेवकूफी करते हैं यह दिखाते हुए एक बहुत अच्छा 'सुजान' अनुभव रचा है।

एक हँसोड के जीवन विपयक दष्टिकोण स कोई सुजान नही बनना चाहता। हमारे सुजानता के रिश्ते हास्य की अपेक्षा गभीरता स अधिक जुडे होते हैं। चिडचिडेपन को सैद्धान्तिकता मानने वाले हँसते खेलते नाचते गाते व्यक्ति स जलते है। अन्त म विनोदी वत्ति भी स्वभाव और बदमिजाजी भी स्वभाव। यह दुरितक्रम है, परन्तु राम को आसपास के

समाज से अपनी नौटंकी में आनेवाली आनंदिन 'पब्लिक' एक सी लगती है। लोगों को हँसाने के लिए दुनिया में साथ साथ आयें, यह उसकी निरपेक्ष इच्छा है। यही इच्छा लेकर वह दुनिया में आया है। इस तरह 'रामनगरी' जीवन की एक सुन्दर कहानी है। उन्मुक्त मन से कही गयी और अजनबी सुनानेवाले व सुननेवाले को भी मित्र बना डालने वाली नौटंकी के बाड़ में राम ने काफी पब्लिक बटोर ली है। इस पुस्तक से भी, न केवल आज के बल्कि जो अभी तक जन्मे भी नहीं है, ऐसे कल परसों के अनेक मित्र राम जोड़ेगा।

साहित्य द्वारा अंत में, पाठकों के साथ इस प्रकार का स्नेह-संबंध जोड़ना पड़ता है। एक लगुवाई तिलक आयी और हजारों मराठी पाठकों के मन में स्नेह भाव जगा गयी। राम पूरी तरह एक अलग वातावरण का है। उसकी कथा भी अलग है परंतु उसकी इस आत्मकथा में भी पाठकों के साथ सख्य भाव जोड़ने की बहुत बड़ी शक्ति है। नानाविध अहंकारों से फूले, फुग्गे की तरह कुप्पा हुए लोगों का हास्य विनोद की सूई पिन चुभो फटाक से फोड़कर मनुष्यों की पंक्ति में लाने वाले हँसोड़ा की भूमिका में वह रँग गया है। उसी भूमिका में से उसने स्वयं के जीवन की ओर और जीवन में रले मिले पात्रों की ओर देखा है। 'साहित्यकार' बनने के लिए उसने यह लेखन नहीं किया है। वैसे यह लेखन है भी नहीं। उसकी भाषा में कृत्रिम बनावट का स्पर्श भी नहीं है। यह कथन है। राम से परिचित लोगों को उसका लेखन सुनायी देगा। दोस्तों के अड्डों में घटी अपनी कहानियों में रंग भरने का कौशल जन्मतः उसे प्राप्त है। वैसे भी, नाई का हाथ और जुबान हमेशा चलते रहते हैं। इस कथा में पहले ही, 'जय जयकार करते समय राम कह गया है कि चार मित्रों की सहायता न मिलती तो "आज मैं जो आपके सामने खड़ा हूँ वह न हो सकता था। या तो किसी चौराहे पर हजामत कर रहा होता या खाली समय में दीवाल पर सींगी लगाता बैठा रहता—क्योंकि जाति से मैं नाई हूँ न!" राम चौराहे पर या और कहीं भी बैठा होता तो उसके आसपास लोग जमा होते ही। इसलिए नहीं कि वह अच्छा गा सकता है, हँसोड़ है, हाजिर-जवाब है बल्कि इसलिए कि आदमी के बिना जिसे सुकून ही नहीं मिलता,

एस भाग्यवान लोगो म से राम एक है ।

मैं कितन दिनो बाद पुस्तक पढते पटते इस तरह हँसा । 'इच्छा' मे 'मौसी बनकर आय राम ने मुये इसी तरह लोटपोट होने तक, हँसाया था। उस समय उम्र के बडप्पन के कारण मैंने उसकी प्रशसा की थी, परन्तु जाति और जाति के बीच की ऊँच नीचता की मूल समय के कारण, उस समय को स्वाय के लिए आधार बनाकर समाज म कटुता फैलाने के काल मे 'रामनगरी' ने विशुद्ध विनोद को स्थान दिलाया, इसक लिए अब प्रशसा की बजाय कृतज्ञता व्यक्त करनी चाहिए। राम ने यह कितना बडा काम किया है, इसका आभास उसे भी नही होगा । इस प्रकार का इसम कोई दिखावा भी नही है । यही, इस पुस्तक का और मेरी पसद के कलाकार मित्र राम नगरकर का भी बडप्पन है ।

—पु० ल० देशपाण्डे

"साला हज्जाम है, हज्जाम !"

मैं अपनी ही धुन में चला जा रहा था, तभी किसी की आवाज कानों में पड़ी। मुझे लगा, मुझे ही कोई पुकार रहा है, इसलिए पीछे मुड़कर देखा, एक साइकिलवाले और एक पैदल चलनेवाले के बीच झगड़ा चल रहा था।

"क्यों जी, किसे हज्जाम कह रहे हैं ?"

"आपको ! ये क्या साइकिल चलाने का तरीका है ? साइकिल नहीं चला सकते तो हजामत का धन्धा कीजिए !"

'आप फुटपाथ छोड़कर खुली सड़क पर चलें ! भई, रास्ता पर ठीक से चलना मालूम न हो तो आप ही हजामत करें !"

इतना कहकर साइकिलवाला पैडिल मारकर चलता बना। यह सारा किस्सा मैं सुन रहा था। मुझे समझ नहीं पड़ रहा था कि लोग आग अपने झगड़ों में मेरा धन्धा क्या घुसेड़ते हैं ? यह क्या इतना गया गुजरा है ! परन्तु लोगों को ऐसी आदत पड़ गयी है कि बातों बातों में मानो इससे अच्छा है, हजामत कर !' जैसी गालीनुमा बात कहते हैं। कण्डक्टर पैसेंजर का झगड़ा होने पर—

'कण्डक्टर है कि हज्जाम है ?"

ड्राइवर ने गाड़ी धीमी चलायी तो—

'साला, कितना घटिया ड्राइवर है ! इससे अच्छा था कि हजामत का धंधा करता !"

साहब अपने मातहत काम करने वाले अधिकारी पर गुस्सा करेगा—

"आपसे यह सम्भव नहीं, इससे अच्छा है हजामत करें !"

दर्जी न ठीक से सिलाई नही की तो—
साला य दर्जी है कि हज्जाम ?"

नाई बारा पौनी (परजा) म स एक, परन्तु हमारा ही नाम क्या घसीटा जाना है ? ऐसा क्या नही कहते, साला ड्राइवर है या कुम्हार है ? 'दर्जी है कि बढई ?'

इतना ही क्या सब्जी वेचनेवाला भी बडी सहजता स कहता है, 'आज दस वर्षों स यह धधा चला रहा हूँ कोई हजामत नही करता।"

'हम ब्राह्मणा की बराबरी के।'' मेरा दादा छाती ठाक्कर कहता। उस जाति का बडा अभिमान था। मरे बाप का रिश्ता तय हुआ। शादी ई वह घर म आयी। बहुत वर्षो बाद उस मालूम हुआ कि उसकी बहू क तमासगीर (नौटकी करने वाले) की लडकी है। इस रिश्ते म हम प गय —इस सोच के कारण बहू और ससुर म हमशा खटपट होती। बहू स वह कहता फालतू आवाज चढाकर मत बोल। मालूम है, तू किसकी बेटी है। अरी, यह पहले मालूम होता तो तुझे इस घर की चौखट नसीब न हाती।

हमार घर के सामने धामणे का घर है। दसरथ धामणे मेरे दादा का खास दास्त। उठना बठना था दोना मे। एक ही उम्र के। उसके काना म यदा कदा बात आती। उसे माँ पर दया आती। वह मा की तरफदारी करता। उसन एक बार दादा स कहा था "अरे गोदी का बाप तमासगीर ही सही पर है तो तुम्हारी ही जाति का—नाई ही।

दसरथ भाई ये सब ठीक है पर नाई को यह धधा शाभा देता है ? दादा बोला।

खराबी क्या है ? साल भर तुम्हारा धधा करक मले आदि मे ही तो यह धधा करता है न।'

चाह कुछ भी कहो, नौटकी का धधा है घटिया ही। इसीलिए बिरादरी न तय कर डाला है कि अब आग उस हुक्का-पानी म साथ नही रखना। उसकी लडकी हमारी बहू है। हो गयी न झझट ! उसे भी छोड

देते, पर उस बिठ्या ने बच्चा निकाल दिया और भाग गया।" दादा ने दाढ़ी के दो-तीन बाल उखाड़ लिये।

"मारत्या, अब ये बता, रिश्ते के समय यह सब ध्यान में नहीं आया तो अब चीखने चिल्लाने से क्या फायदा?" दशरथ धामणे ने पूछा।

"इतना बेवकूफ नहीं। वो बटा, उस समय नहीं नाचता था। अभी हाल में ही उसके दिमाग में भूत घुसा है। गाँव के लड़के इकट्ठा करता है और 'माग महारा' मा नाचता है। बिरादरी को बट्टा लगा रहा है। उसे अपनी इज्जत कहाँ?"

'अब, बारा पौना (परजा) मे से तू ही क्यो ऐसी बघार रहा है? इसम क्या बट्टा लगेगा?" दादा को चिढ़ाने की नीयत से दशरथ धामणे ने लाठी पटकी।

'दखो दशरथ, दूसरे नाई और हमम बहुत फर्क है। बजनिया नाई, मशालची नाइयो से हम ऊँचे। उनसे रोटी-बेटी का व्यवहार न होता है, न होगा। अरे, कुछ भी हो गया, हैं तो हम ऊँचे ही!" दादा किसी कीर्तनकार की तरह बोलता गया। परन्तु धामणे भी कच्चा नहीं था। दादा की चुटकी लेते हुए बोला, "अरे, आप इतना उच्च कहलाते हो, इसका भी तो कुछ कारण होगा ही।"

'कारण! अब तुम्हें वह कथा सुनानी ही पड़ेगी। ठीक से सुन! फालतू बीच बीच मे टपकना मत।"

दादा ने बैठक ठीक की। दाढ़ी के दो बाल उखाड़ लिये और बात प्रारंभ की। धामणे भी ऐसे बैठा जैसे हरिदास की कथा सुन रहा हो।

दादा बोला—

"दखा परमेश्वर ने दो आदमी बनाये और उनसे कहा—'बच्चा, भूतल पर जाओ, वहा जो मानव हो, उनकी अच्छी सेवा करना और सेवा करते करते वही दिन बिताओ। ये लो दो कटोरियाँ।' देवाज्ञा लेकर, दोनो एक एक कटोरी लिये निकल पड़े। इस बीच भगवान को कुछ याद आया। फिर दोनो को वापस बुलाया, 'अरे, ठहरो, ठहरो! तुम मानव की सेवा करने तो निकल गये, पर पहले यह तो बताओ, सेवा करोगे कैसे?'

"उनमे से एक बोला, 'भगवन, मैं आपकी महिमा लोगा को सुनाऊँगा ! ऐसा कुछ करूँगा कि आपका नाम हमेशा अपनी जुबान पर रहे। आपके नाम की पूजा घर घर कराऊँगा। इसके बदले म लाग जो भी देंगे वह इस कटोरी मे ले लूगा। और उसी स पेट भरूँगा।'

"भगवान प्रसन्न हो गया—'बहुत खूब! और तू रे तू मानव की सेवा किस तरह करेगा ?'

'दूसरे ने भगवान की ओर पल भर देखा। भगवान तो चित्र सा चिकना दिखायी दे रहा था। उसने अपने मानव साथी की ओर देखा। उसकी जटा बढी थी, दाढी बढी थी। यह देख हाथ की कटोरी आगे बढाते हुए बोला, भगवन, थोडा पानी दो !'

"भगवान ने तर्जनी ऊपर उठायी। उसमे पानी गिरने लगा। तभी से तर्जनी ऊपर उठाने की प्रथा जमी !

"उसने पानी लिया। जोडीदार को अपने सामने बिठाया। कटोरी क पानी से जटा भिगोयी फिर भगवान के हाथ से सुदर्शन चक्र लिया। अच्छी धार किस ओर है यह परखकर सिर के बाल खुरचना शुरू किया। भगवान और जोडीदार मुह फाडकर यह सब देख रहे थे। क्या चल रहा है—यह चुपचाप देख रहे थे। ज्यो ही सिर से बाल नीचे गिरने लगे, भगवान बोला 'अरे सारे बाल मत उतार। उस भूतल पर जाना है। उसके सिर पर बाल थे इस प्रमाण के लिए एकाध लट रहने दे।

"भगवान के अनुरोध पर उसने एक लट रहने दी। यही है चोटी। और वह चोटी रखकर भगवान की पूजा करनेवाला—ब्राह्मण।

'इसी तरह दाढी बनायी। बिलकुल भगवान की तरह सजाया और बोला भगवन, मैं भूतल पर जाकर मानवो की ऐसी तरह सेवा करूँगा। कटोरी सामने सरकाकर भीख नही माँगूगा। मेरी कटोरी म पानी तो सबके आबादानी।'

यह सब देखकर भगवान प्रसन्न हो गया वाह, वाह बहुत खूब! एक मेरी पूजा करेगा भीख माँगकर जियेगा और दूसरा ना... भीख माँगकर जियेगा।'

"तब से हम लोग ना भीक (अर्थात बिना भीख माँगे) हैं।

/.

अरे, हमारी सेवा स्वयं भगवान ने मानी !"

दशरथ धामणे क्या बोलता ? दादा की ख्याति ही कुछ ऐसी थी। कोई भी विवाद छिड़े, बगल में ऐसा कोई उदाहरण ढूंढ निकालता कि सब चुप ! गाँव में उसकी यूं ही पूछ नहीं थी। नाई, अर्थात कारा बलुतो का एक बलुतो (सालाना मेहनताना पाने वाला) ! सारे गाँव से इन बलुतों का राम राम करनी चाहिए। गाँव के सभी कार्यों में हमेशा आगे-आगे रहना चाहिए। इसके बदले में, साल भर में उनके हिस्से जो भी आये उसे बड़े आदर से साथ लेना चाहिए।

परन्तु, मेरा दादा बिलकुल अलग। खुद की खेती-बाड़ी और काम के लिए तीन बड़े बेटे—बापूतात्या, नारायणतात्या और भाऊतात्या। चार बेटियाँ। वे भी अच्छे घरों में ब्याही। पाँच भैंसें, गायें, बकरियाँ, बैल। किसी रोबदार किसान-सा दादा हमेशा रौब में रहता। गाँव में धामणे, काले का रौब था। गाँव में उन्हीं की चलती थी, परन्तु दादा उन्हीं के साथ बैठता था। कितने ही मराठों को उधार पैसे देता। उनका साहूकार बनता। गाँव में पीठपीछे कुछ लोग कहा करते थे—"स्साला ये तो बहुत घमंडी हो गया है !"

"अजी, घमंडी तो होगा ही ! नाई का गला घोटकर आलसी भी हो गया है !"

मेरे जन्म से पहले मेरे चचेरे दादा (अर्थात मेरे बाप का चाचा, सगा दादा कब मरा, यह मेरे बाप को भी मालूम न था) और मेरे बाप का जोरदार झगड़ा हुआ। और झगड़े का कारण था—मैं।

माँ को मुझसे पहले तीन सन्तानें हुई थीं। पहली लड़की थी। नाम था—द्रुपती। सिर्फ वही जी पायी, बाकी सभी सात-आठ बाद मर गयी। तब तक माँ की सभी जचगियाँ (प्रसव) 'देवकोठा' में हुई थी। मेरे समय जब माँ पेट से हुई तब मरो 'गो', इस बार जचगी के लिए अपनी ससुराल जा।"

"मेरी माँ, वहाँ मेरी देखभाल के लिए अपना कौन।

ठीक से नहीं पूछता, जचकी में कौन देखभाल करेगा ?" मेरी माँ बोली।

'अरी, तू कोई मेरे लिए बोझ थोड़े ही है, पर तेरी दो संतानें गुजर गयी। तेरे गाँव में पीर है उसकी मन्नत मान! कहना लड़का होने पर उसकी नाक में तुम्हारे नाम की चाँदी की बारी पहनाऊँगी।"

मेरी माँ को यह बात जँच गयी। उसने पति को यह सब बताया। फिर दोनों पीर के पास जाकर मन्नत मान आये।

हमारे गाँव के पीर को पूरे गाँव में मानता थी। वैसे गाँव में मुसलमानों की संख्या कम थी, परन्तु पीर को उस सब मिल जुलकर करते। आसपास ऐसी धारणा थी कि उसकी मन्नतें कभी खाली नहीं जाती। इसका दूसरा प्रमाण यह है कि हमारे गाँव में और आसपास के गाँवों में, हर घर के बड़े लड़के की नाक छिदी दिखायी देगी। लड़का होने की मन्नत तो मानी पर दादा को मालूम नहीं होने दिया। उन्हें बताया भी किस तरह जाता! उनका रौब बहुत था। वैसे भी, मूल रूप से पहलवान, 'मारोतीदा' की बात ही कुछ ऐसी थी कि सभी उन्हें 'राम राम' करते। ऐसे आदमी को कैसे बतायें ? माँ ने बाप से कहा, "आप बताइए।' बाप ने माँ से कहा, 'तू ही बता।' और इस बताने-बताने में माँ को नवाँ महीना कब चढ़ा, ध्यान ही नहीं रहा।

मगर इन सारी बातों पर दादा का ध्यान था। वह सोचते गाड़ी आज जायगी, कल जायगी' पर जाने के कोई लक्षण दिखायी न देते। वैसे दादा ने घुमा फिराकर अपनी बात कही, पर जाने के लक्षण दिखायी नहीं दिये। तब सोचा इस विट्ठल को डाँटकर पूछना चाहिए कि बीवी को जचकी के लिए मायके भेजता नहीं यहाँ क्या तेरे बाप का जागीर पड़ी है! दिन भर यहाँ वहाँ घूमता फिरता है। यह सब कौन सम्भालेगा ? बाप तो मर गया! पैसे रुपये की जगह, सिर पर इसे थोप गया। ऐसे में बीवी की जचकी ।

परन्तु चचा भतीजे की मुलाकात न हो पाती। वह सीजिए बाप जान बूझकर टालता जा रहा था। सुबह उठते ही दाढी की पेटी बगल में दबाकर बस्ती की ओर निकल पड़ता। दिन भर उधर ही रहता। शाम को सूरज ढलने पर देर से घर आता। धीरे धीरे माँ की जचकी के दिन

करीब आते गये। उसने बाप से कहा, "दो चार दिन बस्ती मत जाइये। समय कब आ जायेगा, कह नहीं सकते।" इसलिए बाप घर पर ही रुक गया। बाप को घर पर देखकर दादा का दिमाग आसमान पर चढ़ गया।

दाढ़ी के बाल नोचते हुए उसने पूछा, "क्या रे, आज बस्ती में नहीं गया ?"

"मैं दो चार दिन नहीं आऊँगा, सबको बता दिया है।" कुछ-न-कुछ कहने के नाम पर मेरे बाप ने कह दिया था।

"पर, घर पर क्यों रुका ?" दादा ने बाल नोच लिया।

"उसका ऐसा है" यहीं बाप रुक गया। आगे क्या कहा जाये, यह नहीं सूझ रहा था। पर कुछ-न-कुछ कहना जरूर चाहिए, नहीं तो मारोती-दा भड़क उठेंगे।

"उसका ऐसा है इसके दिन पूरे चढ़ गये इसलिए रुका।"

"पहले यह बता, गोदी को जचकी के लिए मायके क्यों नहीं भेजा ?" दादाजी जिसकी प्रतीक्षा कर रहे थे, मानो वह घड़ी आ पहुँची थी।

"उसका ऐसा है, तात्या," मेरा बाप जब भी कुछ बोलता था, तो उसके पहले 'उसका ऐसा है' अवश्य बोलता। "उसका ऐसा है तात्या तीन जचकी मायके ही हुई। अब चौथी भी यदि उधर ही हुई ना उधर वाले क्या सोचेंगे कि मारुल वालों को कुछ लाज-लज्जा है या नहीं ? इसी लिए उसे यहीं रखा है।'

बाप की बात से दादा भड़क उठा। दाढ़ी का बाल नोचते हुए बोला, "तेरी तो ! तू यहीं जचकी करवायेगा ? तुझे दनादन लड़के होंगे। और हम उन्हें पोसेंगे ! क्यों रे ?"

इस पर बाप भी भड़क उठा, "तात्या, ऐसे कितने हो गये ? यह तो सिर्फ चौथा ही है। तुम्हारी तरह ग्यारह तो नहीं हैं ?"

बाप के मुँह से इन शब्दों का निकलना और दादा का हाथ बाप के गाल पर पड़ना, एक ही साथ हुआ। जैसे ही बाप के गाल पर दादा का हाथ पड़ा वैसे ही घर से एक स्त्री भागती हुई बाहर आयी दौड़ो दौड़ो-दौड़ो ! शोदी को बच्चा हुआ ! गोदी को बच्चा हुआ !

जिस तरह वह स्त्री भागती आयी उसी तरह उधर गाँव में

मची— दौड़ो दौड़ो-दौड़ो ! कुलावा वाले के घर में आग लगी ! कुलावा वाले के घर में आग लगी !"

और इस भाग दौड़ में मेरा बाप भाग गया।

माँ मेरी ओर देखकर कहने लगी "मुआ, लगता है, मनहूस ही पैदा हुआ ! पैदा होते ही बाप भाग गया, कुलावा वाले के घर में आग लगी, बिलकुल हाला में जन्मा !

बाप भाग गया पर मेरे दादा पर कोई असर नहीं हुआ। बहुत चिंता भी नहीं की। 'गया होगा कहीं', सोचकर वह कुछ दिन तो चुप पड़ा रहा, फिर विठया (विट्ठल) मिलिटरी विलिटरी में तो नहीं चला गया,' इस आशंका में पूछताछ की क्योंकि उन दिनों, आदमी घर से झगड़कर सीधे मिलिटरी में भरती होता था। परन्तु वहाँ भी बाप का ठिकाना न था। फिर पाँच महीने बाद पता चला कि विठया बंबई चला गया। दादा ने पूछताछ की। सच-झूठ का पता लगाया। विठया बंबई गया, यह सच था। सोचा बाल-बच्चों को पैसे नहीं भेजेगा बल्कि स्वयं लेने आयेगा। पर यह क्या ! किसी बात का कोई ठिकाना ही न था।

दादा ने सोचा, 'बहू के बाल-बच्चे कब तक पालें ? उसे उसके बाप के पास भेज दें।' वैसे दादा था बड़ा चालाक। कटनी के दिन थे। माँ से खेती में बड़ी मेहनत करवा ली। माँ बच्चे को—अर्थात मुझे पीठ पर बाँधकर सिर पर रोटी रखकर, साथ में रूपनी को लेकर, सुबह खेत पर जाती और दर दिन डूबने के बाद वापस आती। अपना पति बम्बई गया है, यह जब उसे मालूम हुआ तभी उसने पेट भर खाना खाया था। पहले ही वह सद्य प्रसूता थी, फिर बाप का भाग जाना ! पैरों की ओर से जन्मा, मनहूस समझकर वह मुझ पर बहुत खीझती थी।

कटनी का काम खतम हुआ। खेती के काम पूरे हुए। अब गोदी को उसके बाप के घर भेजना चाहिए। परन्तु भेजें कैसे ? माँ का मायका साखल से बीस पचीस मील दूर दवदैठण में था। बैलगाड़ी से भेजना हो तो दो दिन लगते। उन दिनों बैलगाड़ी थोड़ा ही गरीबों के वाहन थे।

दादा सोच म पड गया—क्या किया जाये ? इस बीच समाचार मिला कि माँ के बाप की नौटकी वाली मडली सुपे गाँव म आ रही है। सारल से सुपे दस मील था। दादा ने तय कर लिया कि गोदी को सुपे मे उसके बाप को सौप देने का मौका नही खोना चाहिए।

सच तो यह था कि मेरी माँ का बाप वास्तविक नौटकीवाला नही था। कटनी का काम खत्म होने पर वह गाँव-गाँव हो रहे मेलो म नौटकी अर्थात लोकनाटक मे काम करता था। मेला खत्म होते ही वह अपने गाँव, काम पर हाजिर हो जाता। अर्थात वह शौकिया नौटकीवाला था, पर बाद म उसकी मडली काफी प्रसिद्ध होने लगी। आसपास के इलाका से माँग बढने लगी। उसकी मडली मे उसी के गाँव के लडके होते—लुहार का नाम्या ढालकी पर, तो तेली का यम्या नाचन के लिए। बढई का दामू, भागूजी, बारकू—ये सब कलाकार उसकी मडली म थे। सबसे आगे मेरी माँ का बाप !

बाज थे—एक ढालक, एक एकतारा, एक हारमोनियम, और नौटकी थी—'सत्यवान सावित्री', 'ठकसेन राजपुत्र', 'हरिश्चन्द्र-तारामती'। नौटकी के कपडो की एक गठरी और एक बैलगाडी साथ होती। उसी मे सारा सामान रहता। कुछ गाडी मे बैठते, कुछ पैदल चलते। इसी तरह महीना डेढ महीना पारनेर तहसील मे या फिर शिरुर तहसील म काय-क्रम चलते।

नाटक के लिए मच की आवश्यकता नही थी। पाटिल की अनुमति से बल पेड क साथ बाँध देते। बडा मैदान देखकर गाडी खडी करते। गाडी के एक ओर चादर तानते। दो मशालें जलाते। गाडी के दूसरे हिस्से का उपयाग ग्रीन रूम के रूप मे होता। लोग तीनो ओर बैठते। उनके नाटक के दशको म औरतो की भीड अवश्य होती क्योकि उसम छिछोरापन न होता। सावित्री या तारामती का नाटक होन पर औरतें निश्चित ही फफक पडती।

धीरे धीरे उनका प्रभाव बढता गया। मारुति नाई के न लोगो की भीड अवश्य होती। (मेरी माँ के बाप का नाम भी था)। रगा लोहार और मारुति नाई की मडलियाँ उस इलाके

थी।

माँ के बाप की एक ही इच्छा थी—धोहनदी बाजार म गैसबत्ती के नीचे उनका नाटक हो, तो उनकी कला सफल हो पाती !

'गोदे, तुम्हे तुम्हारे बाप के पास पहुँचा देता हूँ। अपने पति का पत्र लिए गो। लिखो कि वह तुम्हे साथ ल जाय। कितने दिन यह सब सभालू ?'

दादा ने अपना विचार माँ को बता दिया। बस एक हिसाब से यह ठीक ही हुआ। सबकी बातें सुनने से अच्छा है, मायक चले जाना। माँ तैयार हो गयी।

दादा न बैलगाडी जात ली। वह स्वय हमारे साथ हो लिया।

गाडी चलने को हुई कि दादी सामने आ गयी। मुझे गोद म उठा लिया। दो चार चुम्बन लिए और बहन के सिर पर हाथ फेरा। फिर कहा, गोदे बच्चो को सभालना, स्वय को भी सभालना।"

बलगाडी निकल पडी। शाम का समय था। मुझे पहुँचने म काफी रात हो चुकी थी। मा के बाप का नाटक जहाँ चल रहा था, उधर गाडी मोडी। हम जब वहा पहुँचे तब नाटक पूरी तरह रग पर आ चुका था।

नाटक था—'सत्यवान सावित्री'। माँ का बाप सत्यवान बना था, तैली का गणा सावित्री बना था। सावित्री का रोल होने के बावजूद गणा ने अपनी मूछें साफ नही की थी, क्योंकि उसका बाप जीवित था। यदि गणा मूछें निकाल डालता तो उसका बाप उसे जीवित न छोडता। इसी लिए सावित्री को मूछें रखना जरूरी हो गया था। सावित्री क मूछें होने पर भी कुछ नही बिगडा था, क्योंकि सामने बैठे सारे दर्शकों को मालम था कि यह बटा पुरुष ही है !

नाटक अपने पूरे रग पर था। सत्यवान (मा का बाप) सावित्री से कह रहा था— जरा ठहरो सावित्री ! बस, यह डाल तोड लू फिर गट्ठा बाँधकर घर की ओर निकल पडेंगे।"

नही, नही नाथ ! इतनी लकडियाँ ही पर्याप्त होगी। आपके परो

पड़ती हूँ, आप ऊपर न चढ़ें।"

सावित्री सत्यवान से अनुनयपूर्वक कहती, पर सत्यवान कुछ न सुनता।

"मैं ऊपर चढ़ूँगा।"

"नाथ, ऊपर न चढ़ें।"

'मैं चढ़ूँगा।" इतना कहकर माँ का बाप सचमुच के पेड़ पर चढ़ने के लिए भीड़ में से रास्ता निकालता आगे बढ़ा।

इतने में मेरे दादा ने पुकारा, "ए, सत्यवान, अपनी लड़की सभाल, फिर पेड़ पर चढ़, गिर या मर।"

माँ के बाप ने हमारी ओर देखा और रुक गया। फिर पब्लिक की ओर मुड़कर कहा, "देखो, हमारा असभ्य समधी मेरी बेटी को लेकर आया है। इसलिए पहले अकेली बेटी को सभालता हूँ, फिर डाली काटने का काम करूँगा।"

सब पीछे मुड़कर देखने लगे। बैलगाड़ी खड़ी है—एक, पचास के आसपास का व्यक्ति, एक औरत, दो बच्चे। उन्हें सत्यवान की बात सही लगी। कोई तमाखू मलने लगा कोई बीड़ी फूँकने लगा। सावित्री ने भी सामने बैठे दर्शक से बीड़ी ली। मशाल से सुलगायी और धुआँ निकालने लगी।

बाप को देखते ही माँ रुआँसी हो गयी। वह बोला 'अरी गोदे, मुझे सब मालूम हो गया है। यहाँ का नाटक पूरा कर मैं तुम्हारी पूछ ताछ के लिए आने ही वाला था, पर तू ही चली आयी। अरी रोती क्या है? मैं दूसरों को रुलानेवाला और तू ही मेरे सामने रो रही है। चुप हो जा। मैं हूँ न तुम्हारे साथ। सब सभाल लूँगा।'

दादा पीछे मुड़ा। जाते समय माँ को डपटता गया, "अब पति के साथ आना तभी गाँव में घुसना। सुन ले ठीक से। मैं जा रहा हूँ।

बैलगाड़ी निकल गयी। माँ काफी देर तक उधर देखती रही।

माँ का बाप मुझे गोद में उठाकर पब्लिक के सामने आ गया। सामने बैठे एक व्यक्ति ने पूछा, "कौन है?"

'नाती।'

उस आदमी ने मुझे उठा लिया और गाल चूमते हुए बोला, 'कितने महीने का है?'

दस महीने का होगा।

मैं उसकी गोद में बैठ गया। माँ बैलगाड़ी में बैठ गयी और वहाँ से नाटक देखने लगी। नाटक फिर शुरू हो गया। ढोलक ठुमक उठी। कुछ लोग जो ऊँघने लगे थे वे सम्भलकर बैठ गये।

ठहरो सावित्री, पेड़ पर चढ़कर एक डाल काटकर लकड़ियाँ बाँधकर फिर घर चलेंगे।

सावित्री का ध्यान मेरी ओर था। मैं ऊँघ रहा था, यह देखकर वह बोली 'अहो सत्यवान पहले नाती के ऊपर कोई कपड़ा डालो फिर डाल काटो।"

डाल काटने की बजाय सत्यवान ने मुझे उठा लिया। माँ जहाँ बैठी थी, वहाँ ले गये। माँ ने मुझे गोद में रखा। पास ही यम बीड़ी फूँक रहा था। उसका दुपट्टा बाप ने लिया और मेरे ऊपर डाल दिया। सत्यवान फिर पेड़ की ओर मुड़ा।

माँ के बाप के साथ मैं मेले में यहाँ वहाँ घूमता रहा। पन्द्रह दिन बाद देवदैठण वापस आया।

हम दो बरसों तक देवदैठण में ही रहे। दादा एक बार बाप बम्बई से वहाँ आया था। अगली बार बम्बई ले चलूँगा' कहकर लौट गया था।

पारनेर और शिरूर तहसीलें नगर ज़िले की अकालग्रस्त तहसीलें थीं। हर पाँच साल में दो-तीन साल अकाल अवश्यम्भावी रहता।

हमारे देवदैठण जाने के दूसरे ही साल अकाल पड़ा। उस समय मुझे तीसरा वर्ष लगा होगा। बहन का दसवाँ वर्ष होगा। वह अकाल भयंकर था। सरकार ने अकाल पीड़ितों के लिए काम शुरू किये थे। घर के सारे लोग काम पर लगे थे। नाना, नानी, माँ, बहन—सब काम करते। मैं मिट्टी में खेलता। हफ्ते बाद सबको पगार मिलती। शनिवार को घोड़नदी का बाज़ार होता। हर शनिवार को हम बाज़ार जाते। माँ हफ्ते भर का

सामान खरीदती। मेरे लिए मीठे सेव खरीदती। बहन चूडियो की दूकान देखकर कहती, "माँ, मुझे चूडियाँ पहनाओ न!"

माँ एक चाँटे के साथ कहती, "छोकरिया, चूडियाँ किसलिए? फोडने के लिए? कुछ नही मिलेगा।"

मैं हर शनिवार मीठे सेव खाता। बहन चूडियो के लिए चाँटा खाती। पर चूडियो की उसकी जिद न छूटती।

एक बार खुदाई चल रही थी। खोदी गयी मिट्टी सब लोग तसलो मे भरकर सडको पर डाल रहे थे। बहन भी डाल रही थी। दो दिनो से बहन गूगी लग रही थी। माँ ने एक दो बार, 'द्रुपते, खाना खाने आओ!' कहकर देखा, पर वह न आयी। उसकी एक ही रट थी—'मुझे चडियाँ चाहिए।'

बहन ने तसले म मिट्टी भरी, उसे सिर पर रखा और जहाँ मिट्टी डालनी थी वहाँ पहुँची। मिट्टी सडक पर डालने के बाद एक गहरी चीख के साथ बहन धम से गिर पडी। सब मुडकर देखने लगे। द्रुपती बेसुध पडी थी। जहाँ उसने मिट्टी डाली थी, वहाँ एक खोपडी पडी थी। लोग समझे कि खोपडी देखकर द्रुपती डर गयी होगी।

दूसरे दिन द्रुपती को खूब बुखार चढा। बुखार मे भी वह लगातार यही बडबडा रही थी—"माँ, चूडियाँ पहना! पहना दे न!'

मा ने नजर उतारी। तीसरा दिन उगा, परन्तु बुखार न उतरा। फिर भाग दौड शुरू हुई। "इसे शायद नजर लग गयी है। ढवलगाव के चमार को बुलाओ, वह उतार देगा।" किसी एक ने कहा। किमी और ने कहा, 'कोई सुहागिन शायद पीछे लग गयी है इसीलिए तो चूडियाँ माँगती है!"

जहाँ खोपडी मिली थी वहाँ भी एक दजन चूडियो का चढावा चढाया गया, फिर भी बुखार नही उतरा। बच्ची बिलकुल सूख गयी। बाप को पत्र भेजा गया। मा के बाप को लगा कि घोडनदी मे डाक्टर को दिखाना चाहिए। इसलिए किसी तरह एक बैलगाडी लायी गयी, द्रुपती को गाडी म लिटाया गया और गाडी घोडनदी की ओर चल पडी। माँ साथ थी।

डॉक्टर का दवाखाना आ गया। द्रुपती को भीतर ले ही जाने वाले थे कि भीतर से ढवलगाँव का चमार दवाई की शीशी लिये बाहर निकला। उसने पूछताछ की। फिर उसने द्रुपती को ग़ौर से देखा और बोला, "इस पर प्रेत छाया ही है।"

फिर भी माँ का बाप डाक्टर से मिला। डॉक्टर ने उसकी जाँच की और बोला, "इसे मियादी बुखार है। अस्पताल में ही रखने की कोशिश करें।"

परन्तु बात खर्च की आयी, तो घर ले जाने की अनुमति दे दी। "ठीक से देखभाल करो।" कहकर डाक्टर ने फिर सचेत किया और दवा गोली दे दी।

द्रुपती को लेकर माँ और उसका बाप बाहर आये। वहाँ ढवलगाँव का चमार खड़ा था।

'क्या कहा डाक्टर ने?' उसने पूछा।

'सावधानी बरतने को कहा है... टायफायड, न जाने क्या-क्या है—बोला।' माँ के बाप ने बताया।

'उस भड़वे को क्या मालूम? अरे पैसे लूटने के धंधे हैं।'

ढवलगाँव का चमार फिर दूसरी ओर निहारने लगा।

द्रुपती कराह रही थी। उसे मालूम हुआ कि घोडनदी आयी है। फिर वह बोली, "माँ, चूड़ियाँ!"

उसके ऐसा कहते ही 'निश्चित ही प्रेतात्मा की छाया है, मैं इसे उतारता हूँ' कहकर शिरपा चमार गाड़ी के साथ ही चल पड़ा।

ढवलगाँव का शिरपा आसपास पाँच दस गाँवों में भूत प्रेत उतारने के लिए प्रसिद्ध था। वह साथ आ रहा है यह जानकर माँ और नाना को अच्छा लगा। संतोषपूर्वक वे वापस लौटे। घोडनदी के निकलते हुए माँ ने कुछ चूड़ियाँ खरीदीं और आँचल में ठीक तरह बाँध लीं।

दोपहर के दो बजे होंगे। धूप बहुत तेज थी और गाड़ी खुली थी। द्रुपती धूप की मार में डूबती उबरती।

घर आने पर शिरपा ने आवश्यक सामान मँगवाया—नीबू, दो चार मिर्चें और थोड़े से चावल।

गिरपा द्रुपती का भूत उतार रहा है, यह समाचार गाँव में तूफान की तरह फैल चुका था। लोग जुटने लगे।

ढवलगाँव का चमार सावधान हो गया। उसने कुर्ता उतारा, माथे पर अबीर लगाया, नींबू काटकर दो दिशाओं में फेंक दिये और बड़बड़ाता हुआ घूमने लगा।

द्रुपती को सामने बिठाया। बेचारी बैठ भी नहीं पा रही थी। बुखार भरपूर था, फिर भी माँ ने किसी तरह उसे बैठाया।

गिरपा घूम रहा था। लोग मुँह फाड़कर सब देख रहे थे। "बोल! क्या पकड़ा है? बो ऽऽल! क्यों पकड़ा है?" गिरपा घूमते घूमते बोला।

द्रुपती चुप थी। यह इस तरह क्या कर रहा है?' बड़े गौर से देख रही थी।

'बो ऽऽल! छोड़ेगा या नहीं? तू है कौन?" इतना कहकर उसने द्रुपती के चेहरे पर एक भरपूर चपत लगा दी।

"मुझे मत मारिए! मैं पैर पकड़ती हूँ! मुझे मत मारिए!" द्रुपती चिल्ला रही थी और गिरपा मार रहा था। अन्तत द्रुपती चुप हो गयी। उसका हिलना-डुलना भी बन्द हो गया। अब माँ, नाना दौड़े। द्रुपती हमेशा हमेशा के लिए चुप हो गयी थी।

"अरे, पहला ही केस इस तरह हो गया! साला, भूत काफी तगड़ा लगता है!" गिरपा बोला।

रो रोकर माँ ने आँखें पोंछने के लिए आँचल से हाथ डाला तब चूड़ियाँ हाथों से टकरायीं। "द्रुपते!" कहकर माँ ने दहाड़ मारी।

बाप हम लोगों को बम्बई न ले जाना। वैसे, आज की तरह उन दिनों मकानों की किल्लत बम्बई में न थी। काफी जगह थी। जगह-जगह 'मकान किराये के लिए खाली है' की तख्तियाँ लगी होतीं। परन्तु मेरे बाप ने स्वयं भी कोई जगह नहीं ली थी। एक तो पुसाता नहीं था। वैसे महँगाई नहीं थी। पर कमाई नहीं। अपना मकान न लेने

एक कारण तो यह था कि बाप के पैर जमे नहीं थे, दूसरे, वह मकान लेना गुस्ताखी समझता था। उन दिनों हमारे इलाके के नाई लोग बम्बई के कोटा में एक साथ रहते थे। हमारे इलाके—पारनेर तहसील, नगर, शेवगाँव, पाथर्डी इलाके—के कुछ लोग ताडदेव में कुछ मेतवाडी में और कुछ कोटा में थे। मेरा बाप कोटा में आया था, बोरीबदर स्टेशन के सामने वाली गली—द्वारकादास क्रॉस लेन में।

मेरा बाप जिस गोदाम में रहता था उसमें करीब करीब तीस-बत्तीस नाई रहते थे। दस-बारह लोग बाल बच्चों सहित और बाकी अकेले। गोदाम पतीस फुट लम्बा और पच्चीस फुट चौड़ा था। उसके दो हिस्से किये गये थे। बीच में पेटियाँ बक्स रखकर दायीं ओर दस परिवार और ग्यारहवाँ खुद मकान मालिक रहता था।

गोदाम के दूसरी ओर बचे हुए बीस नाई रहते थे। बिस्तर सामान ट्रंक—सब बीच की कतार में। दीवारों पर कतारों से खूटियाँ लगी थी। उन पर नाई अपने थैले लटकाते। सारे लोग सामने के सपरिवार लोगों के साथ भोजन करते। उनका कार्यक्रम तय होता था। सुबह साढे तीन चार बजे उठते। गोदाम में एक नल और एक ही संडास था। वह सबको कैसे पूरा पड़ता! ऐसे में कुछ बोरीबदर स्टेशन में तो कुछ गोल मुसीघर में जाते और कुछ तो रात को ही नहा धोकर तैयार हो जाते। सिर्फ मुह धोकर चल पड़ते।

उन दिनों सैलून बहुत कम थे। बगल में झोला टाँगे धाती कमीज और सिर पर पगडी बाँधे, हाथ में धोती का पल्ला पकडे नाई जल्दी जल्दी जाते दिखायी देते। गुजराती पारसियों की सख्या काफी होती। सुबह दाढी बनवाकर वे अपने बाकी कामपूरे करते। उन दिनों खुद दाढी बनाने का चलन कम था इसलिए सुबह सात बजे तक के लिए तो तयशुदा ग्राहक होते फिर कुछ लोग कबूतरखाने के पास कुछ बाजार गेट के पास और कुछ बोराबाजार या किंकिंग लेन के पास बैठते। मेरा बाप किंग लेन में बैठता था। ग्यारह बजे तक वहाँ उसका धधा चलता। बारह बजे खाना खाने जाता और एक बजे खाना खाकर जहाँ धधा करता वहीं सो जाता। कोई ग्राहक आता तो वह उठाता, अन्यथा तीन चार बजे वह स्वय

उठना। चाय पीने के बाद फिर धन्धे की शुरुआत और फिर यह सब शाम तक चलता। दीया-बत्ती के बाद ये सारे लोग गोदाम की ओर लौट पड़ते।

कुछ नहाते, कुछ कपड़े धोते और कुछ उस्तरा तेज करते। भोजन के बाद फुटपाथ पर बिस्तर लगता। बरसात के दिनों में कुछ लोग वी० टी० स्टेशन के नौ नम्बर के प्लेटफॉर्म पर, कुछ गोदाम में सोते।

अब यहाँ बड़ी मजेदार बात होती। खूटी पर झोला टागकर अकेले रहने वालों का सारा ध्यान सामने के परिवारों पर होता। किसी परिवार में यदि कोई स्त्री गर्भवती लगती तो कोई न कोई तुरन्त गोदाम मालिक के कानों तक पहुँच जाता।

"कहो, आज कोई खास बात?" गोदाम-मालिक पूछता।

"खास कुछ नहीं गाँव से चिट्ठी आयी है।" वह कहता।

"अरे, तो कोई बीमार है?"

'बीमार नहीं है पर लिखा है हमें यहाँ से लेने कब आओगे।'

'पर जगह तो खाली होनी चाहिए न!'

"मैं क्या यूँ ही बोल रहा हूँ? लडू की पत्नी पेट से लगती है इसी लिए कह रहा हूँ।"

फिर मालिक बात टटोलकर देखता। परिवार वाला न पूछताछ करता। और जब अमुक व्यक्ति की पत्नी गाँव जाती तो दूसरा नाई जिसे मालिक ने वादा किया हो, तुरन्त अपने बाल-बच्चों को बुलवा लेता या खुद जाकर ले आता और उस जगह अपना परिवार बसाता।

मेरे बाप को इसी गोदाम में दो बरस हो गये थे परन्तु उसे अपना परिवार लाने का मौका नहीं मिला था। अन्त में एक चांस मिला और मेरा बाप हम लोगों को लेने सीधे देवदैठण आ गया।

माँ को बहुत खुशी हुई। मैं तीन साल का रहा होऊँगा। हम लोगों को लेकर बाप बम्बई गया और उस गोदाम में अपना परिवार बसाया। उस जमाने में हर चीज सस्ती थी। मेरी माँ के पास खाना ख...

छह्-सात नाग थे। वे शाम को नक्द पैसे देते। दो वक्त का खाना और सुबह की चाय कुल मिलाकर चार आने म ! इस तरह सात लोगों स जो पैसे मिलते उसमे हम सबका खर्च निकल जाता। बाप माँ को खर्च के लिए कुछ न ग्ता। वैसे उसके पैसों की आवश्यकता भी न थी क्योंकि जो पैसे मा को मिलते उन्हीं मे सब खर्च निकल जाता और कुछ बच भी जाते। बचे पैसों स माँ ने आवश्यक चीजें और बतन खरीदने शुरू किये और घर ससार बढ़ता गया।

चचेरे दादा के घर अर्थात साइल से हम देवदैठण आये और देव-दैठण स बम्बई आये। उस समय माँ अपने मायके स कुछ बतन लायी थी परन्तु ससुराल म उसे कुछ नहीं मिला। उसने कुछ मांगा भी नहीं।

उस गोदाम म हम दो-ढाई साल रहे। इस बीच बाप दो बार मेले के दौरान नाम्न हो आया था। बस मेरा बाप अपने गाँव को बहुत प्यार करता था। बस, अपने चाचा की परेशानियों स तग आकर उसने बम्बई की राह पकड़ी थी। साल डेढ़ साल तक तो मेरे चचेरे दादा ने अपने भतीजे की कोई पूछताछ नहीं की, परन्तु जैसे ही उसको मालूम हुआ कि मेरा बाप दो पैसे कमाने लगा है वैसे ही एक दिन वह बम्बई मिलने चला आया और तब स बाप भी गाँव जाने आने लगा। बाप जब भी मेले पर गाँव जाता तो यह दिखाता कि वह बहुत बड़ा आदमी बन गया है। उसकी शान इसी तरह की होती। गाव जाते समय चाचा के लिए कपड़े चाची के लिए साड़ी और खाने पीने की चीजें वह अपने साथ ले जाता। खुद भी मखमल की धोती, 'डबल घोड़ा सिल्क' की कमीज कोट काली टोपी पहनकर ठाठ स गाँव जाता। उसे इस तरह देखकर दशरथ सामणे कहता, 'देख मारुति तूने झापड मारी, तो विटठल सुधर गया। बम्बई जाकर कैसे ठाठ से रह रहा है! यहां क्या था! सिर्फ सिर खुजलाता फिरता था।'

दादा दाढ़ी का बाल नोचते हुए बोलता 'गया यह सही है, पर सिर्फ हमाली करने म कोई तुक नहीं है। दो पैसे बचने भी चाहिए। तुकाराम (मेरे बाप का बाप) के नाम की प्रतिष्ठा का सवाल था। मैंने

जो उसे मारा, तो उसकी भलाई के लिए ही। कुछ भी हो, विट्ठल मेरा है।"

इस तरह की बातचीत स मेरे बाप का कलेजा पसीज जाता। मले मा चदा पाच रुपये होता, तो यह पट्ठा दस रुपये द आता।

एक दिन गोदाम का मालिक बोला, "विठोबा दो वष से ऊपर हो गये, पर तुम्हारी कोई हलचल दिखायी नही देती।"

मालिक की बात बाप की समझ म न आयी।

"हलचल से मतलब ?" उसने पूछा।

"अजी, बाहर लोग रुके हैं। उनकी भी पत्नियाँ हैं। अपने भी बच्चा हो, ऐसा उन्ह नही लगता होगा क्या ?"

"तो म कहा उनके रास्ते म टाग अडा रहा हूँ ?" बाप ने कहा।

"अरे अब दो-तीन साल हो गये ! तुम पति पत्नी साथ साथ रह रहे हो, फिर भी कोई हलचल नही ! शेवगाव का तवाजी तुम्हारे बाद आया और उसन अपनी पत्नी जचकी के लिए भेज भी दी।'

अब बाप के दिमाग मे बात पहुँची। बोला, 'मालिक, बच्चा होना क्या मेरे हाथो म है ?"

मालिक चिढकर बोला, "अरे, तुम्हारी इतनी ढिलाई हो, तो दूसरी जगह ढढ लो !"

फिर भी हम छह महीने वही रुके। एक दिन जब मा को कुछ बेचैनी महसूस हुई और कै होने लगी, तब कही जाकर बाप को और गोदाम-मालिक को खुशी हुई और मा बम्बई छोडकर जचकी के लिए सारुल आ गयी। उस समय मैं छह साल का था।

सारुल म दादा ने हमारा सहष स्वागत किया। स्टेशन पर लेन के लिए गाडी आयी थी। मेरा बाप भी साथ था। चचा भतीजे की भेंट और दानो प्रसन्न। पिछला सारा कुछ भूल चुके थे। इसका एकमात्र कारण

है ?"

"विट्ठल का बड़ा लड़का है न ?" दादा ने बताया।

'विट्ठल, यानी ।'

आगे कुछ कहना चाहिए या नहीं, इस असमंजस में मास्टर रुक गया।

"बम्बई भाग गया था न, वो !" दादा ने वाक्य पूरा किया।

"अर्थात विठोबा का ," मास्टर ने हँसते हुए कहा।

दादा अपना हाथ दाढ़ी तक ले गया तब मास्टर ने कहा, 'अब इसका क्या करना है ?"

'स्कूल में भरती करना है।'

"अच्छा !" मास्टर रुका, फिर मेरी ओर और दादा की ओर देखकर बोला "परन्तु मारुतिदा, इसकी उम्र कितनी है ?"

"इसकी उम्र ? ये देखो, हर डेढ़ साल में इसकी माँ का झूला डोलता है। ये बेटा चौथा है। अब कर लो हिसाब ! तू तो मास्टर है न ?"

दादा की इस बात पर मास्टर मुंह फाड़े देखता रहा। वैसे दादा का स्वभाव, उसका व्यवहार और कभी-कभी उलटी सीधी बात करने की आदत मास्टर को अच्छी तरह मालूम थी। मारुतिदा जान बूझकर उलटा सीधा बोल रहा है, यह उसने जान लिया। फिर वह सभलकर बैठ गया। यू ही अंगुलियाँ गिनी। एक बार मेरी ओर देखा। फिर दादा से बोला वैसे स्कूल में बैठने लायक तो हो गया है, पर इसका जन्म कब हुआ ? दशहरे पर दीवाली पर, या होली पर ?"

मास्टर ऐसा क्या बोल रहा है, यह मारुतिदा की समझ से बाहर की बात थी। उसने एक बार मास्टर को गौर से देखा और पूछा क्या बोले ?"

मैंने कहा, जन्म कब का है ? दशहरा दीवाली या होली का ? मास्टर ने दादा से आँखें मिलाते हुए पूछा। जैसे ही मास्टर ने होली की बात कही, दादा को कुछ याद आ गया 'बिलकुल ठीक, जब कुम्हावा काले के घर आग लगी थी न, ये बेटा तभी पैदा हुआ !"

मारुति दा ने विकेट ले ली, यह समझते मास्टर को देर नहीं लगी। पर मास्टर भी घुटा हुआ था। उसने पूछा, "कुशावा वाले के घर आग कब लगी थी?"

"ये तो उसी से पूछ।"

"वो बतायेगा?"

"अरे, उसका बाप बतायेगा! उस लड़के से मुझे दस रुपये लेने हैं। मेरा नाम बता उसे।" दादा ने उतनी ही अकड़ के साथ जवाब दिया।

आखिरकार मास्टर ने स्कूल में नाम लिख लिया। मेरी पढ़ाई शुरू हो गयी। मैं दो वर्षों तक स्कूल में पढ़ता रहा। साल में एक बार बाप आता। छोटा भाई चलने लगा था। फिर मेरे एक बहन हुई। मैं पढ़ रहा था, और मेरे भाई-बहन बढ़ रहे थे। अब बाप ने बम्बई के डाबार-गेट पर महाराज बिल्डिंग में, दूसरी मंजिल पर अपना एक कमरा लिया और हम लोगों को साथ ले गया। यहां मेरी पढ़ाई फ्रिअर रोड के म्युनिसिपल स्कूल में हुई।

मेरे बाप की पढ़ाई मराठी की चौथी तक थी, परन्तु उसके अक्षर अच्छे होते। गांव में जब था तब बाप को कितना सम्मान मिलता! उनमें सबसे अधिक पढ़ा लिखा था। कई लोग बाप से चिट्ठियां लिखवाते। बम्बई में अपनी जगह किराये पर लेने का कारण था, हमारे गांव का म्हादबा काले। वह भी उसी बिल्डिंग में पहली मंजिल पर रहता था। वैसे तेज तर्रार आदमी था वह। युनाइटेड मिल्स में काम करता था। पटेल ने काम पर लगने के बाद, गांव के पच्चीस-तीस लड़कों को मिल में काम पर लगाया होगा। रहता तो बम्बई में था, पर गांव के लिए बड़ी तड़प थी उसके मन में। इसका भी एक कारण था।

हमारे गांव साकल के दूसरी ओर गांव था अस्तगांव मारुन। दो गांवों के बीच में नदी और रेलगाड़ी थी। परन्तु हमारे गांव के स्टेशन को साकल कहते। इन दो गांवों में बीच सतत स्पर्धा चलती। अस्तगांव मारुन का गणपत वोराटे बम्बई में मिल में काम करता और साकल का म्हादबा काले भी बम्बई में ही काम करता। उसने जिस तरह अपने गांव के लड़के काम पर लगाये, उसी तरह म्हादबा काले ने भी लगाये।

जिस तरह दोनों गाँवों के बीच स्पर्धा थी, उसी तरह उन गाँवों के लोगों के बीच भी थी। दोनों गाँवों के मेले भी अलग-अलग लगते। एक गाँव ने दत्तोबा तावे का तमाशा बुलाया तो दूसरा गाँव तुकाराम खेडकर को बुलायगा।

म्हादबा के कमरे में हर गुरुवार को भजन होता। उसके दरवाजे पर तख्ती लगी थी 'साखलकर प्रासादिक भजन मंडली'। वहाँ मैं भजन में जाया करता। म्हादबा मुझे गाने को कहता और मैं गाना गाता। वैसे मेरा गला बहुत अच्छा न था, फिर भी मैं गाता था। इसका कारण मेरी माँ थी। वह अपने बाप के लोकगीत गुनगुनाया करती। हमारे पड़ोस में चिमूअक्का, भागूअक्का माँ की सहेलियाँ थी। वे माँ से आग्रह करतीं तो वह गाती।

ऐसे ही एक गुरुवार को मैं म्हादबा के घर भजन के लिए गया। वहाँ चर्चा चल रही थी कि अस्तगाँव का गणपा नाटक बिठा रहा है। गणपा की गतिविधियों पर म्हादबा की कड़ी नजर रहती। हर गुरुवार भजन के बहाने सारे गाँव के लोग जो यहाँ इकट्ठे होते उसका यही उद्देश्य होता था।

अस्तगाँव का गणपा नाटक खेलनेवाला है इस बात को लेकर मंडली असमंजस में पड़ गयी।

म्हादबा ने गणपा की जानकारी देने वाले से पूछा 'रंगा, गणपा कौन सा नाटक बिठा रहा है?

'सामाजिक नाटक खेलनेवाले हैं।

म्हादबा चुप हो गया, तब भजन की शुरुआत हुई। दूसरे गुरुवार को म्हादबा ने घोषणा की, "हम ऐतिहासिक नाटक खेलेंगे।

बस तय हो गया। वैसे पैसा की खास कमी नहीं थी क्योंकि म्हादबा मजबूत हो चुका था। गाँव के पचास लोग जो काम पर लगा दिये थे!

'गढ आला, पण सिंह गेला (किला पाया पर सिंह खोया) नामक नाटक तय हुआ। उन दिनों अर्जुनराव राणे नामक एक अच्छा निर्देशक

मिल-कामगारों के बीच था। म्हादबा उससे मिला। राणे पक्का धंधेवाला था। उसने म्हादबा को पूरी तरह परखा। उसकी व्यावसायिक आँखें तुरन्त यह पहचान गयीं कि म्हादबा को खुश करने से इस नाटक से अच्छे पैसे मिल सकते हैं।

पहला बाजी फेंकते हुए उसने घोषणा की, "म्हादबा, आप शिवाजी का रोल करेंगे।"

इसी बीच किसी ने म्हादबा की नाक की ओर इशारा करके कहा, "मजी, पर शिवाजी की नाक तो सीधी थी न ?"

राणे छाती ठोकता हुआ बोला, "अरे नाक लेकर क्या बैठ गये, साहब! नाक सीधी करना मेरा काम परन्तु म्हादबा की आँखों का जवाब नहीं! क्या नजर, क्या हाइट! माथा तो बिलकुल शिवाजी की ही तरह। किसकी मजाल है जो इन्हें शिवाजी न कहे!"

किसी और ने शंका जाहिर की, तो म्हादबा ने डाँट दिया "ऐ ऽ ऽ ऽ भड़वे, तुझे नाटक का क्या मालूम है ?"

नाटक के अभ्यास का मुहूर्त हुआ। उस समय राणे ने म्हादबा की खूब प्रशंसा की। वह बोला, "म्हादबा जैसे लोग जब इस क्षेत्र में उतरते हैं, तो इसका अर्थ है—कला का विकास, रंगभूमि का विकास! म्हादबा की ओर मैं जब भी देखता हूँ तो लगता है कि यह महाराष्ट्र की रंगभूमि की शान हैं।"

प्रथम मंचन के दिन पास आने लगे। मंचन के विज्ञापन दिये गये। जान-बूझकर हैंडबिल छपवाये गये। हैंडबिल के बीचोबीच म्हादबा का फ़ोटो, उसके दोनों ओर नायिकाओं के फ़ोटो और ऊपर राणे का फ़ोटो। बाकी कलाकारों के छोटे फ़ोटो। इस तरह हैंडबिल पर कुछ फोटू [illegible]। इसमें एक गड़बड़ी हो गयी! मवाली का अभिनय करने वाले कलाकार का फ़ोटो नहीं छप पाया। उसका केवल नाम था। [illegible], यह अन्याय है। मगर साथ हमने भी [illegible] दिया [illegible] टिकट [illegible] हैं और मेरा ही फोटो नहीं!

लोग क्या कहेंगे ?"

मचन का दिन आ धमका। सब लोग सुबह से ही थियेटर पर इस तरह भाग दौड करने लगे, जैसे किसी के घर शादी हो। लोग काम म जुटे थे। मिल का काम खत्म होने पर रिहर्सल और फिर हैंडबिल चिपकाने का काम। बडे हैंडबिल जान बूझकर गणपा के घर के आस पास चिपकाये गये।

ड्रेपरी का साज सामान अर्जुनराव लेकर आये। उसम मजे की बात यह थी कि स्वय शिवाजी महाराज के लिए जो तलवार आयी थी वह ठीक नही थी, अर्थात उसम कोई खास चमक नही थी। इसलिए म्हाम्बा उफ शिवाजी को वह ठीक नही लगी। उनकी जिद थी कि तलवार चमचमाती हुई होनी चाहिए। सच यह था कि वह तलवार म्यान म ही रहनी थी फिर भी म्हादबा की जिद कायम थी 'यह क्या मजाक है कि शिवाजी की तलवार म चमक नही ?" अतत डेढ रुपया अधिक किराया देकर उनने लिए दूसरी तलवार लानी पडी।

म्हादबा प्रयत्नो म व्यस्त थे। वे प्रत्येक कलाकार से पूछते क्या बे भडवे! सब ठीक तरह स याद है न ? भूला तो, याद रखो स्टेज पर आकर लात जमाऊँगा।"

पर मजे की बात यह थी कि स्वय म्हादबा को ही अपन सवाद याद होने का भरोसा नही था। राणे को वे बार बार समझाते 'वैसे मैं घबराता नही परतु पहला पहला भाषण कच्चा है। उतना यदि सभल गया तो फिर कोई रुकावट नही है। फिर देखिएगा, किस तरह दनादन गाडी हाँकता हूँ!'

दूसरी घटी बजी। कलाकारो ने पैर छूना प्रारम्भ किया। पहले म्हाम्बा फिर राणे और बाद मे मेकअपमैन भी क्रमश पैर छूने लगे। धूप जलायी गयी।

तीसरी घटी बजी और परदा उठा!

पहले अक मे लगातार तालियाँ बजती रही क्योकि सामने का 'माव सब अपने ही घर का था। तानाजी के घर का सेट था। पहला अक पूरा हुआ।

अब दूसरा अंक। इस अंक में म्हादबा अर्थात् शिवाजी की भूमिका थी। राणे ने म्हादबा को बुलाया और सिंहासन की ओर संकेत करते हुए बताया, "म्हादबा यहां बैठना है।"

म्हादबा ने उस पर तो बैठने की हां कर दी, परन्तु संवाद याद रखने वाली बात को वह टुकरा रहे थे।

'सिर्फ गुरुज्ञान संभाल लीजिए।" राणे ने समझाया।

म्हादबा बैठ गये। म्हादबा की ऊंचाई कम करने के लिए सिंहासन के नीचे एक प्लास्टर बढ़ाया गया। मानो दिन में मूढ़ राणे रह, पीछे और बायां ओर भी एक-एक प्लास्टर जुटा लिया गया।

इस बीच एक गड़बड़ी राणे के ध्यान में आ गयी। म्हादबा उर्फ शिवाजी महाराज 'बाय पोज' की मुद्रा में सिंहासन पर बैठे थे और उन्होंने चमचमाती तलवार म्यान से निकालकर हाथ में ले ली थी। सहज में तलवार म्यान से निकालकर हाथ में रखने की कोई आवश्यकता नहीं थी। राणे कहे, "इसी अवस्था [illegible] ।"

[illegible] ! [illegible] रहे।"

राणे घबरा उठे। सिंहासन के नीचे बैठा प्रॉम्पटर बुदबुदाया, "अजी, म्हादबा, सिर हिलाइये! शेलारमामा को बैठने के लिए कहिए!"

पर कोई असर नहीं। शिवाजी की दृष्टि लोगों की ओर एकटक। राणे की घबराहट बढ़ गयी। चारों ओर से प्रॉम्पटर म्हादबा को सूचना देने लगे। इतना ही क्यों, अग्निवाला भी म्हादबा को संकेत करने लगा, "म्हादबा, उठिए, शेलारमामा से गले मिलिए!"

पर कोई असर नहीं। भाले की तरह सीधी नज़र किये म्हादबा चुपचाप बैठा रहा। निमंत्रण के वाक्य दुहरा दुहराकर शेलारमामा थक गया।

य सारा किस्सा प्रेक्षकों की समझ में आ गया। उन्होंने तालियाँ बजाना प्रारम्भ किया। अंतत: परदा गिराना पड़ा। राणे भड़क उठा, "म्हादबा आपको अक्ल है या नहीं? भाषण भूल गये तो भूल गये। बोलने की छोड़िए पर कम से कम अपनी जगह से तो उठना चाहिए!"

म्हादबा दबी आवाज़ में बोले, 'कैसे उठूं?'

"क्यों? क्या हुआ?"

बड़े असमंजस में म्हादबा किसी तरह बोल पाया: उठूं कैसे? धुख में ही टट्टी जो कर दी!"

म्हादबा काले का यह दृश्य देखकर मैंने नाटक के बारे में सोचना ही छोड़ दिया। परन्तु मेरी भजन और गाने में रुचि बढ़ी। म्हादबा काले ने इतनी मात खायी, फिर भी नाटक से उसके विचार हट नहीं पाये।

उन दिनों मेलों का खूब ज़ोर था। इसी समय कन्हैयालाल माणिक-लाल मुंशी का मंत्रिमंडल बना था। चारों ओर मेलों में गाने बजने लगे—दारू पीना छोड़ दो तुम हिन्दुस्तानी भाई। यह गाना ज़ोरों पर था। फिर म्हादबा काले और हमारी बिल्डिंग के कुछ उत्साही लोगों ने 'रणधीर बाल मेला' की स्थापना की। एक अगस्त यानी सुनहरा दिन नाटक मंचन के लिए चुना गया।

उसमें मुझे भी शामिल किया गया था। उस समय मैं नौ दस साल

का रहा होऊँगा। मुझे एक गाना गाना था और अपनी ही जाति अर्थात नाई का अभिनय करना था। नाटक की स्टोरी इस तरह थी—

'एक शराबी नाई सदा (नाटक में मेरा नाम) एक ग्राहक को शराब की ओर खींचता चला जाता है और वह ग्राहक पक्का शराबी बन जाता है। फिर वह सदा को भगा देता है और कसम खाता है—अब कभी दारू नहीं पियेगा।'

म्हादबा अपनी नौकरी सभालकर काग्रेस का काम करता था। उसने यह नाटक बिठाया और कोलाबा, फोर्ट आदि इलाको में गली गली उसका मचन होने लगा। परन्तु बोरा बाजार या बाजार गेट में नहीं हुआ था। मन में आया कि घर के लोग भी देखें, प्रशसा करें। पर सयोग आता ही न था।

फिर जिस सयोग की प्रतीक्षा थी वह आ टपका। वैसे, बाप को यह अच्छा न लगता कि मैं किसी नाटक-मडली में काम करूँ, क्योंकि अध्ययन चौपट हो जाता, परन्तु म्हादबा काने की मडली में होने के कारण उसकी एक न चलती।

बोरा बाजार में हमारी मडली का कार्यक्रम तय हुआ। मेरे सहित मडली के सभी लोग खुश हुए। सारा गाँव कितनी भी तारीफ करे, पर घर की बात कुछ और ही होती है। इसीलिए सारी बाल-गोपाल मडली खुश थी।

ठीक साढ़े-नौ बजे मडली का कार्यक्रम शुरू हुआ। पहले गाने के बाद नाटक शुरू होना था। मुझे एक गाना गाना था। गाना गाते समय मैंने सामने देखा तो बाप बैठा था। बगल में छोटा भाई। स्त्रियों में माँ बैठी थी।

मैंने जोश में गाना गाया। माँ के चेहरे पर खुशी झलक रही थी। फिर नाटक शुरू हुआ। मेरी एंट्री (प्रवेश) कुछ देर बाद थी। उसमें मुझे बगल में झोला हाथ में उस्तरा—कुछ इसी तरह आना था। फिर, ग्राहक को साबुन लगाते समय, कुछ सवाद थे। सवाद करते करते बाप की ओर देखा। बाप की नजरें मानो कह रही हों, 'भडवे, घर चल! फिर बताता हूँ।'

और हुआ भी वही। घर पहुँचते ही उन्होंने कसकर एक चाँटा मारा और चेतावनी दी, "तेरी तो, तू अपने धंधे की इज्जत किस तरह चौराहे पर नीलाम कर रहा है? कल से मंडली में जाना बंद।

बाप का कहना सही था क्योंकि बाप ने गली में बैठकर धंधा करके भागीदारी में दो दुकानें खोल ली थी—एक कामवजी स्ट्रीट पर और एक बाजार गेट स्ट्रीट पर। उस गली में जो नाई मंडली बैठती थी, उनमें गणपत ताठे, यशवंत सालुंके, बाबूराव मोरे और मेरा बाप—इन चारों के मन में आया कि जमाना बदल रहा है, ऐसे में दुकान खोलना ठीक रहेगा। इसलिए उनने पहली दुकान बाजार गेट में ली।

उस समय आज की तरह पगड़ी का झंझट नहीं था। सिर्फ मकान-मालिक से पहचान पर्याप्त थी। वह मालिक बाप की पहचान का था। उसने कहा—बीस रुपये किराया, फर्नीचर, आइना, उस्तरा आदि सब पाँच सौ रुपये में। अर्थात पाँच सौ बीस रुपये में दुकान। प्रत्येक के हिस्से एक सौ तीस रुपये आये। बाद में कामवजी पटेल स्ट्रीट पर चार सौ रुपये में। उस समय उसे लगता कि स्कूल के बाद लड़के को दुकान संभालनी चाहिए। स्वयं का अपना धंधा सीखना चाहिए, न कि चौराहे पर उसकी छवि बिगाड़नी चाहिए।

बाप की इच्छानुसार मैं स्कूल जाता रहा। बीच-बीच में दुकान पर भी जाता रहा। पर मन शांत नहीं था। ईश्वर ने आवाज दी है, वह क्या सिर्फ चुप बैठने के लिए? मुझे गाने ने सचमुच पागल कर दिया था। दुकान में ग्राहक जब न होते तब नौकर मुझे गाने को कहते। और मैं भी हाथ से बेंच पर ठेका देकर गाना गाता।

बाजार गेट स्ट्रीट पर हमारी दुकान थी। उसके सामने चना गली। वहाँ एक गैंग थी। नारायण, शिवराम, लुईस—इन सबकी दादा मंडली थी। उनका दुक्तारा भजन मंडल था। वैसे ये वे सब दादा लोग। साथ ही दुकान के ग्राहक भी। मेरा गाना सुनकर उन्होंने पूछा, "हमारी भजन-मंडली में आओगे?" मुझे बहुत खुशी हुई। मैं उनके भजन में जाने लगा।

इस भजन मंडली का नाम बहुत मजेदार था—दाणादीन भजन-मंडल।' एक हारमोनियम, एक ढोलक, एक चिमटा, एक दिमडी—ये सब सामग्री थी। नारायण गायक था, उसके साथ मैं गाता। ये सारे लोग राम के नाम पर कुछ न करते। दिन भर नाके पर खड़े रहते। रात दो बजे सोते। सुबह दस बजे फिर नाके पर। दो देना, दो लेना—बस यही उनका धंधा था। अन्यथा, चिलम सुलगी रहती।

उन दिनों युद्ध भड़क उठा था। फोर्ट इलाके में सैनिक आते। उन्हें धोखा देना कुछ लोगों का धंधा था। वैसे भजन में राष्ट्रीय और ब्रह्मानंद के गान होते। हमारे भजन का कार्यक्रम शनिवार रविवार को अवश्य होता। उसे 'सुपारी' कहते। हमारे भजन की सुपारी का अर्थ था कि सिर्फ दो तीन बार गांजे का दौर (चिलम) होना ही चाहिए। हमें सुपारी देनेवाले खास गांजेबाज होते।

मेरा सौभाग्य था कि मैं उसमें फँसा नहीं। शायद फँस भी जाता, परन्तु पहला कश खींचते ही मुझे ब्रह्मांड याद हो आया, आँखें पथरा गयीं, सब घबरा उठे। तब से मैंने तय कर लिया कि चिलम छुऊँगा नहीं। मैं शायद उसमें पड़ता भी नहीं, परन्तु हुआ यूं कि भजन के लिए हम गोलाकार बैठते। दो चार गानों के बाद, मालिक सुपारी का थाल लेकर आता। उसके थाल में दो हार, अबीर, नारियल, व सुपारी आदि सामग्री होती। हारमोनियम, ढोलक पर अबीर डाला जाता, तब मुख्य गायक को जिसे 'बुवा' (नारायण) कहते हैं हार पहनाया जाता। दूसरा लुईस को, जो ढोलक बजाया करता। वह इस समय जय-जयकार करता। फिर सबको अबीर लगाया जाता। इस कार्यक्रम के बाद चिलम भरकर लायी जाती। एक के कश लगाने के बाद बड़े अदब से दूसरे के हाथों में थमा दी जाती। लेने वाला भी बड़े अदब से लेता और कहता, "जय बम भोलेनाथ जमा दुश्मन का नाश।" कसकर दम लगाना और अपने बगल में सरका देना। इसी तरह यह चलता था। जो कश न लगाता, उसे हाथ लगाने का अधिकार नहीं था। अन्यथा उस पुड़िया के पैसे देने होते। या फिर दम लगानी होती। मैंने चिलम ली और बगल में बैठे व्यक्ति को देने लगा। वह लेता ही नहीं था।

'दम लगा, नही तो पुडिया मे पैसे निकाल !" उसने कहा।
सबने उसका समर्थन किया।
मैं किंकर्तव्यविमूढ ! एक दम लगायी और माँ बाप याद आ गये।

डेढ साल तक इस भजन मंडल म रहा। हमारे प्रोग्राम घर म गैलरी मे हुआ करते। घर के लोग, चाल के लोग और सडक से आने-जाने वाले लोग हमारे श्रोता होते। वैसे हम श्रोताओ की आवश्यकता ही नही थी। कही भी रात भर चिल्लाने की जगह चाहिए थी।

गैलरी म जब हमारा भजन चल रहा होता तब चाल के लोग पानी भर रहे होते थे। परन्तु हमारा भजन चलता रहता।

जिस दिन कार्यक्रम होता उस रात इस्त्री किये कपडे पहनकर मंडली निकलती। ट्राम, लोकल से जाते। लोकल मे गाते जाते। कार्यक्रम पूरा करके अलस-सुबह की लोकल से वापस आ जाते। सारे लोग नींद से बेहाल हो जाते।

नाका पहुँचते पहुँचते चार बज जाते। चाय की दूकानें उस समय खुलने लगती। यदि खुली न होती तो धक्का मारकर खुलवायी जाती। वह होटलवाला मालिक इस गग को देखते ही लपाक से दूकान खोल देता। फिर चाय पपडी का नाश्ता। कोई इस बेंच पर कोई उस बेंच पर सो जाता। दूकान के सामने पडी बेंचें हमारे सोने की निश्चित जगह होती। दूसरे दिन रविवार। दूकानें बन्द होती। सुबह माँ जब तरकारी खरीदने निकलती तब खोजती कि राम्या किस बेंच पर सोया पडा है। मुझे उठाती ए बाबा उठ उधर तेरा बाप चिल्ला रहा है। आज रविवार है, धधे का दिन है। चल उठ, दूकान जा।

फिर मैं दौडते हुए निकल पडता।

दिन बीतते जा रहे थे। बाप को मेरी बात ठीक न लगती। मैं भजन न छोड पाता। धीरे धीरे इसम रुचि बढती ही जा रही थी। कभी कभी भजनो के बीच मुझे हार पहनाये जाते। नारायण बडा बुवा और मैं छोटा। नारायण के बाद मुझे ही सम्मान मिलता। नारायण तो दादा

भी था। उसकी जेब म हमेशा चाकू होता। हफ्ते मे एकाध दिन मारपीट किये बिना उसे चैन न पडती। पहले उसे बुवा नाम से पुकारते थ। उसके बाद मुझे बुवा नाम से पुकारने लगे। उसका श्रेय नारायण का ही था। एक बार भजन के दौरान उसने कहा था, "इस बुवा को हार पहनाओ।" तब से मैं बुवा बन गया था।

रविवार का दिन था। खाना खाकर दुकान जाना था। इतने मे नीचे स नारायण न आवाज दी। मैंने उसे ऊपर बुलाया।

"क्या बुवा जी क्या काम है?" उसके ऊपर आने पर मैंन पूछा।

वह बोला, "जल्दी चल, भजन की सुपारी (निमत्रण) आयी है।"

"अरे! भजन की सुपारी? और यह भरी दोपहरी?"

'हाँ हमको जाना ही है। अरे देख, पद्रह रुपये की सुपारी है!" नारायण न जानकारी दी।

'अरे भई, पर सुपारी है किस जगह?"

"तू ठीक आधे घटे के भीतर फिअर रोड के थारे पजाब हाटल म आ जा। हम सब वहाँ पहुँचते हैं।"

इतना कहकर नारायण चला गया।

बाद मे मैंने माँ को बताया, "मैं भजन म जाता हूँ, दादा को समझा देना।" बाप को हम सभी दादा कहते। मैं मेरे पजाब हाटल के पास पहुँचा, परन्तु वहाँ कोई नही था। मैंने आसपास नजर दौडायी कि पताका कहा लगी है! कभी-कभी किसी के घर दोपहर मे भी पूजा होती है। परन्तु कही कुछ दिखायी नही दिया।

स्साला! काहे की सुपारी? कुछ समझ मे नही आ रहा था।

इतने मे दूर हमारी गग दिखायी दी। ढोलकीवाला हारमोनियम वाला, गले मे पटटे लगाये चले आ रहे थे।

"क्या बुवा? कहाँ सुपारी है?' पास आने पर मैंने पूछा।

इस पर नारायण ने हँसते हुए कहा, 'अरे आज अलग तरह की सुपारी है। हमारी सुपारी हमेशा पूजा छठी की होती है, पर आज की सुपारी है।"

"पर बुवा, जनाजे मे गाते हुए चलना बडा अजीब लगता

समगाना वाला ।

अ- पगन ! जब आदमी पैदा होता है तब हम गात-बजाते हैं तो उसके मग्र पर गाने बजाने म क्या एतराज है ?"

नारायण बड़ी शांति म यह सब समझा रहा था। सब सिर हिला रहे थे। प्रकार बरन की किसी की हिम्मत नहीं थी। साथ ही पग भी पहन ही न लिये थे। ऐसी स्थिति म सुपारी होनी ही थी।

अनत जनाजा निकला। नारायण और सारी मडली मजे म गा रही थी। मैं भी गा रहा था। पर अपने को देखन पर कोई क्या कहेगा, इसका डर बना रहना। चलते समय सरगरी निगाह म देखता रहना और गाना रहना।

आखिरकार जिसका डर था वही हुआ। बाप के भागीदार बाबूराव मोर न हम जनाजे के साथ देख लिया। यह बटा यहाँ कैस आ टपका? खैर, जो कुछ समझना था उसने समझ लिया था। बाप को जो बताना था वह उसने बता दिया। बाप न जो हड्डियाँ ढीली कर दी, वे काफी दिना तक चरमराती रही।

रविवार प्रर्थात धधे का दिन कटनी का दिन। काम की व्यस्तता।

एस ही एक रविवार को मैं मिल गली गया। सिनेमा जाना था, इसलिए पैसा के लिए गया।

विट्ठल क्या यह तेरा बडा लडका है?' मुझे देखकर उपस्थिता म स एक न पूछा। बाप काम म व्यस्त था। उसने गरदन हिलाकर ही हामी भरी। फिर वह मेरी ओर देखकर बोला 'क्या रे कैसे आया?'

मैं सिर खुजलाता खडा रहा।

विठोबा यह स्कूल जाता है या सिर्फ आवारागर्दी करता फिरता है? ग्राहक फिर बोला।

अरे अंग्रेजी पढ रहा है अंग्रेजी ! गिरगाँव क बडे स्कूल म पढता है।'

किस स्कूल म रे ?"

"आठ नम्बर की ट्राम खलास होती है, वहां।"

"अंग्रेजी पढ़ बोल सकता है? या सिर्फ स्कूल ही जाता है!" ग्राहक का माथा मेरी ओर था।

"यह दस गया, बच्चा वैसे होशियार है। हमारे घर में कोई पढ़ा ही नहीं, यही पढ़ाई कर रहा है बच्चा।" पैर पर उस्तरा नीचे-ऊपर घुमाता बाप बोला।

"ए विट्ठल, सबको अपना बच्चा अच्छा ही लगता है।" ग्राहक दाढ़ी खुजलाता बोला।

"तुम्हें परखना है? (मेरी ओर देखकर) ऐ, वह अखबार उठा ला।" बाप ने कहा।

सड़क पर एक अंग्रेजी अखबार का फटा टुकड़ा पड़ा था। मैं वह उठा लाया।

"पढ़!" बाप ने आदेश दिया।

अब बताइये, मैं ले-देकर अंग्रेजी स्कूल की दूसरी में था। चार साल म्युनिसिपल स्कूल में और डेढ़ साल अंग्रेजी स्कूल में गया था। मैं क्या पढ़ सकता? अच्छा, यदि न पढ़ता तो सारे लोगों के सामने बाप पीठ गीली कर देता। फिर सिनेमा की तो बात ही दूर थी। वह वार-टाइम था। फाट में सोलजर (सैनिक) का राज्य। अंग्रेजी उच्चारण सुन रखे थे। मैंने मन ही मन तय कर लिया, 'ठोक दो, देखा जायेगा!' और धड़ाधड़ शुरू हो गया। बाप गरदन डुलाता खुश हो गया। सबको बता रहा था, "देखिए, बच्चा कितना होशियार है! कैसे पढ़ता है!" मुझे सिनेमा के पैसे मिल गये। पर सच बताऊँ, मैंने क्या पढ़ा मुझे भी नहीं मालूम। फिर भला उनको क्या समझाता? और सुननेवाले में से भी किसी ने नहीं पूछा कि इसका क्या अर्थ होता है। पर यदि पूछा जाता तो बड़ी मुश्किल हो जाती।

बस एक बार ऐसी मुसीबत आ गयी थी। हम लोग [illegible] सायकल [illegible] थे। मैं, मेरा बाप और [illegible] मेहमान थे। [illegible] पर पानी बरसती थी, इसलिए वहीं उतरकर [illegible] गाड़ी का इन्तजार कर रहे थे। [illegible]

आयी। तभी महमानो म स एक ने पूछा 'विठोबा, कितने बज हाग ?' बाप न रेलव की घडी दखी। यह हमशा की तरह आज भी बन्द पडी थी। वहाँ किसी क पास घडी थी नही। थोडी ही दूरी पर एक गोरी महम खडी थी। उसके हाथ म घडी थी। उसे बाप न देख लिया था। बग। बच्चे की होशियारी प्रदर्शित करने का यही मौका देखकर बाप ने मेहमानो के सामने मुझसे कहा ए रामचन्द्र या जाओ। उस गोरी महिला स पूछो कितना बजा है ? सीधे अग्रजी म पूछना।

अब हो गयी न मुश्किल ? बाप का हुक्म था। गया सहमत सहमते उस गोरी महिला के पास पहुँचा। पहल बाप की ओर देखा वह महमानो के साथ बातचीत म व्यस्त था। मेरा बाप ही अधिक बोल रहा था शायद उसका विषय यही रहा होगा मेरा बेटा कितना होशियार है।

बाप बतिया रहा था परन्तु उसका ध्यान मेरी ओर था। जैसे ही मैंने उसकी ओर देखा, उसने हाथ स इशारा किया, पूछ घबरा मत। यह सारा तमाशा गोरी महिला नही देख रही थी, यही ठीक था। बचारी का ध्यान दूसरी ओर था। अब उसका ध्यान मेरी ओर गया। उसने मधुर मुसकान फेंकी। मुझे अच्छा लगा। धीरज बँधा।

ह्वाट टाइम ?" मैंने सिर पर पत्थर रखकर पूछा।

हाफ पास्ट एलेवन। घडी की ओर देखते हुए उसन कहा। उसने तो यह कह दिया परन्तु मुझे एक भी शब्द समझ म नही आया।

मेरा बाप और सारे महमान यह सब देख रहे थे। जसे ही गोरी महिला ने घडी देखी उस समय मेरे बाप ने महमानो को बताया होगा मैंने कहा था न कि बच्चा अग्रेजी जानता है।

महिला ने समय बताया पर मेरी समझ म कुछ नही आया। फिर पूछने पर समझ म आयगा ही इसका भी विश्वास नही था। मैं लौट आया। बाप के पास पहुँच गया।

उसने टाइम क्या बताया ? बाप न पूछा।

वह बोली सारी घडी बन्द है।'' मैंने कह डाला।

बाप ने महमानो को बताया देखिए न, पढ लिख गय तो कही कोई काम रुकता नही है। टाइम मालूम नही हुआ तो कोई बात नहा, पर यह

तो मालूम हो गया कि घड़ी बन्द है।"

ऐसा बाप और ऐसा उसका स्वभाव। उसकी बात ही कुछ और। समाज मे तरह-तरह के लोग देखे, पर उसका नमूना बिलकुल अलग। किसी भी बात पर इस ढंग से पेश आना कि लोग याद करें। फिर लाग कितना ही बुरा कहें, चलेगा। परन्तु स्वभाव बदलने का सवाल ही न उठता।

एक बार मेरे बाप ने एक धोती खरीदी। घर आया। दोपहर के ग्यारह-साढ़े ग्यारह बजे होंगे। माँ रसोई मे थी। बाप ने कमरे के बाहर गैलरी म अपनी बैठक जमायी और माँ स बोला, "अरी देख तो ज़रा, धोती लाया हूँ।"

माँ को बाप की खरीददारी मालूम थी। जो भी चीज़ खरीदी गयी है, उसकी यदि तारीफ नही की गयी तो माँ बहन का उद्धार सहज था।

"अरी सुनो, मैं क्या कह रहा हूँ। धोती लाया हूँ, देखती हो?" बाप ने माँ स फिर कहा।

"मेरे हाथ आटे स सने हैं, मैं फिर देख लूगी। पर कितने की पड़ी?" माँ न कमरे के भीतर से ही पूछताछ की।

"मुझे बोल तो ग्यारह रुपय रहा था, पर नौ रुपये मे खरीदी। सस्ती है।"

सिर्फ नौ रुपये? आपको पता नही कहाँ से सस्ता मिल जाता है।"

इतने मे पड़ोस की चिगूबक्का का पति तुकारामबुवा आया। उसने देखा कि बाप के परा पर नयी धोती है। जाते-जाते उसने पूछा, "कहिए विठाबासेठ, नयी धोती खरीदी है?"

'विठाबासेठ' कहने म बाप बड़ा खुश। तुरन्त चाय पान, सुपारी की व्यवस्था हो ही गयी समझिए। उनके कुछ खाने-पीने वाले मित्रो ने यह ताड लिया था। 'क्या विठोबासेठ, आज आपने कमाल कर दी, भई!' इतना कहते ही बाप तैश म आ जाता और चाय पान हाज़िर! तुकाराम-बुआ द्वारा 'विठोबासेठ' कहते ही मेरे बाप ने तुकारामबुवा का हाथ पकड़-कर उसे बिठा लिया और बोला, "देखिए न, फिनले मिल की धोती है।"

सभी को लगता है कि अपनी खरीदी गयी वस्तु की तारीफ होनी चाहिए। यदि मेरे बाप को ऐसा लगता है, तो इसमें क्या बुराई है? साथ ही प्रशंसा करनेवाला बड़ा चालाक भी होता है, कभी कभी वह यह बताना चाहता है कि उसे काफी कुछ मालूमात हैं। तुकारामबुवा उन्हीं में से एक थे। बाप के बैठते ही वह बैठ गया। धोती हाथ में ली। उसका एक पल्ला अँगुलियों में दबाकर खींचते हुए बोला।

"विठोबासेठ बड़ी अच्छी धोती है! कितने में ली?"

"आप ही बताइये कितने में ली होगी?

'तेरह रुपये नहीं तो चौदह में ली होगी।'

इस बात पर मेरा बाप कुछ इस तरह हँसा कि तुकारामबुवा का चेहरा देखते ही बनता था। कोई खास बात बता रहा हो इस तरह के भाव चेहरे पर लाते हुए उसने कहा, 'अरे नौ रुपये में मिली है यही?'

"क्या कहा? नौ रुपये? अरे बड़ी सस्ती मिली!"

पहचान का था। और एक ही धोती बची थी। अरी ओ तुकाराम बुवा के लिए चाय बनाओ।"

यह हो गया उनके मन लायक। परंतु मान लीजिए यदि उलटा हो जाता तुकारामबुवा कह देते 'विठोबासेठ धोती आठ रुपये की लगती है' तो बाप एक झटके से धोती छीनता हुआ कहता 'बड़े पारखी बने फिरते हैं, उठिए! हुह, सात आठ रुपये में धोती मिलती है! हमने झख मारी जो नौ रुपये दिये!"

बाप जब कभी किसी दूकान पर जाता कोई चीज खरीदता—मान लीजिए सब चिवड़ा ही खरीदता तो वह यह न देखता कि बराबर तौला गया है या नहीं। उसका ध्यान इसी में रहता कि धागा तो कम नहीं लपेटा गया! वह कहता, 'अरे, जरा ठीक से बाँधो, बहुत दूर जाना है।

घर जाने पर, वह उसे ठीक तरह खोलता और अंटी बनाकर रखता। घर की खूँटियों पर कितनी ही अंटियाँ लटकती होतीं। उसे इस बात की सनक थी। कहीं भी कपड़ा थोड़ा भी फट जाने पर, वह उस धागे से सीता।

कोई भी नया कपड़ा खरीदने पर वह पहनने को न निकालता, रख

देता। दो चार साल बाद, उसे पहनने का उसका अपना ही अन्दाज था।

बाप जब मरा, तब उसकी पाँच कमीजें मैंने अपनी नाप की बनवायीं।

महात्मा गांधी ने 'अंग्रेजो—भारत छोड़ो' आन्दोलन की घोषणा की। बस, सारी बम्बई सुलग उठी और मैंने अपनी पढ़ाई छोड़ दी। मैं एक महीना उधर गया ही नहीं। माँ बाप को डर लगता। हमेशा दंगे फसाद की खबरें आतीं।

आज ट्रॉम जलायी गयी, कल अमुक चीज जलायी गयी। तब बाप ने कहा, "स्कूल बन्द, धन्धे में लगो!"

सच बात तो यह थी कि धन्धे में मेरा मन ही न लगता। मुश्किल रविवार को होती। सारे दोस्तों की रविवार की छुट्टी होती। मैं काम में टालमटोल करता।

रविवार की छुट्टी मिल सके, इसलिए एक सॉलिसिटर के दफ्तर में 'पियॅन' (चपरासी) के रूप में नौकरी करने लगा।

माधाखाना में दोस्त कम्पनी का एक कबड्डी संघ था। मैं उसमें भी शामिल हो गया। दस से छह तक नौकरी। सुबह शाम मार्शियाना हमारा अड्डा बन गया। हम जिसमें रहते, वह महाराज बिल्डिंग। हमारे बगल की बिल्डिंग भी महाराज ही थी, पर हमारी बिल्डिंग का मुँह [illegible] की ओर था और उस बिल्डिंग का मुँह बोरा बाजार की ओर। बोरा बाजार की बिल्डिंग में पहली मंजिल पर कांग्रेस का ऑफिस था। उसी मंजिल पर बाबूराव मोरे रहते। ऑफिस रास्ते से लगा हुआ था। [illegible] बीच में रहते थे। दोनों के बीच एक चौक था। बयालीस का आन्दोलन सुलग चुका था। वसन्त हेलेकर, शेट्टी, नागेश रेड्डी—कांग्रेस के सारे कार्यकर्ता इस आन्दोलन में थे। वीर-नरीमन रोड पर बोरी [illegible] था। वैसे इस इलाके में कुछ बड़े होटल भी थे। उसमें सारे गोरों के पहले होते। इसीलिए वहाँ [illegible] ने दनादन बम फेंके।

वसन्त हेलेकर हमारा मित्र था। मुझसे बड़ा। छात्र।

"कालबादेवी में रामवाडी पोस्ट के पास एक पानवाला है, उससे कहना कि वसन्त हेलेकर ने तरकारी की थैली माँगी है। वह तुम से आओ। मैं तुम्हारा इन्तजार करूँगा। तुम्हें एक रुपया दूँगा।'

मेरी समझ में नहीं आ रहा था, यहाँ तरकारी उपलब्ध होने के बावजूद यह कालबादेवी से तरकारी क्यों मँगवा रहा है? हाँ, यदि भायखला से लाने को कहता, तो बात कुछ समझ में आ भी सकती थी। पर कालबादेवी?

पर अपने को रुपया मिल रहा था, इसी की खुशी थी। वैसे वसन्त हेलेकर ने मुझे सख्त हिदायत दी थी "थैली खोलना मत, उलट फेर नहीं करना, सीधे मुझे लाकर देना।"

मैं थैली लेकर तुरन्त लौट पड़ा, पैदल ही। वैसे थैली कुछ वजनदार लग रही थी। थैली खोली जाय, ऐसा मन में एक बार विचार भी आया पर नहीं खोली। कभी हाथों में कभी पीठ पर रखते हुए मैंने थैली लाकर वसन्त को सौंप दी। उसने एक रुपया दिया। वह दिन सिनेमा देखने में और खान-पान में बड़े मजे से बिताया।

बाद में मुझे मालूम हुआ कि मैं जो थैली लाया था उसमें हथगोला था।

उस आन्दोलन में हमारी कबड्डी टीम का कप्तान शान्ताराम गागल था। उसने मुझे सन्देश दिया कि वसन्त ने तुम्हें काँग्रेस आफिस में बुलाया है। नीचे से एक शार्टकट रास्ता था। उस रास्ते से बिल्डिंग में घुसा। पहले मोरे के घर गया। जीने के पास ही उसका कमरा था। पर सब चुपचाप थे।

क्या बात है मामी, आज सब चुपचाप हैं।" मैंने पूछा।

मामी ने सामने के कमरे की ओर अँगुली उठाते हुए 'चुप रहो' का इशारा किया। मोरे के घर की खिड़की से, काँग्रेस के आफिस में कुछ हलचल दिखायी देती। मैंने देखा कि एक पुलिस इंसपेक्टर पिस्तौल लेकर दरवाज़े के पास छिपकर खड़ा था। दीवार से सटकर वसन्त, नागेश, शेट्टी—कार्यकर्ता खड़े थे।

काँग्रेस के उस दफ्तर में पुलिस ने छापा मारा था। (इसी दफ्तर

म एस० एम० जोशी, लोहिया वेश बदलकर आये थे) । छापा बहुत मजेदार ढग स मारा गया था । किसी को भी सशय न हो, इस ढग की बात थी । दूसरी मंजिल पर सडास के पास सी० आई० डी०, नीचे आई० डी० । गाडी दूर, मारुति लेन केपास खडी थी । छापा मारने के बाद बाहर से यदि कोई आय तो उसे दिखायी न दे—इस हिसाब से इसपेक्टर बैठा था ।

उस दिन मीटिंग थी । किसी को उडाने की योजना थी । इसलिए सब इकट्ठे हो रहे थे । जो मीटिंग के लिए आते, उन्हे किसी प्रकार की जानकारी न होती । वे बडे इत्मीनान से भीतर आते । भीतर कदम रखते ही फँस जाते ।

सडास के पास के सी० आई० डी० वाले पीछे-पीछे आते । जरा भी झांककर टलने की कोशिश करने पर पीठपर धौल पडती कि भीतर बैठो ।

यह सब देखकर मैं घबरा गया । बाहर किस तरह भागा जाये, यह समझ न पडता । मामी मेरे साथ नीचे आयी, तब कही मुक्ति मिली ।

हमारे कबड्डी सघ के दो-तीन लडको को पकड लिया गया था । तब हमारे गेग पर दुख की छाया फैल गयी थी । कबड्डी खेलना बन्द हो गया था । हफ्ता बीत गया । धीरे धीरे हम पूर्ववत होने लगे । खेलने लगे । वहाँ एक बडा सा चबूतरा था । रात मे सब वही सो जाते ।

दो चार दिन बीते । एक रात दो बजे होगे । हमारी आँखो पर टार्च की रोशनी डाल पुलिस हमको जगा रही थी । दो एक 'क्या है ?' बोले । पर डडा से जबडे पर पडी । गाडी सामने ही खडी थी । सब उसमें बैठ गय । गाडी हमको लेकर सात रास्ता पुलिस स्टेशन मे आयी ।

हम कुल मिलाकर नौ लोग थे । सब बाहर बैठे थे । साहब एक एक को भीतर बुलाता । क्या पूछता—यह सुनायी न पडता, पर तमाचे की आवाज सुनायी देती । जिस पर पडती उसका चीखना सुनकर, बाहर हमारे हाथ पैर कांपने लगते ।

मेरा नम्बर आया । मैं थर थर कांप रहा था । मैं इतना घबरा गया

था कि यदि किसी ने मुझे अंगुली से छुआ भी होता तो भी मैं गिर पड़ता।

"बोल, गवनर की गाडी उलटाने की साजिश थी या नही ?" वैसे साहब मनाने की मुद्रा मे बोल रहा था, परन्तु मुझे कुछ समझ नही आ रहा था—कौन गवनर, कैसी साजिश ? साहब बोलता जा रहा था। मैं लगभग बहरा हो चुका था। साहब का दायाँ हाथ कान पर पड़ा, कुछ पता ही नही चला।

मैंने पैंट म पेशाब कर दिया था।

सुबह हम सब घर आ गये।

बाप ने मुझसे नौकरी छुड़वायी और दूकान पर काम म लगा दिया। सुबह दूकान जाने के बाद सीधे रात म ही घर वापस लौटना होता था। इसके अलावा दूसरी कोई बात नही। सब बन्द हो गया। कबड्डी, वहाँ आना-जाना आदि सारी बातें बाप को पता चल गयी थी। बाप ने कहा 'भड़वे, देशभक्त बनता है ? पहले उस्तरा चलाना सीख !"

ऐसा कहकर उसने मुझे खूब पीटा। मैं चुप रहा। दूकान म आता, परन्तु गाने का शौक न जाता। खूब अच्छा गा सकू, ऐसा हमेशा लगता रहता। इसलिए मैंने पोवाडा (वीर-गान) गाना शुरू किया। बस, मैंने मन-ही मन तय कर लिया कि मैं भी शाहीर (वीर काव्य गायक) बनूगा। फिर मैं बसन्त बापट का गीत सग्रह ले आया। याद करना शुरू किया।

मेरे बाप के भागीदारो के लड़के दत्त ताठे, पाडुरग मोरे, जगन्नाथ काले—यह दोस्त, मडली मेरा साथ देने लगी। फिर कही सत्यनारायण की पूजा कही मनोरजन के कायक्रम मे पोवाडा गाया जाने लगा। यह सब मुफ्त। ताल हाथो से ही मिलाते, या एकाध खोका डिब्बे पर भी मिलाते।

ताल से याद आया—

मैं तेरह चौदह साल का रहा होऊँगा। काफी बडा हो गया था। तब इतने बडे लडके को यदि साथ ले जाया जाये तो लडके को भी इधर-उधर की बात समझ मे आयेगी। चार लोग पूछेंगे।

"क्या विठोबा, तुम्हारा लडका है ?" इस प्रकार की पूछताछ करेंगे। इसलिए बाप मुझे शादी ब्याह म इधर उधर ले जाता।

ऐसे ही एक दिन वह गाँव गया था। साथ मे बाप था ही। शादी के पहले ही दिन हम वहा पहुँच गये। मेहमान बडी सख्या मे आये थे। मेरी ड्रेस कुछ ठीक ठाक थी। इसलिए मैं कुछ अकडकर रहता।

शादी का दिन आ पहुँचा। दूल्हे को ड्रेस लेने के लिए बधावा गया।

दूल्हा कपडे पहनकर तैयार हो गया। घोडे पर बैठ गया। घोडे के सामने ताशेवाले, ढोलकवाले चल रहे थे। झाझ बजाने वाला लडका ऐन समय पर कही गायब हो गया था। पता नही मुझे क्या लगा, मैंने झाझ उठायी और बजाने लगा। ढोलकवाले और ताशेवाले को मेरा बजाना पसन्द आ रहा था एसी प्रतिक्रिया उनके चेहरे पर थी, क्योंकि वे दोनो भी मेरी ओर देखकर मेरे समर्थन मे गरदन हिला रहे थे।

उस बारात मे एक धृष्ट व्यक्ति था। चलते चलते वह बोला, "आज विठोबा को अपने साथ खाना नही खाने देना है।' बाप को गुस्सा आया। तश मे आकर उसने कहा, "क्यो ? मैं क्या नीची जाति का हूँ ?" वह धृष्ट बोला, "विठोबा, तू नीची जाति का न भी होगा तो बजनियाँ नाइयो मे से हो, यह आज मालूम हुआ।"

वैसे हमारी जाति मे भी कई उपजातिया हैं। तहसील तहसील पर नाइयो की जाति बदलती है। मशालची नाई नामक एक जाति भी है। वे हमम नही आते। और शहनाई बजानेवाले नाई अलग ही हैं। इन विभिन्न जातियो मे एक-दूसरे के बारे मे यू ही ऊँच-नीच की भावना है। तब हमे बजनियो म से कहने के कारण बाप को गुस्सा आना ही था। वह स्वाभाविक भी था। बाप बोला, 'प्रमाण सहित बोलो।" इतने मे तब का वह धृष्ट पाजी मेरी ओर इशारा करता हुआ बोला, "विठोबा, यदि आप बजनियाँ नाइया म से न होते तो आपके लडके ने इतनी ताल मे झाँय बजायी होती ? अजी, ये झाँझ वाझ बजाने के धधे बजनियो के

ही हाथ है। इसीलिए कहा कि विठोबा को पंगत में क्यों शामिल किया जाय?'

इस बात पर लोग हँस पड़े।

बाप को बड़ा गुस्सा आया। सब्बल हाथ में लेकर वह मेरी ओर आने लगा। मेरे ढोल का ठेका और बाप के मारने का ठेका एक ही साथ हुआ।

मैंने जो ताल सीखा, उसका यही रहस्य है। इस तरह मेरे गाने का शौक बढ़ रहा था। मुझे बड़ा बनना है, यह बात गहरे कहीं बैठ चुकी थी। किसी भी शाहीर का कहीं भी कोई कार्यक्रम होता तो मैं वहाँ अवश्य पहुँचता, ध्यान से सुनता। शाहीर लाडिलकर, शाहीर दीक्षित, शाहीर निकम के कार्यक्रम सुने। मुझे भी ऐसा ही होना है। पर कैसे हो सकूँगा? कौन बतायेगा?

वैसे मैं एक मौके की तलाश में था। वह मिला। 'बड़ौदा में नया रेडियो स्टेशन खुल रहा है। इसके लिए भावगीत, क्लासिकल, ग़ज़ल, पोवाड़ा गानेवाले गायक आवेदन करें। आने-जाने का खर्च स्वयं करना होगा। परीक्षा में पास होने पर उसपर विचार किया जायेगा'—ऐसा एक विज्ञापन अखबार में पाया। मैंने आवेदन करने का विचार पक्का कर लिया। क्योंकि, उन दिनों रेडियो स्टार, रेकार्ड-स्टार के बड़े ऊँचे भाव होते।

मैंने आवेदन किया। वसंत बापट रचित 'सुभाषचन्द्र बोस का पोवाड़ा' पुस्तक लाकर याद करना शुरू कर दिया।

महीने भर बाद रेडियो-स्टेशन से उत्तर आया, "आइये!'

पत्र अंग्रेज़ी में था। सबको दिखाया। बाप को भी दिखाया। बाप को सराहना करनी चाहिए कि नहीं? पत्र देखते ही बोला, 'कैसा पत्र?"

"मुझे रेडियो-स्टेशन में बुलाया है।"

"भड़वा चला बड़ौदा! बड़ा गायक बनेगा! पहले अपना धंधा ठीक से सीख!"

बाप ने सबक तो सिखाया, पर मन नहीं मान रहा था। किसी भी तरह बड़ौदा जाना है। किसी का कहा याद हो आया, बड़ा कलाकार बनना है तो घर का त्याग करना पड़ता है। घर से भागकर बारह बारह

साल गला की सेवा करनी पड़ती है, तब कहीं बड़ा कलाकार बना जा सकता है।

मैंने तय कर लिया, भागना है। वैसे बड़ौदा कलाओं का आश्रय स्थान था। मुझे वहाँ अवसर मिलेंगे। ऐसे में किसी भी तरह जाना ही है। और बारह साल बाद एक बड़ा गायक बनकर ही वापस आना है।

रात में समय साधकर बाप की जेब से पैसे चुराये। एक थैली में कपड़े भरे। माँ सो रही थी। उसके चरण छुए। बाप की जेब में पुर्जा रख दिया, "मैं बड़ा गायक बनने जा रहा हूँ, अब हमारी मुलाकात बारह साल बाद होगी।"

बॉम्बे सेंट्रल में रात की गाड़ी पकड़ी। डिब्बे में सब गुजराती भाई। कुछ लोग मुझे साशंकित दृष्टि से देखने लगे। मन में सोचा, बेटो देख लो इस तरह, पर बारह साल बाद इसी स्टेशन पर मेरा भव्य स्वागत होगा। तब मालूम होगा मैं कौन हूँ!'

गाड़ी छूटते ही घर की यादें आयीं। माँ गला फाड़कर रोयेगी, 'रामचन्द्रमा, तुझे कहाँ खोजूँ?'

लगा, उतर जाऊँ। पर कैसे उतरूँ? गाड़ी तेज चल रही थी। फिर मन भीतर से मजबूत हुआ, 'तुम्हें बड़ा कलाकार बनना है या नहीं? फिर तुम्हें यह सब सहना होगा।'

मन के इस प्रस्ताव से कब नींद लग गयी, पता ही नहीं चला।

'बड़ोदरा, बड़ोदरा!' इस आवाज से नींद खुल गयी।

स्टेशन पर उतरा। साढ़े तीन-चार बजे होंगे। चारों ओर अँधेरा था। बड़ौदा दायीं ओर है या बायीं ओर, समझ न पड़ता। किस पट्ठे ने पहले बड़ौदा देखा था? जब तक गाड़ी थी, स्टेशन जाग रहा था। गाड़ी गयी। स्टेशन फिर सो गया। मैंने भी बेंच पकड़ ली। थैली सिरहाने रखी। सो गया।

आठ के आस पास उठा। मुँह धोया। पेट खाली किया। बाहर आकर पूछते-पूछते निकल पड़ा।

जैसे ही रेडियो-स्टेशन पहुँचा, बड़ी खुशी हुई। लगा, यही अपनी कर्मभूमि होगी।

मैं भीतर गया। नीरवता थी। एक भैया था, उसने पूछा 'क्या चाहिए ?"

मैंने कार्ड दिखाया।

कार्ड ऊपर नीचे नचाता वह बोला, "चार बजे आना ! अब जाओ !"

उसने दरवाजा बन्द कर दिया।

दस बज रहे थे। अब चार बजे तक समय कहाँ काटा जाय ? कलाकार के साथ ऐसा ही होता है। संघर्ष करना ही होगा—इतना सोचकर जितना बड़ौदा देख सकता था, देखा और एक घंटा पहले जल्दी ही रेडियो-स्टेशन पर आ गया। भैया ने कलाकारों के बैठने की जगह की ओर इशारा किया। मुझ से पहले दो बैठे थे। धीरे धीरे और लोग आने लगे। करीब बीस हो गये।

एक व्यक्ति आया। लिस्ट पढ़ी उनके नम्बर बताये। मेरा नम्बर पन्द्रहवाँ था। हम सब इकट्ठे हुए। पहले तो एक-दूसरे को ताकते रहे। फिर हिम्मत आयी। बोलने लगे, "कहाँ से आये आप ?' मुझसे एक ने पूछा।

'बम्बई से !" मैंने उत्तर दिया।

'बम्बई में रेडियो है न, फिर आप यहाँ कैसे ?"

उधर बहुत 'पार्शिलिटी' चलती है।' मैंने ठोक दिया।

आपके उस्ताद कौन हैं ? आप किस घराने से हैं ?"

अरे यह क्या झंझट है ? पर उत्तर तो देना ही था।

'हमारा उस्ताद वसंत बापट है। मैं उसका पोवाडा गाता हूँ और मेरा घराना नाई है।'

मेरा उत्तर सुनकर कुछ हँसे। कुछ चुप बैठे रहे। पर मैं मन में हँसा, 'बेटो, बारा साल के बाद देखना हम भी कुछ कम नहीं !'

परीक्षा शुरू हुई। एक एक जा रहा था। पाँच दस मिनट में लौट रहा था। मेरे भीतर तमाम कुतूहल। एक तो रेडियो स्टेशन किस चिड़िया का नाम है यह मालूम न था। इसलिए मैं बाहर जा रहा था। जहाँ

जम नही रहा था। मैंने उसस तुरत कहा, 'मैं यदि बजात हुए गाऊँ, तो चलेगा ?"

वह मेरी ओर देखता रहा।

"मगनभाय, एने तवला आपो ," कॉच स आवाज आयी।

मैंने तबला लिया और शुरू हो गया, 'सुभाषबाबू हिन्द क महान ।' गा रहा था।

"अहो अब बन्द कीजिये।" कॉच से आवाज आयी।

पोवाडा बन्द कर मैंने पूछा, 'कैसा लगा पोवाडा ?"

'बहुत अच्छा, अब प्लीज उठिये।" कॉच से निवेदन।

मैं उठा। इतने ठाठ स बाहर निकला कि अरे, हम भी कुछ कम नही।

आया। भैया ने कपडे की थली दी। सात बजे तक सबकी परीक्षा

' हो चुकी थी। जिनकी परीक्षा हो चुकी थी, वे जा रह थे। मैं रुक गया। अब बारह साल यही रुकना है। बडा गायक बनना है, ऐसी इच्छा थी। इसलिए रुकना ही चाहिए।

थोडी देर के बाद उस कॉच स लोग बाहर आये। व आपस म कुछ बातें कर रहे थे। बोलते समय उनका ध्यान मेरी ओर गया। मैं खडा था। आप क्या हक ?' उनम स एक ने मुझे देखते ही पूछा।

मैं मतलब मेरा मतलब मैं मैं क्या करना है ?' मुझे पसीना फूट पडा।

आप ऐसा कीजिये भारत स्वतत्र होने पर आइए।'

मुझे जो समझना चाहिए था मैं समझ चुका था। वापस बम्बई आया। किसी शव यात्रा स वापस आने जैसा मरा चेहरा हो गया था। मुझे देखकर माँ को बहुत खुशी हुई। बाप गालियो पर उतर आया, पर हाथ नही उठाया उसने।

सब जान चुके थे कि मैं बडौदा भाग गया था। मुझे देखते ही पूछते, "क्यो रे बडौदा स्टेशन का क्या हुआ ?'

अरे ये गुजराती अपने मराठी लोगो को कोई मौका थोडे ही देने वाले हैं ?

मैं पूछने वालो को बताता रहता।

बड़ौदा ने जबरदस्त झटका दिया। मन खंडित हो गया। पर एक बात अच्छी हुई। बाप ने मारना छोड़ दिया। उसको लगा, मार वार दिया और लड़का भाग गया तो? परन्तु मैं इसका लाभ उठाने लगा। बस मुझे दाढ़ी मूछ कुछ नहीं थी। पढ़ाई की मेरी इच्छा भी नहीं थी। अपनी दूकान पर सिर्फ बैठना और मस्ती करना। इसके कारण दूकान की देख रेख करनेवाले बाबूराव मोरे ने एक बार मारा। बस इसी को आधार बनाकर मैंने दूकान छोड़ दी। मुझे मारा, इसीलिए बाप और मोरे का ज़ोरदार झगड़ा हुआ।

"अरे, मैं नहीं मारता, फिर तुम मारनेवाले कौन होते हो?" बाप इस तरह झगड़ रहा था।

दूसरा महायुद्ध चल रहा था। उस समय फोर्ट इलाके में गोरे सैनिकों की भीड़ होती। बड़े रोड की सैलून इन गोरे सैनिकों से भरी होती। वहाँ काम करनेवाले कारीगरों की चाँदी थी। इनाम के रूप में रोज़ दस पन्द्रह रुपये मिलते।

मैंने सफाईवाले छोकरे के रूप में रेक्स टाकीज़ के पास रेक्स सैलून, कोलाबा में ताज सैलून, हॉनबी रोड (दादाभाई नौरोजी रोड) के विक्टोरिया सैलून, बोरीबंदर में भाटिया बाग के सामने आज़ाद हेयर कटिंग सैलून—इन सारे स्थानों में साफ सफाई का काम किया। दो वर्षों में काफी दूकानें घूमा।

सभी कारीगरों से पहले दूकान जाना, साफ सफाई करना और पोंछने का काम करना। फिर दूकान खुलती। दूकानदारी शुरू होने पर, दाढ़ी के लिए गरम पानी दे, चादर दे, झाड़ू लगा। ग्राहक के बाल काटना हो जाने पर उस पर ब्रश चला और दरवाज़ा खोलकर सलाम कर। ग्राहक खुश होकर इनाम देता है। गोरे सैनिकों की भीड़ ज़ोरदार तब इनाम भी ज़ोरदार। तीन चार रुपये तो मिल ही जाते।

पैसा मिला कि मस्ती आ ही जाती। हफ्ते में दो-तीन दिन नागा हो ही जाता। सिनेमा, खाना पीना। बस मज़ा करता। बाप को यह सब मालूम न होता। वैसे मालूम होने का कारण भी क्या था? दस पन्द्रह रुपये पगार थी। हफ्ते की पगार एक साथ उठाकर घर दे देता। ऐसे में

बाप को मालूम न होता। परन्तु नागा करने के कारण, यह दूकान छूटी, तो उस दूकान में जाना—इस तरह 'आज़ाद हेयर कटिंग सैलून' आखिरी दूकान थी।

धीरे धीरे युद्ध ठंडा हो रहा था। गोरे सैनिकों में कम होते ही पैसों की आवक कम हो गयी। तब उसका आकर्षण कम हो गया।

इस दूकान में काम करते समय फालतू आदतें लग गयीं। उसके कारण थे—दूकान के कारीगर। सारे दिन पाँच दस की कमाई आसानी से हो जाती पर फिर सुबह जैसे ही जाते। दूकान बन्द होने के बाद दारू, सट्टा, वेश्याबाज़ी में पैसा साफ़! वैसे सभी गृहस्थ नहीं थे। अधिकांश दूकान में ही सोते।

मुझे सारी आदतें तो नहीं लगीं, पर पान तम्बाकू और एकाध बार सट्टा लगा लेता। बाप का डर तो था ही। इसलिए अन्य आदतें नहीं लगीं। वैसे सिर्फ़ तम्बाकू के लिए भी जोरदार चाँटा खाया।

बात यह थी कि रात का भोजन लेने के बाद हम बाज़ार गेट की दूकान के सामने सोने के लिए जाते। दूकान और घर के बीच पाँच मिनट का रास्ता था। मेरा बाप, बाबूराव मोरे, गणपत ताठे सालुंसे—ये सब बाप की चौकड़ी! मैं दत्तु ताठे, पाडुरंग मोरे—ये हमारी चौकड़ी! ये सब दूकान के सामने! सबके सिंगल कमरे! लोग बढ़ रहे थे। जगह कैसे पूरी पड़ती? अच्छा स्वयं अधिक जगह लें, इसकी बिलकुल खबर नहीं, इसलिए फुटपाथ पर सोनेवाले नौकर भीतर। नहीं बम्बईवाला को इसकी आदत ही लगी है। अच्छा उसका परिवार भी बढ़ रहा था। वह फुटपाथ पर सोता। आधी रात को कब घर हो आता किसी को खबर न लगती। सुबह अपने बिस्तर पर हाज़िर!

हम सब रास्ते पर दूकान के सामने सोते। पर सबको दूकान के सामने जगह कैसे पूरी पड़ेगी? दूकान की बगल में उडपी का होटल था।

उसके सामन हमारी चौकड़ी सोती।

ऐस ही एक दिन खाना खाकर, बिस्तर लेकर, दूकान के सामने सोने के लिए निकला। मेरा बाप और उसकी चौकडी दस से ग्यारह बजे तक ताश खेलते, फिर सोते। यह रोज की बात थी। मैंने बिस्तर बगल मे दबाया। हाथ म तम्बाकू मलते मलत दूकान के सामने पहुँचा। बाप सात-हाथ मे रँगा था। अच्छा, उसे कुछ मालूम नही था कि मैं तम्बाकू खाता हूँ। मैं उडपी की दूकान की ओर मुड गया ताकि मेरा बाप मुझे तम्बाकू मलते न देख सके। उडपी की दूकान बन्द हो गयी थी। उस होटल का मालिक दारू पीकर धुत्त हो गया था। दूकान के सामने की बेंच पर बैठ-कर वह अपने दूकान के छोकरे को अपनी भाषा मे कुछ बता रहा था।

मेरा तम्बाकू मलना जारी था। मैं बिजली के खम्भे से टिककर खडा था। बाप की पीठ मेरी ओर थी और मेरी पीठ की ओर वह उडपी अपने छोकरे को कुछ बता रहा था।

सयोग कुछ ऐसा हुआ कि मेरा तम्बाकू मलना पूरा हुआ। मेरी फाँक मारने की प्रक्रिया और उस उडपी का बोलना एक समय हुआ। उस उडपी न आव देखा न ताव, तडाक से एक झापड मुझे रसीद कर दिया। मैंने सोचा भी नहीं था। पर तडाक के पडने पर बिस्तर नीचे गिर गया, तम्बाकू उड गया। उस आवाज से ताश खेलनेवाली मडली 'क्या हुआ ?' करती हुई उठी। मेरा बाप तो चक्करा ही गया।

'अण्णा, क्या हो गया ?'' मेरे बाप ने उठते हुए पूछा।

"साला, हम अपने छोकरे को समझाता है कि काम कैसा करना, तो तुम्हारा छोकरा ताली बजाता है। साला हम क्या मैदान मे लेक्चर देता है ?" अण्णा के इतना कहते ही बाप क्रोधित हो उठा। मारने दौडा, पर उसकी चौकडी ने पकड लिया। इसलिए मैं बच गया, पर बाप गाली बकने लगा। "तेरी तो मैंने तुझे कितनी बार बताया कि तू दूसरो की मजाक मत उडाया कर, पर आदमी आदत स मजबूर है।"

मैंने चुपचाप बिस्तर बिछाया। सो गया। मडली अण्णा को समझा-बुझाकर फिर खेलने बैठ गयी। मेरे मन में आया कि बाप को बताया जाय, 'मुझे उसकी भाषा समझ नहीं पड़ती, फिर कैसे ताली बजाऊँगा ?

अरे, मैं तो उस समय तम्बाकू मल रहा था।' परन्तु मैं तम्बाकू खाता हूँ, यह जानकर बाप ने एक और झापड़ रसीद किया होता और कहा होता, 'भड़वे, इस उम्र में तम्बाकू खाना सीख गया?'

ऐसे में दूसरा झापड़ खाने से तो भला—तेरी भी चुप मेरी भी चुप।

साहल से बाबूतात्या—मेरा चाचा, बाप का चचेरा भाई मारतिदा का बड़ा बेटा—बम्बई आया था। बाबूतात्या दादा का अप्रिय था। पर मुझे बड़ा प्रिय था। स्वयं के बाप के खिलाफ हमेशा विद्रोह करनेवाला। इसलिए बाप का और उसका हमेशा झगड़ा होता।

"इस बबुआ ने मेरी दाढ़ी के आधे बाल खा लिये!" इस तरह दादा औरों को दाढ़ी के बाल उखाड़ते हुए बताता।

इस प्रकार बाबूतात्या, हुनरबाज! हर बात में आगे! मुझसे उसका बेहद प्यार! वह बम्बई आया। मेरे लिए रिश्ता लाया था।

बाबूतात्या और बाप की घर में बातचीत चल रही थी। मैं सुन रहा था।

'सुनिए भैया, मोलगाँव के पवार अपनी जाति के ही हैं। लड़की तीसरी में पढ़ रही है। साल भर में सयानी हो जायेगी। तुम्हारा क्या विचार है, बताइए?'

बाबूतात्या बाप को समझाकर बता रहा था, माँ बीच में ही बोल पड़ी "अइया, साल भर में सयानी हो जायेगी, तब तो लड़की लड़के को बड़ी होगी।"

'अरी बड़ी कैसी होगी? रामचन्द्र या क्या छोटा है? पन्द्रह सोलह साल का घोड़ा हो गया है।' बाबूतात्या मेरी ओर देखकर कहने लगा। मैंने नजरें झुका ली।

'जेठजी, लड़की की जात लता की तरह बहुत जल्दी बढ़ जाती है। तेरह चौदह की होगी ही।'

'अरी तू चुप भी रह! बाबू, यह बता तू, दहेज कितना देगा?' काफी देर से चुप बैठा बाप अचानक मुखरित हो गया।

"शादी कर देंगे ! मान-पान का खर्च, दोनों अपना अपना उठायें।"

बाबूतात्या की बात बाप को शायद पसन्द नहीं आयी। काफी देर तक बात चलती रही, पर माँ-बाप को कुछ जँच नहीं रही थी। माँ की दृष्टि में लड़की बड़ी थी और बाप को 'वाकी सब' पसन्द नहीं आ रहा था।

अन्तत बाप को रिश्ता मजूर न हुआ। उसका कहना था कि जिस हिम्मत से मैं खड़ा हुआ हूँ, उसी हिम्मत से लड़के की शादी करूँगा। चचा को कहना चाहिए था, 'विट्ठल भाग गया, यह सच है, पर किस तरह अपनी खुद्दारी पर खड़ा है। भागीदारी मे दो दूकानें, अपना स्वय का कमरा ! मान गये उसे !'

साथ ही गाँववालों को भी कहना चाहिए था—

'मारुतिदा, विट्ठल तुम्हारे पास रहता तो बेकार हो जाता, वह भाग गया यही अच्छा हुआ। अपनी हिम्मत पर खड़ा रहा।'

परन्तु अभी तक ऐसा नहीं हो रहा था। कोई इस तरह कुछ नहीं कह रहा था। हर साल बाप मेले मे जाता। अपने रौब मे रहता। पास-पड़ौस के लिए खुले दिल से खर्च करता। लोग सामने कहते, 'विठोबा को मान गये।' बाप के बम्बई लौटते ही, सब भूल जाते।

बाबूतात्या जो रिश्ता लाया था, वह बाप के चाचा ने (दादा ने) भेजा था। वह रिश्ता भला बाप को कैसे पसन्द आता ? कल को वह यह न कहे, 'आखिर हमने ही लड़के की शादी तय की। पैसा तो मिलता है, पर कौन पहचानता है ?'

लड़के की शादी तो करनी है, यह सच है—पर यह रिश्ता स्वय ही तय करना है। वह भी अपने दरवाजे पर कोई रिश्ता लेकर आये, तभी। मैं स्वय किसी के दरवाजे पर 'मेरे लड़के के लिए लड़की दीजिए' कहने नहीं जाऊँगा—मेरा बाप इस तरह सोचता था।

पर कोई न आता। बाप स्वय कहीं न जाता। दिन बीत रहे थे। मैं आजाद सैलून मे काम कर रहा था। इस सैलून मे पोस्ट आफिस के कुछ बाबू लोग बाल कटवाने आते। एक बाबू से मैंने पूछा कि डाक विभाग मे नौकरी दिलवाओगे ? उसने अर्जी लिखने को कहा। उसके कहने पर मैंने अर्जी

दे दी।

हमारे धन्धे से अब मुझे ऊब हो रही थी। सारा दिन खपना। फिर पहले जैसा काम भी नहीं था। अन्य लोग किस तरह सुबह दस बजे जाते हैं, छह बजे वापस आते हैं। और हम, सुबह सात से रात नौ बजे तक खटते रहते हैं। अपने को वैसी नौकरी मिल गयी तो कितना मजा आयेगा? इस विचार से मैं सुलग रहा था। आने जाने वाले ग्राहकों से पूछता, "क्या साहब, नौकरी दिलवायेंगे?"

शंकरराव कदम नगर के पास पारगाँव नामक गाँव का था। नौकरी के लिए पुणे आया था। गणेश पेठ में, पागुल आली में कमरा लिया। अपनी दुनिया बसायी। उसकी एक लड़की थी। लड़की के बाद उसे दो-तीन लड़के हुए। परन्तु दो तीन साल के बाद बच्चे किसी बीमारी से मर जाते। पहला गया। दूसरा गया। तीसरा गया। बस, शंकरराव घबरा गया।

वह सोचने लगा, 'शायद कोई संकट तो लगातार अपना पीछा नहीं कर रहा?'

पूजा अर्चना की। लोग जो जो कहते, वह करता। किसी ने कहा, 'पति-पत्नी दोनों पाँच मंगलवार का व्रत रखें।' तो पति-पत्नी ने पाँच मंगलवार का निराहार उपवास किया। किसी ने कहा, अमुक-अमुक मन्दिर की भभूति लगाओ।' वह भी लगायी। किसी ने कहा, 'मरी माँ की सेवा करो।' वह भी किया। लोग जैसा कहते, शंकरराव वैसा ही करता।

एक ने कहा, "शंकरराव ऐसा कीजिये, अब गणेशोत्सव के दिन आ रहे हैं। आप भी गणेशजी की स्थापना कीजिये। पूजा कीजिये, दोनों मिल कर मन्नतें माँगिए और बेटी के लिए वर ढूंढ लीजिये। जब तक बेटी घर से नहीं जायेगी तब तक आपके बच्चे बचेंगे नहीं।'

संकट में किसी को जो भी सलाह दी जाती है आदमी उसको आजमा-कर देखता ही है।

लड़की को ससुराल भेजो।' किसी ने उसे सुझाया। पति पत्नी ने विचार किया, तेहरवाँ वर्ष तो लग ही गया है। बड़ी हो ही गयी है। अब

इसकी शादी करने मे कोई आपत्ति नही है।

पूरी तरह से सोच लिया। घर मे गणेशजी ले आये। उनकी पूजा की। दोनो ने मन्नतें माँगी और शकरराव बेटी के लिए वर ढूढने बम्बई की ओर चल पडा।

शकरराव का बम्बई आने का एक कारण था। बाप के धन्धे मे एक भागीदार की पत्नी मर गयी। उसने दूसरा विवाह किया। वह पुणे की ही थी। इस सारी उठा-पटक मे शकरराव ने शादी सम्पन्न करने का जिम्मा बहुत अच्छी तरह निभाया था। उस भागीदार की पहली पत्नी का लडका अब बडा हो चुका था। शादी मे देखा था उसे। उसी समय उसके मन मे बात आयी, लडका अच्छा है।

शकरराव की लडकी और भागीदार की दूसरी पत्नी—ये दोनो सहेलियां थी। वैसे वे हमउम्र नही थी। पर पुणे की ही थी। ऐसे मे यह रिश्ता ठीक होगा, यह सोचकर उसने बम्बई का टिकट कटाया।

आदमी सोचता कुछ है, होता कुछ है। शकरराव का भी ऐसा ही हुआ। आया तो था बाबूराव के लडके को देखने, परन्तु पता नही कैसे यह रिश्ता हाथ से निकल गया।

शकरराव लौटने वाला था, तभी किसी ने बताया, 'विठोबा सारुलकर का एक लडका है, देख लीजिये।'

पचो की बैठक जमी। हा-ना करते तय हो गया। शकरराव सारा खर्च उठायेगा। दूल्हेराजा को डेढ तोले की अँगूठी और एक घडी। दूल्हा हल्दी लगाकर पारगाँव आयेगा और शादी रचाकर दुल्हन को ले आयगा।

बाप ने पूछा, "लडकी कैसी है?"

"मडली पुणे आकर, लडकी को प्रत्यक्ष देख ले, पसन्द करे। पसन्द आने पर ही हम आगे अपने काम मे लगें। पुणे आते समय लडके को भी साथ लेते आयें जिससे हमारे लोग भी लडके को देख सकें।"

शकरराव यह सब बताकर, हमे निमत्रण देकर पुणे लौट गया।

जाने का दिन तय किया गया। बाप ने एक दो और लोग साथ लिये। मुझे तो लडकी देखने से अधिक पुणे देखने का आकर्षण था।

साढे पाँच बजे हम सब लोग पुणे के लिए निकले। रात साढे दस बजे पुणे पहुँचे। रात म, हमारा आतिथ्य दारुवाला पुल पर मेरे मौसेरे साले के घर पर किया गया। वैसे उसको पहले ही बता दिया गया था। वह भी हमे लेने स्टशन आया था।

सुबह दादरराव ने, हमे लेने के लिए एक व्यक्ति भेजा। दुल्हन-लडकी देखने के लिए हमारे साथ आयी मडली, उस व्यक्ति के साथ चली गयी।

"पास ही है इसलिए पदल ही चलेंगे।' आय व्यक्ति ने कहा।

सब बातें करते जा रहे थे। मैं आसपास देखता जा रहा था। सुबह का समय था। सब लोग अपने-अपने कामो म व्यस्त थे। बम्बई की अपेक्षा यहाँ साइकिलें देखकर मुझे आश्चय हुआ। मेरे जितना लडका बडी आसानी से साइकिल चला रहा था। और लडकियाँ भी साइकिलें चला रही थी। मैं अपनी धुन मे चला जा रहा था।

मैं चौंक गया। आसपास देखा, तो हमारे लोगो मे से कोई भी दिखायी नही दिया। मैं भटकते भटकते चल रहा था। साथ के लोग कब आगे निकल गये पता ही नही चला। मैं छूट गया था। 'स्साला, हो गयी न गडबडी ?

मैं घबरा उठा। बाप का डर अलग से। क्योकि, बाप मारने लगता है, तब उसे किसी बात का भान नही रहता।

बाप ने लेने आये व्यक्ति म पूछा था ' कहाँ जाना है ?"

उसने कहा था "गणेश पेठ डुल्या मारुति के पास।"

बस इतना ही याद था। पूछते पूछते निकल पडा। डुल्या मारुति आया। सामने लोकनाटय का थियेटर था, पर अब कहा जाना है क्या पूछना है, किस तरह पूछना है—इस बात का सोच विचार कर रहा था। तभी एक साइकिल सवार धडाम से मुझसे टकराया। एक पल में यह सब हुआ। कुछ भी समझ म नही आया। मैं औंधे मुह गिर पडा था। साइकिल-सवार मेरे ऊपर गिरा।

भीड जमा होने लगी। मुझे विशेष चोट नही लगी थी या कहाँ कितना लगा—यह उस समय कुछ मालूम ही नही हुआ। टक्कर देनेवाले को देखा तो वह एक सुन्दरी थी।

'क्या भवानी, ठीक से साइकिल नहीं चला सकती ?'

काफी सुनानेवाला था, पर वह जल्दी ही ग़ायब हो गयी।

मैं भटक गया, इसलिए दाकरराव ने एक आदमी भेजा, मुझे ढूंढने के लिए। हम जो लेने आया था, वही था। भीड़ देखकर वह भी भीड़ में घुसा। मुझे देखकर बोला, 'क्यों जी, कितना ढूँढा ? गिर गये थे क्या ?'' उसने पूछा।

"हाँ, ये आपकी लड़की ! साइकिल चलाना नहीं आता। सीधे मुझ पर चढ़ा दी।" मैंने कपड़े झटकते हुए घटना बता दी।

"चलिए, सारे लोग आपका इन्तज़ार कर रहे हैं।" अनसुना करते हुए वह बोला।

उस आदमी के साथ मैं चल पड़ा।

रास्ते पर मेरा बाप, दाकरराव और अन्य लोग मेरी राह देखते खड़े थे। मुझे देखते ही चिन्ताग्रस्त मेरा बाप अचानक बिफर गया, "क्या बे भड़वे, लातें खायेगा ? कहाँ ग़ायब हो गया था !" कहता हुआ मेरी ओर बढ़ा, पर दाकरराव ने रोक लिया, नहीं तो ।

मन में आया कि बाप ने मेहमानों के सामने मेरा कचरा कर दिया। उलटे पैरों लौट जाने की इच्छा हुई। परन्तु बाप की आवाज़ "आगे चल !" कानों में कौंधी और मैं चुपचाप उसके पीछे हो लिया।

दाकरराव कदम का घर दूसरी मंज़िल पर था। बम्बई की भाषा में पहले माले पर।

पुणे वालों की हर बात में कोई ख़ास बात होती है। वैसे बम्बई की अपेक्षा पुणे के घर कम ऊँचे और छोटे लगते। शायद इसीलिए उन्होंने शब्दों से घर की ऊँचाई बढ़ा ली थी।

हमने दाकरराव के घर में प्रवेश किया।

घर अर्थात एक कमरा। उस मंज़िल पर कुल पाँच कमरे थे। अन्तिम कमरा दाकरराव का। ऊपर टीन। कमरा दस बाय दस (10 × 10) का। रसोई भी उसी में।

'स्साला, ये तो हमसे भी ग़रीब लगते हैं !' मैंने कमरे को निहारते हुए मन-ही मन कहा, 'हमारा भी एक ही कमरा, पर दस बाय बारह

(10 × 12) का। घर में बापरूम। दो खिड़कियाँ और एक पटाव।'

मेहमान आयेंगे, इसलिए बिछायत की गयी थी। सब लोग बैठ गये। मैं भी बैठ गया। बैठे-बैठे घुटना दुखने लगा। साइकिलवाले को दो गालियाँ फेंकी—मन-ही मन। घर में दो महिलाएँ दिख रही थीं। कुछ वयस्क ही थीं। 'इनमें से सासुजी कौन-सी हैं?'

मेरे खाली दिमाग में सवाल कौंधा। वे भी चाय की तैयारी में थीं। काम के साथ-साथ बीच बीच में मेरी ओर नजर दौड़ा लेतीं।

"मेहमानों के लिए चाय लाओ न!" दामोदरराव गरज उठे।

"अजी, दूध आ रहा है।" दो में से किसी एक ने कहा।

"दूध लाने कौन गया है?"

"राधा को भेजा है।"

"अरे, तुम लोगों का भी खूब दिमाग है! जिसको देखने के लिए मेहमान आये हैं, उसी को दूध लाने भेज दिया!"

मेरे बाप को समझाने वाला दामोदरराव अचानक उग्र हो गया।

गैलरी में पास-पड़ोस वाले यूँ ही आते और झाँक जाते। कुछ खड़े थे।

"आ गयी, आ गयी! राधा आ गयी।" गैलरी में आवाज आयी। तब दो में से एक गैलरी में गयी। दूध लेकर भीतर आयी। दूसरी नये कपड़े लेकर तुरन्त बाहर गयी। जो दूध लाने गयी थी वह वापस भीतर आयी ही नहीं।

चाय पी चुके। मंडली पान-सुपारी में व्यस्त थी। इधर उधर की गप्पें लड़ाने लगी।

थोड़ी देर के बाद दामोदरराव ने फरमान जारी किया "ए, जाओ! राधा को ले आओ!"

दो में से एक निकली।

मैंने पहचान लिया। यह मेरी होने वाली सासुजी हैं।

नयी कोरी साड़ी, थोड़ी जरी की, सिर पर घूँघट लेकर लजाती, सकुचाती वह आयी। बड़े-बुजुर्गों के पैर छूने लगी। पर छूते समय मैंने धीरे से उसका चेहरा देखना चाहा। मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

'स्साला, साइकिल से टक्कर मारनेवाली भवानी तो यही थी !'

"हो गयी हो गयी शादी तय हो गयी ! मेरे लडके की शादी तय हो गयी !" मेरा बाप, जो भी मिलता उससे कहता।

"पर विठोबा, शादी कुछ इस तरह होनी चाहिए कि तुम्हारी सारी मडली, रिश्तेदार और तुम्हारे चाचा आश्चर्यचकित हो जायें !" सुननेवाला मे से एक ने कहा।

"बस देखते रहिए ! लडके की शादी कैसी करता हूँ ! अरे बनिया-ब्राह्मण क्या करेंगे, ऐसी धूमधाम से शादी करूँगा।" बाप ने उसे जवाब दिया।

लडके की शादी ज़ोरदार हो, ऐसा मन म निश्चय कर लिया। बाप के दिमाग़ म ये ही विचार मँडराते रहे।

एक गुजराती ग्राहक ने बाप को अपनी लडकी की शादी की पत्रिका (काड) दी। बाप के जो कुछ गुजराती ग्राहक थे उनके घर शादी होती तो हमारे मज़े होते। गुजराती लोगो की शादी मे दूल्हे का घोडा पकडने का मान नाई का होता।

पर यह सब ओर नही है। अलग-अलग स्थानो का रिवाज भी भिन्न है। कोकण मे तो नाई की छाया तक से परहेज है। उलटे, हमारी ओर मराठा की शादी म पानी परोसने का काम नाइयो का ही रहता है। इसके उलटे मध्यप्रदेश मे नाई की ओर से मालिश तक करवा लेते हैं। इसीलिए गुजराती शादी का आमत्रण मिला कि हमारे मज़े ही-मज़े। बाप को एक धोती, कमीज़ और सबको पूरा पडे इतना भोजन मिलता।

उस गुजराती ग्राहक ने शादी की पत्रिका दी। पत्रिका ऐसी थी कि बस देखते रहिए। किसी राजा के लिफाफे की तरह !

बस, बाप के मन मे वह पत्रिका बैठ गयी। दूसरे दिन दाढी बनाते

समय बाप ने उस ग्राहक से पूछा, "सेठ, ये पत्रिका कहाँ मिलती है ?"

"ओ साला, तुझे क्या चाहिए ?" ग्राहक ने दावा व्यक्त की।

'ऐसी बात है, कि मेरे लड़के की शादी है। बस, ऐसी ही पत्रिका बाँटने का विचार है।" बाप ने मन की बात बता दी।

"अरे यह बहुत महँगी है, तू साला गरीब, मर जायेगा।" ग्राहक ने बाप की हवा ही निकाल दी। परन्तु बाप को सन्तोष नहीं हुआ। उलट उसको यह लगा कि यह गुजराती हम लोगों को ऊपर नहीं आने देना चाहता।

सेठ से पता पूछा। वह प्रेस भुलेश्वर में था। पूछताछ करते हुए बाप प्रेस तक पहुँचा।

'आओ पाटील, बैठो।" प्रेसवाला गुजराती ही था। उसने बाप का स्वागत किया।

बम्बई में घाटी और पाटील—इन दो नामों से ही मराठी व्यक्ति को पुकारते हैं। जरा ऐसा-वैसा, लाचार दिखा तो घाटी और लाखों की बात करने वाला तो पाटील।

प्रेसवाले के संकेत करते ही बाप कुर्सी पर बैठ गया।

"बोलो तू काम छे ?" प्रेसवाला बोला।

"ऐसी लग्न पत्रिका छपवानी है।" जेब से पत्रिका निकालते बाप बोला।

प्रेसवाला चकित हुआ। उसे लगा, पाटील जोरदार ग्राहक है।

"पाटील, पाँच सौ लेंगा तो 550 रुपये में पड़ेगा, हजार लेंगा तो 800 रुपये पड़ेगा।"

पत्रिका का भाव सुनकर बाप दंग रह गया। अब यहाँ से कैसे पिंड छुड़ाना ?

"अच्छा, ठीक है, सोचकर बताऊँगा।' ऐसा कहकर बाप रौब से बाहर निकला।

बाप ने इधर-उधर बहुत पूछताछ की, परन्तु पत्रिका कहीं नहीं जम पायी और शादी के पन्द्रह दिन ही रह गये।

"अहो बाप शादी की पत्रिका लायेंगे कब ? बाँटेंगे कब ?" माँ ने

बाप को सचेत किया।

बाप झटके से उठा। माधव भाग गया और डेढ़ रुपये म सौ के भाव की रेडिमेड पत्रिका उठा लाया। उसमे सिर्फ दूल्हा, दुल्हन के नाम, उनके मां-बाप कौन—यह सब भर दिया कि पत्रिका तैयार।

मेरे समेत चार लड़का को बाप ने तैयार किया। एक पत्रिका का गट्ठा उनके सामने रखा और कहा, "मैं जो बताऊँगा, उस खाली जगह म लिखना।" लड़के तैयार हो गये।

बाप ने शुरुआत की—

'हूँ लिखो, हमारे सुपुत्र—उसके आगे, रामचन्द्र लिखा ?' बाप ने देखना चाहा।

"हाँ, लिख दिया।" उत्तर मिला।

'अब लिखिये—श्री नवरराव महादेव कदम—लिखा ? अब इनकी सुपुत्री सौ० के आगे लिखिये—राधाबाई ।" बाप बता रहा था, हम सब लिख रहे थे। पहली आठ-दस पत्रिकाएँ सबने ठीक ठाक लिखी। फिर हाथ दुखने लगे। लिखने का अभ्यास नही था। फिर सबने जो गलतियाँ की वे मत पूछिए।

कुछ पत्रिकाओ मे रामचन्द्र की जगह विठोबा, विठोबा की सुपुत्री। एक पत्रिका मे तो सीधे चि० विठोबा व चि० सौ० शकरराव एसा लिखा था। यह सब तब सामने आया, जब बाप के मित्रो ने उसकी खब खिल्ली उडायी।

बेटे की शादी तय तो कर ली, पर अपने चाचा को अर्थात मारुतिदा को कुछ नहीं बताया था। मैंन कुछ तीर मारा है, यह बताने के लिए बाप गाँव गया।

"तात्या, बेटे का रिश्ता तय हो गया।"

'वो तो अच्छा किया, पर समधी कौन है ? मेरा मतलब है, वे लोग हमारे देखे भाले, जातवाले हैं न ?'

"हम ही में से हैं वे लोग।"

"कौन से रे ?" दाढ़ी के बाल नोचते दादा ने पूछा।

"भातोडी पारगाँव के। फिलहाल पुणे मे ही हैं।"

'अबे, भडवे, ठीक पूछ-ताछ कर ली है ? नहीं तो मशालची नाई निकलेगा।"

"कुछ भी कहो, तात्या ! बम्बई के, अपने जाति के बड़े लोगों को रिश्ते के समय बुलाया था।"

"कौन-कौन थे ?"

"बाबूराम मोरे, यशवन्त साकुंखे, गणपतराव ताठे—यह लोग आये थे।"

"वो बाबू—स्वयं का धंधा छोड़कर ड्राइवरी करनेवाला, वो गणा—जोरू का गुलाम और वो यशवन्त—मुफ्त तम्बाकू के लिए मील भर जाने वाला धत तेरे की ! (दाढ़ी का एक बाल नोचते हुए) ये फालतू लोग जमा करके रिश्ता तय किया है ? अच्छा ये बता, समधी कैसा है ?"

'अच्छा हट्टा-कट्टा है सुन्दर है !" बाप का उत्तर था।

"अरे सुन्दर हुआ तो क्या ? उसे क्या चाटेंगे ? मेरा मतलब है, रुपयो पैसों से कैसा है ?"

"पुणे मे एक दुकान है। सरकारी नौकरी—अर्थात फैक्टरी मे नौकरी और पारगाँव मे घर जमीन। और खास बात यह कि लड़की इकलौती है।"

"अरे, पगले बिठ्या ! उसको आगे लड़के नहीं होंगे, इसकी गारटी तुम्हें दी है ? कहे, अकेली लड़की है। लड़के को क्या घर दामाद बनाने वाले हैं, हुंऽ ? अरे आदमी का घर-संसार धूप छाँव की तरह होता है, इसलिए रिश्तेदारी अच्छी जगह होनी चाहिए।'

बाप को काफी देर तक इसी बात पर भाषण सुनना पड़ा कि किस तरह फँस गये। मारुतिदा ने काफी दिनों का गुस्सा बाप पर निकाला।

"अच्छा, शादी मे क्या तय हुआ ?" मारुतिदा ने बाप से फिर पूछा।

'चार अंजुरी हल्दी ! अर्थात हल्दी लगाकर हम पारगाँव जायेंगे। दुल्हन लेकर वापस आयेंगे—फिर अपने गाँव मे।"

"वो सब तो ठीक है, पर लेने-देने की क्या बात हुई ?"

"लड़के का एक घड़ी, डेढ़ तोले की अँगूठी, दो बोरा गेहूँ और पाँच साड़ियाँ।" बाप ने गर्व से कहा।

"ये तो ठीक किया। विट्ठल, गाँव में बारात घुमायेंगे, ये तो ठीक है। पर गाँव को भोजन टलना नहीं चाहिए।"

"परन्तु, तात्या, अपना गाँव तो सात-आठ सौ मकानों की बस्ती है सबको भोजन का मतलब है ।" बाप का गर्व हवा हो गया।

'धत तेरे की ! मुझे मालूम था, तू इस तरह पसर जायगा ! अरे, कम पड़ा तो मैं हूँ !" बिल्ली ज्यों चूहे से खेल रही हो, ठीक उसी तरह माईतिदा बाप को घसीट रहा था।

"अच्छा, बजनिया को तय किया ? वैसे अपने गाँव का इब्राहम ताशेवाला अभी तक खाली है, उसे सुपारी दे दे।"

"इसकी कोई जरूरत नहीं। मैंने बम्बई में बैंड तय कर लिया है।"

फिर बाप का दिमाग आसमान की ओर उड़ चला। सच तो यह था कि बाप ने कुछ भी तय नहीं किया था। सबके आशीर्वाद लेकर बाप बम्बई की ओर लौट गया। चाचा को बताया कि बैंड तय कर लिया है, पर तय कुछ नहीं था। अब वह तय किया जाना चाहिए।

एक दिन मुझे साथ में लेकर बाप, बैंड तय करने निकल पड़ा। हमने तेरह नम्बर का ट्राम पकड़ी और पायधुणी पर उतर गये।

ताड़देव की ओर जाने वाले रास्ते की ओर मुँह करके खड़े होने पर, बायां ओर मुसलमानी टोपियों की दुकान दायीं ओर चाँद के आकार की इमारत। उसमें बम्बई के मशहूर बैंडवाले नूरमोहम्मद का आफिस, पड़ोस में हड्डी का डॉक्टर, चाय की दुकान, और बाद में मस्जिद।

मेरे बाप का हर काम 'ऊँचा' होता—उस्तरा भी, 'ऊँची कीमत का है ऐसा मिलने वाला नहीं', धोती लाने पर, ऊँची ! आखिरी थी, अब मिलने वाली नहीं।'

'बिठोबा की कोई भी चीज देखिये, बस जोरदार !' इस तरह लोग कहें, इसके लिए बाप की सारी छटपटाहट होती।

सिर्फ इसी बात के लिए नूरमोहम्मद के बैंड का चुनाव किया। यह

बडवाला उस जमाने में पचास रुपये घटा लेता। बडी टोली, जरी के कपडे। बडे-बडे, धनवान लोग ही उसके पास जा पाते।

इसलिए नूरमोहम्मद के ऑफिस के सामने दो बार चक्कर मारे। फिर रुके। भीतर घुसना या नहीं—इस असमंजस में भीतर झांककर देखा।

भीतर दो लोग थे। हमें देखते ही बोले, "आओ पाटील, आओ!" उनको मालूम था मार्किट के पाटील जैसे दिखते हैं वैसे नहीं होते। गाँठ में हजार हजार रुपय होते हैं।

उसने बुलाया। हम आफिस में गये। उसकी टेबल के सामने तीन चार कुर्सियाँ थीं। उनकी ओर सकेत करता बोला, 'बैठो!"

मैंने एक कुर्सी खींची। बैठा। एक कुर्सी बाप ने खींची पर वह कुछ ढीली थी, जरा डगमगायी।

'बैठो, बैठो, गिरेगा नहीं," बडवाला बोला।

बाप उस डगमगाती कुर्सी पर बैठ गया।

"बोलो पाटील, आपकी क्या सेवा करूँ?' बडवाला बोला।

"इसका लगीन काढलय। तवा तुम्हारा बड मगताय। बाप ने बात शुरू की।

'अच्छा तो तुम्हारी शादी है।" बडवाला मेरी ओर देखकर बोला।

मैं लजाया और यूँ ही पैर खुजलाने लगा।

"पाटील, बच्चा उम्र से कम दिखायी देता है, इतनी जल्दी शादी?"

"उसका क्या है, हमारा चुलता (चाचा) बुड्ढा हो गया है। वो बोल्या, मेरी आँखों के सामने इसकी शादी होनी चाहिए। इसलिए शादी निकाली।"

"पाटील आप कहाँ रहते हैं?'

"कोठा में।"

'तो शादी किस वाडी (मंगल कार्यालय) में होनेवाली है?'

"वाडी में नहीं पारगाँव में।'

'पारगाँव ये किधर आया?"

'देखिए, अहमदनगर से आठ मैल, भातोडी। वहाँ से दो मैल पार

गाँव।" बाप मराठी पर सीधे उतर आया।

अहमदनगर—वहाँ से दस मील पारगाँव। नूर मोहम्मद बडवाला रमगया। मन म सोचा 'पार्टी जोरदार लगती है।' पास के व्यक्ति की ओर मुडकर बोला, "यूसुफ, बाहरवाले को चार चाय बालो जाओ। चाय पीयेंगे न, पाटील ?"

बाप हसा, बडवाले के प्रति उसका आदर बढ गया।

पाटील आपको कितने आदमी का बड चाहिए ?"

'तुम्हारा कितने आदमी का बड है ?" बाप ने स्वय का नियन्त्रित करते हुए कहा।

चालीस आदमी का है, बीस का है, दस का है।"

बडवाले न जानकारी दी।

बाप सोच म पड गया। थोडी देर म बोला, 'दस आदमी का चलेगा। पर कपडे शानदार होने चाहिए।" बाप ने अपने मन की बात बता दी।

वो तो आयेगा, पर शादी और बारात क वक्त। एक बात, पर कितने घट क लिए चाहिए ? दो घटा या चार घटा ?"

अरे बाबा घन्टे की क्या बात करते हो ? तीसरी पीढी की पहली शादी है। इसलिए चार दिनो की तिथि ली है। तीन दिन मारुत म हल्दी लगाकर घर घर सँवई लाते फिरेगा तब बड लगेगा—अथात हल्दी लगने म लेकर बारात वापस आने तक चार दिन बड लगेगा।

बाप न एक साँस म सारी जानकारी दे डाली। जानकारी भी—यह नही है पर बडवाले क इतना ही समझ म आया कि चार दिन बड चाहिए। चार दिन नूरमोहम्मद का बैड। ऐसा ग्राहक उसकी जि में न आया होगा।

यूसुफ चाय लकर आ गया। चाय पान समाप्त हुआ।

'तो बोलो। कितना पैसा होता है ? बाप न मुद्दे की बात की।

बडवाले ने एक कागज लिया उनम औकडेवाजी की और कहा पाटील, गाडी-भाडा पकडकर डेढ हजार रुपया पडेगा।

डेढ हजार का आँकडा सुनकर बाप तो चारो खाने चित्त ! वह रमगया उसी तरह उसकी मूर्छा होली और पहले क

हालत की कुर्सी बाप को लेकर धराशायी हो गयी।

पल भर की बात! किसी की कुछ समझ में नहीं आया!

"अरी अम्मा, मर गया, मर गया!" जब बाप चिल्लाया, तब सारे लोग दौड़ते आये। दोनों ने बाप को उठाया। परन्तु, बायें हाथ को पकड़ते ही, बाप फिर तिलमिलाया "मर गया, हाथ गया!"

यूसुफ और बडवाले उठाकर पड़ोस के हड्डी डॉक्टर के पास ले गये।

हड्डी टूटी। उसमें हफ्ता निकल गया, पर बड का शौक नहीं छूट पाया।

हाथ ठीक हो गया, तो बाप पुणे आया। वहाँ कौन सा अच्छा बड है, यह देखने के लिए समधी के साथ घूमा, पर बात बनी नहीं। कोई आने को तैयार न होता। फिर, बाप ने अपना मोर्चा नगर की ओर कूच किया।

नगर में दो चार बडवाले हैं तो, परन्तु डॉक्टर के बंडेज और घर में बाँधी चिन्दी की तरह, शहर और नगर के बैंड में भी अन्तर था। बाप को शानदार कपड़े पहने बडवाले चाहिए थे और ये तो नाइट पाजामा एक कमीज जाकिट और साफा वाला छोटा सा बड था—सिर्फ चार लोगों का! ऐसा बड भला बाप को कब पसन्द आता?

बड को लेकर बाप परेशान हो गया। उसने कुछ सोचा और सीधे गाँव की ओर चल पड़ा।

'तेरे बड का क्या हुआ रे? आयेगा न!' चाचा ने पूछा।

'बात ऐसी है तात्या, मैंने बड तय किया। पर जानने समझनेवालों का कहना है कि वह अच्छा नहीं है। आज आपकी तीसरी पीढ़ी की पहली शादी है। ऐसे में जिसने दो पीढ़ियों की शादी लगायी, वह भीम्या मांग ही आना चाहिए। इसीलिए मैं आया। अब तो यह शादी भीम्या मांग ही लगाएगा।' बाप ने दादा से कहा।

शादी के समय बजनिया को देखकर लोग हँसने लगे। भीम्या सत्तर साल का। वह भापा बजा रहा था। उसका लडका काशी पपैया बजा रहा था और कादी का लडका डफली बजा रहा था।

शादी में इन बजनियों को देखकर किसी ने पूछा, "क्या रे, विठोबा, यही है तुम्हारा बैंड ?"

"अरे भई, चचा की जिद ! कहता था, 'मेरी शादी, तुम्हारी शादी जिसने लगायी, वही भीम्या माग तुम्हारे लडके की शादी लगाएगा !' "

मेरी शादी की पत्रिका सबको भेजी गयी। अब गाँव लौटने की तैयारियाँ चल रही थी। सारी खरीद फरोख्त बाप कर रहा था। वह माँ से भी पूछता, पर सिर्फ यह बताने के लिए कि मैं अमुक अमुक कर रहा हूँ। माँ क्यों 'ना' कहने लगी ? कह देती "कीजिए, जो चाहे।"

वैसे माँ की ओर से मेरे रिश्तेदार अधिक थे। मेरी चार मौसी थी। एक मामा था। वाघुड के पास, ढमढेरे तलेगाँव, ढवलगाँव—ये उनके गाँव थे। सबसे छोटी मेरी माँ ! उससे छोटा भाई। इससे वह शुभ शकुनी ! उसके बाद लडका हुआ था, इसलिए माँ का मायके में बहुत लाड होता और तारीफ भी।

मेरी शादी में चारों मौसियाँ, उनके लडके-लडकी, दादा दादी सारे स्वजन आये। कुछ लोगों के पास बैलगाडियाँ थी। कुछ लोग गाडी से आये थे।

हम घर के लोग चार दिन पहले सारुल पहुँच गये। मेरी शादी कुछ इस तरह हुई कि आज हल्दी लगने के चार दिन बाद शादी, अर्थात 'चार माँडी लग्न' ! जिस दिन मुझ पर हल्दी चढी, बुधवार था। मुझे अच्छी तरह याद है, उन दिनों मैं शनिवार का व्रत रखा करता। मेरी शादी ठीक शनिवार को आ रही थी।

हाँ, तो क्या कह रहा था ? याद आया जिस दिन हल्दी चढनी थी वह शाम पाँच बजे का मुहूर्त था। मेहमान आ रहे थे। क्या-क्या कम पडेगा, इसकी सूची बनायी जा रही थी।

शाम को भीम्या मांग को बुलवा भेजा गया। उसके आते ही दादा (मारुतिदा) अपने बेटे को पुकारता हुआ बोला, 'ए, बाबू, जा, अपनी पेटी उठा ला! राम्या की 'चूच' करनी चाहिए!"

महिलाएँ मेरी प्रशंसा कर रही थीं। कुल मिलाकर मर ठाठ थे! वैसे मैं था भी मजे में। शहर और गाँव का अंतर तो रहेगा ही। अधिकांश मेहमान गाँव के थे। उनमें मैं अधिक अच्छा दिखता। लच्छेदार माँग, कालर की कमीज़, आधी चड्डी - कुछ इस तरह मेरा रुआब था! परन्तु भगवान और दादा से यह देखा नहीं गया। उन्होंने मेरी 'चूच' करने का आदेश दे दिया। 'चच' जानते हैं क्या होती है?

जिसकी शादी होती है न, उसके सिर का अर्थात जो कपाल है उस कोना कान पकड़कर, पहले कैंची से शिवलिंग के आकार का बनवाते हैं, फिर उतना हिस्सा उस्तरे से साफ करते हैं। बाकी बालों का एक नम्बर की मशीन से एक समान करना होता है। इसी को 'चूच' कहते हैं। कुछ जगह 'चेहरा' भी कहते हैं।

बाबू तात्या पेटी लाया। बस दादाजी गरज उठे, 'ऐ रामचन्द्रया, जा कपड़े निकाल ले! तेरी चूच करनी है।"

मैं सकपका गया। पास बाप बैठा था। दूसरी ओर माँ मौसी गप्पें लड़ा रही थी। य सारा सीन हमारे सासुल के घर के सामने आँगन म चल रहा था। मैं चारों ओर दयनीय-सा दखता रहा, परन्तु मुझ पर किसी को दया नहीं आयी।

'अरे कपड़े निकालने को कहा न? दौड़, देर मत कर!' दाढ़ी का एक बाल नोचता दादा बिफर पड़ा। मैं उसी तरह खड़ा रहा। मेरे आस-पास मेरी मौसेरी बहन और अन्य मेहमान महलों के बच्चे। वे भी एम देख रहे थे जैसे मैं पागल सा लग रहा होऊँ!

फिर देर लगी, यह देखकर दादा बोला अरे, तुम्हारे मन म क्या है?"

'कुछ नहीं तात्या पर 'चूच' न की तो ?" मैंने अपनी घुंघराली लटों पर हाथ फेरते हुए कहा।

ऐ, विट्ठल, देख अपना लड़का!" दादा ने बाप को डाँटकर कहा।

"ऐ, भड़वे, बैठता है कि नहीं 'चूच' कराने !" बाप ने भी डाँटा।

"दादा, मैं चूच नहीं कराऊँगा।"

"अरे साले, देखता हूँ, तू चूच कैसे नहीं कराएगा !"

बाप उठा। मेरे पास आया। मेरा हाथ पकड़कर खींचने लगा। परन्तु मैं हिलने को तैयार नहीं था। उसने मुझे खींचकर बापू तात्या के सामने बिठा दिया। बाप तात्या ने चूच करनी शुरू की। भीम्या माँग (बजनिया) अपने साज़िदों के साथ हाज़िर था। जैसे ही चूच करना शुरू हुआ उसने बाजे बजाना शुरू किया और उसके सुर में मैं अपना सुर मिलाकर रोने लगा।

मेरी चूच हो गयी। अब माँ ने मुझे अपने पास बुलाया। पानी गरम हो रहा था। मुझे पीढ़े पर बैठाया गया। नहलाया गया। भीम्या माँग बाजा बजा रहा था। मैं सिसक रहा था।

स्नान पूरा हुआ। नयी धोती लायी गयी। उसमें माँ मौसी ने मुझे लपेट दिया और देह पोंछ डाली। अब धोती पहनाने की चिल्लपों। धोती बापू-तात्या ने पहनायी। घर में ले गये। हल्दी की थाली लेकर बाप खड़ा था। मुझे पीढ़े पर बिठाया गया। सभी औरतें मुझे हल्दी लगाने लगीं। भीम्या माँग बाजा बजा रहा था। मैं सिसक रहा था। हल्दी लगी। धोती के बाद कमीज़। सिर पर एक मुंडासा और मौर। शरीर पर शाल। हाथ में हल्दी के कपड़े में लिपटी कटार। उसके ऊपर नीबू खोंसा हुआ।

इस तरह मुझे तीन दिन हल्दी लगती रही।

हमारी ओर, यानी हमारे इलाके में हल्दी चढ़ने पर दूल्हा हो या दुल्हन, उन्हें सेवइयाँ खिलाने बुलाते हैं। वैसे हमारा गाँव काफी बड़ा था। सबके घर नहीं गया, पर बीस पचीस लोगों के घर गया। जिनका निमन्त्रण, उनके यहाँ सेवइयाँ खाने जाता। साथ में लोग और आगे आगे बजनिया। इस तरह पूरा जत्था उसके घर जाता। सेवइयाँ मेरी पसन्द की चीज़। सेवइ और मलाईदार दूध। शक्कर। ओहो, क्या बताऊँ ? कितना आनन्द था !

पर हुआ कुछ और ही, जब मेवाड़ें खाने जाता, तब साथ में और मेहमानों के लड़के होते। अर्थात कुल मिलाकर दस-पन्द्रह लोग। एक या दो थालियां आतीं। मैं एक ही निवाला लेता और थाली में कुछ भी बाकी न बचता। बाकी लड़के गपागप खाकर खत्म कर डालते।

तीन दिन इसी तरह बीते। बड़े लोग शादी की हड़बड़ी में थे। मेहमान आ रहे थे। किस तरह बारात जानी चाहिए इसकी योजना बना रहे थे, क्योंकि शादी दूसरे गांव में थी। गारूल से करीब करीब सोलह मील पर। बैलगाड़ी का रास्ता था।

शनिवार को शादी। शुक्रवार की रात सब सारी तैयारी हो गयी। उस रात गप्पें हांकते हांकते एक बज गया। ठंड के दिन थे। अलाव जलायी गयी। उसके चारों ओर सब लोग बैठे। विशेषकर महिला-वर्ग। काफी दिनों में मिले थे। गप्पें खूब जम रही थीं।

"अब चलें! सोएं! सुबह बारात निकलेगी। इसलिए जल्दी उठना होगा।" दादा ने कहा।

सुबह मुझे चार बजे उठाया गया। ठंड खूब पड़ रही थी। फिर भी उठना पड़ा। अन्य महिलाओं को भी उठाया गया। बेचारी आंखें मलती उठीं।

"अरी, उठो! दूल्हे को हल्दी लगानी है। स्नान कराना है। ये सब कब करोगे? उठो!" एक-दूसरी से कह रही थीं।

पिसी हल्दी नहीं मिल पा रही थी। फिर खड़ी हल्दी लायी गयी। उसे पीसा गया। गरम पानी थाली में डाला गया। उसमें पिसी हल्दी मिला दी गयी। यह सब लड़कियां ही कर रही थीं। आंखों पर नींद छायी थी।

मुझे पीढ़े पर बठाया गया। नंग धड़ंग। बदन पर सिर्फ धोती थी। ठंड से अकड़ गया। सभी महिलाओं ने हल्दी लगानी शुरू की। वह ठीक से पीसी नहीं गयी थी। इसलिए लगाते समय शरीर में खरोंचें उभरतीं। वे मन भी उसी तरह रही थीं।

चलने की सारी तैयारी हुई। दादा का गांव में रौब था। गांव में

दस बैलगाडियाँ बारात मे आयी। पाँच छह मेहमानो की बैलगाडियाँ थी।

"गाडिया गाँव के किनारे खडी करो। हम दूल्हे को भगवान के दर्शन करा लाते हैं।" दादा ने आदेश दिया।

दूल्हा सज गया। उसे घोडे पर बैठाया गया। भीम्या माँग ने बाजा बजाना शुरू किया।

आगे बजनिया। उसके पीछे बाबूतात्या, नारायणतात्या थाली मे अक्षत लेकर भागते आये।

सुबह साढे छह का समय! अधिकाश घर बन्द थे। जो जाग गये थे, वे हाथ म लोटा थामे मैदान के लिये जा रहे थे।

एक ओर बाबूतात्या और दूसरी ओर नारायणतात्या, अक्षत बाटने निकले।

"अहो, धामणे उठिये! दूल्हा बारात लिये निकल रहा है!"

"अहो, काले, उठिए! दूल्हा बारात लिये निकल रहा है!"

इस तरह आवाज देकर, कुडी बजाकर, दोनो, दरवाजे खुलवाकर अक्षत बाँट रहे थे। जो लोटा लेकर गाँव से बाहर निकल रहे थे, उन्हे भी रोककर अक्षत दे रहे थे।

आगे भीम्या माग, उसके पीछे दूल्हा और उसके पीछे कुछ लोग और महिलाएँ। जिन जिन को अक्षत मिल गया था वे दूल्हे की दिशा की ओर फेंककर बीडी का धुँआ उगलते फटाफट निकल जाते। उन्हे जल्दी भी होती।

हनुमानजी का मन्दिर आया और पैर पडने का कायक्रम शुरू हुआ। गाडियाँ जुती हुई थी ही। उसके बाद दूल्हा गाडी म बैठा और शादी की बारात पारगाँव की ओर निकल पडी।

भीम्या माँग आगे और बारात पीछे, इस तरह मेरी शादी का जुलूस निकला था। सारे बाराती बैलगाडी से निकले थे। करीब करीब सत्रह-अठारह बैलगाडियो का जत्था था।

जब कोई गाव आता तो गाडी म बठे भीम्या माग और साथीदार गाडी से नीचे उतरते। उनका बाजा बजाना शुरू हो जाता। उनके बाजा बजाने के कारण ऊँघते बाराती जाग जाते। जो गाव आता, उसके ग्रामीण

पूछते ' कहाँ की बारात है ?"

"मारल के हजाम की !" ऐसा उत्तर दिया जाता।

गाँव आते ही आते-जाते लोग कुछ देर ठहरते। व अदाज लगाते कि बारात शादी लगाकर आ रही है या शादी लगाने जा रही है ? उस गाँव के लडके बच्चे भागते दौडते आते और रास्ते के किनारे खडे-खडे देखते रहते। किसी भी गाँव में आने पर यह सीन दिखायी देता। इस तरह जैसे-तैसे टाकली गाँव ग्यारह साढे ग्यारह बजे आया।

यह पहले तय हुआ था या बाद म, पता नहीं, परन्तु अब यहीं नहा धोकर खाना खाकर आगे बढना था।

टाकली गाँव आने के बाद फरमान जारी हुआ, 'बारात यहीं नदी पर रोकिए खाने-पीने के बाद आगे जायेंगे।'

नदी क्या थी, एक छोटा-सा नाला था। घुटनों तक पानी एक ओर बह रहा था।

टाकली गाँव की नदी पर सारी गाडियाँ रुकी। जहाँ-जहाँ छाया थी, वहाँ गाडियाँ खडी कर बैलो क सामने घास डाली गयी। लोग धोती लेकर आस पास कुएँ की तलाश मे निकल पडे। वे नहान गये। महिलाएँ तुरन्त रसोई म जुट गयी। कुछ लोगो ने तीन बडे पत्थर रखकर चूल्हा तैयार कर दिया।

दूल्हे का सारा काम जोरदार। मैं अपनी गाडी मे। साथ म बच्चियाँ थी। कुछ रसोई की तैयारी मे लग गयी। कुछ मेरे लिए तैनात रही।

हमारी गाडी टट्टियों की थी। वह एक पेड के नीचे खडी की गयी। बैल छोडे गय। मैं गाडी म ही बैठा रहा। गाडी मे मन न लगता। इसलिए एक लडकी स कहा, 'ए, होसी, हम उस पेड के नीचे बैठेंगे। अच्छी जगह है। सबने सिर हिलाए। तुरत सब गाडी स उतरे।

"ए भैया ! यहाँ दरी बिछाऊँ ? ' होसी दरी बिछाती बोली।

"अरी वहाँ नहीं। हँऽहँ अभी तक तुम्हारे ध्यान म नहीं आया ? इधर ला दरी।'

मैंने हाथ से दरी ली और चुनी हुई जगह पर डाल दी। उस जगह एक ओर मसनद की तरह टेकडी उठी हुई थी, उस पर दरी बिछायी और तैयार मसनद पर मस्त लुढक गया। मेरे आसपास लडकियाँ बैठी। होशा बटुआ निकालकर पान का बीडा बना रही थी।

नदी के किनारे उस गाँव का एक ग्रामीण जा रहा था। उसने देखा, "ऐ, पहुना, कौन गाँव की बारात?"

"मारुल की। नाई की बारात।"

"कहाँ जा रही है?" ग्रामीण रुककर बोला।

"भातोडी पारगाँव को।" बाबूताया चिलम से धुआँ उगलता बोला।

"अहो, दूल्हा दिखायी नहीं देता?"

"वो देखिए, आपकी दायी ओर।"

ग्रामीण ने दायी ओर नजर दौडायी। मुझे देखा। मैं तो अपनी मसनद से टिककर बैठा था। मुझे देखते ही ग्रामीण चौंका और चिल्लाया, "इस बारात का मुखिया कौन है?"

"क्यो भई, क्या काम है?"

'अहो, जल्दी इधर आइए, जरूरी काम है।"

बाबूताया भागते हुए पहुँचा और बोला, 'क्या है?"

ग्रामीण ने उसके कान मे कुछ कहा और बाबूताया चिल्ला उठा, "अरे, बाप रे!"

बाबूताया चिल्लाया तो उसके ससुर ने पास आकर पूछा, "क्या हुआ हो, बाबूराव?"

बस, बाबूराव ने उसके भी कान मे कुछ कहा और वह भी चिल्लाया, "अरे, बाप रे!"

इस तरह 'अरे, बाप रे!' सबके मुह से सुनायी देने लगा। परन्तु निश्चित रूप से क्या हुआ, मुझे भी नहीं मालूम, क्योंकि जिसे भी मालूम होता वह दूसरे के कान मे कहता और दूसरे के मुह से 'अरे बाप रे!' फूट पडता। परन्तु बतानेवाला कहता, 'किसी को बताओ मत!" तुरन्त मौसी जल्दी म मेरे पास पहुँची। "उठ बाबा, जल्दी उठ! थोडा सोच-समझकर दरी बिछानी चाहिए उठ!"

मा दरी का एक छोर खींचती बोली, "इस छोरी को दिमाग है कि नहीं ? गाडी में ही बैठा रहता तो क्या मर जाता ?"

मौसी मुझे उठाती बडबडाती रही। इतने में दूसरी स्त्रियाँ पास आयीं। कुछ मुझ पर स्नेह भरा हाथ फेरती हुई कहती, 'दुख संकट टल गया, बाई !"

एक नीबू मुझपर उतारकर, उसके दो टुकडे करके एक ओर फेंक दिया। इसी तरह और दो चार नीबू, एक दो नारियल फोड डाले गये।

यह सारा तमाशा हो गया, पर मेरी समझ में कुछ नहीं आया। मैंने बाबूलाल्या से पूछा। उसने जो बताया वह सुनकर हक्का-बक्का रह गया।

वहाँ एक कब्र थी, मैंने सीधे उसी पर दरी बिछायी थी और मसनद समझकर कब्र के सहारे लुढककर बैठा था !

अन्त में खाना पीना हुआ। गाडियाँ जोती गयी और बारात पारगाँव की ओर निकल पडी। पारगाव दो चार मील रहा होगा कि उसके पहले एक टीला पडा। दूल्हा और बच्चों को छोडकर बडे लोग बैलगाडी से उतरे। बैलो के लिए यह चढाव भारी पड रहा था। टीला क्या अच्छा खासा पहाड ही था वह। पहाड खत्म हुआ। उतार पर हरियाली थी। पारगाँव दिख रहा था। हरियाली आते ही लोग छोटे छोटे झुडो में गप्पें हाकते चल रहे थे। अब क्या, पारगाँव आ गया, इस खुशी में थे। सूर्य की डूबती किरणो में सबकी परछाइयाँ—बैलगाडी की परछाइयाँ ! बिलकुल सिनेमा के सीन की तरह शानदार दिख रहा था। पारगाव आते ही भीम्या माँग उतरा। उसके बाजा बजाते ही गाँव भर को मालूम हो गया कि बारात आ गयी।

गाँव, किसी पाट पर देव स्थापना की तरह लग रहा था। दोनों ओर तालाब थे। एक तालाब में हमारे बाराती की गाडी फँस गयी। कुछ लोग उसमें उलझ गये।

वैसे पारगाँव अन्य गाँवो की तरह ही था। मारुति के मन्दिर के बाहर प्रवेश द्वार। प्रवेश-द्वार से दो रास्ते निकलते। एक ही बैलगाडी निकल पाने जैसे ! बारात रुकी। उधर से अर्थात दुल्हन की ओर से बाजे-गाजे के साथ मेहमान आये। हममें से प्रमुख लोग सामने आये। अगली मडली ने गादा

के बाप के और मा ने पैर धोये। रोटी का टुकडा उतार डाला। भेंट-मुलाकात हुई। दाना बजनियो के बाजो की गूजती आवाज के साथ बारात गाव के मारुति मन्दिर के सामने पहुँची।

मैं और लडकिया मन्दिर मे पहुँचे। बैलगाडियो के लिए रास्ते न होने के कारण गाँव मे आसपास गाडिया खोलने का निश्चय हुआ।

मन्दिर म तो गये, पर वहा मेरी ही उम्र का एक और दूल्हा अपनी बारात की लडकियो के साथ बैठा था। मैं अचकचाया। पर पता चला कि हमारे चचेरे ससुर की बेटी की भी शादी इसी समय, इसी तिथि पर, और एक ही मडप मे है।

पिपलगाव की बारात थी वह। पर अपने-आपको वे कुछ ज्यादा ही समझने वाले थे। 'हम कोई विशिष्ट हैं,' इस अकड मे सब लग रहे थे। थे तो रिश्ते मे से ही, पर काम कुछ बडा था—इसलिए कुछ अकड मे थे।

पडित आया। "दूल्हे के कपडे लाओ,' उसने फरमाया। दोनो बारातियो मे भगदड मची, "वर्धावार कहा है ?"

दोनो वर्धावें (दूल्हे के साथी) कपडे लाये। दोनो दूल्हे सजे। बाजे बज उठे। ग्राम द्वार चबूतरो पर, मदिर की रेलिंग पर दोनो बारातियो के लोग बैठे थे। वे उठे। बजनिया आगे, दोना दूल्हे पीछे और उनके पीछे दोनो बारातें—इस तरह यह झुड आग बढने लगा। गाव की सीमा पर पहुँचे। बाहर ही गाव का पाटिल और दूसरे लोग बैठ थे। दुआ सलाम हुई। बारात आगे बढी। सामने एक कठिनाई। वहाँ से दो रास्ते निकले थे। रास्ते क्या गलिया ही थी। एक ही गली म सारी बारात निकल पाना कठिन था। इसलिए दादा मारुतिदा बोले "ओ पिपलगावकर अपना दूल्हा बायी ओर से—इस गली से—लीजिए न !"

बस, चिगारी दहक उठी। पिपलगाव की बारात का सिफ मुखिया आगे आया, "क्या साखलकर ! बोलते समय कुछ तालमेल रखिये ! किसे कह रहे है बायी ओर से जाने के लिए ? हम क्या छोटे हैं, इसलिए बायी ओर से जायें ?

ऐसे साप की तरह फन फैलाकर कौन बोला, इसकी जानकारी दादा को नही थी। जैसे ही पिपलगाव का कचरू बोला वैसे ही दादा ने

नम्रतापूर्ण स्वर में कहा, "अहो, दोनों बारातें इस गली से नहीं जा सकेंगी, इसलिए कहा।"

'तो आप चले जाइये बायीं ओर से ! हमें क्या बताते हैं ?"

'साळुंकर और बायीं ओर से ! पिंपळगाँवकर, आप होश में हैं या नहीं ? सारे नगर जिले में मशहूर हैं साळुंकर ! उन्हें आप बता रहे हैं ? हमारा दूल्हा दायीं ओर से ही आयेगा !"

इतना कहकर दादा दूल्हे के घोड़े की लगाम अपने हाथों में लेकर गली में घुसाने लगे। दोनों बारातें मूर्तिवत स्तब्ध थीं।

गाँव के उस छोर पर बैठा पाटील, यह सारा तमाशा देख रहा था। दादा ने दूल्हे का घोड़ा जैसे ही गली में घुसाया वैसे ही वह चिल्लाकर बोला, "साळुंके की बारात दायीं ओर से आये।"

पिंपळगाँव के बारातियों में से एक दूल्हे का घोड़ा पकड़कर दायीं ओर से घुसने लगा। तभी दुल्हन की ओर के लोग हाथ पैर जोड़ने लगे, 'पिंपळगाँवकर, यह क्या कर रहे हैं ? जाने दीजिए न बायीं ओर से ही।"

'वाह, पारगाँवकर खूब रहीं ! यह आप कौन रहे हैं ? हम बायीं ओर से जायँ ? इतने छोटे हो गये ? आयेंगे तो दायीं ओर से नहीं तो यहीं से दूल्हे की हल्दी पोंछकर बारात वापस लौट जायेगी।"

"अहो, साळुंकरों ने तो दायीं ओर से बारात घुसा भी दी। कुछ ज्यादा ही समझते हैं अपने आपको।" पिंपळगाँव की एक महिला ने चिंगारी फेंकी।

बस, हमारे बाबूतात्या की पत्नी तैश में आकर बोली "ए, किसकी समझदारी निकाल रही हो ? अपनी औकात में रहा करो ! पिंपळगाँवकर की क्या औकात है जाहिर है।"

"अरी, साळुंकरों की इतनी शेखी मत बघार ! आयेंगे तो दायीं ओर से ही आयेंगे।"

"हाँ, हाँ ! दायीं ओर से ही, पर साळुंकरों के पीछे ठीक है न ?"

कचरुबुवा संतप्त हो उठे, "ये शादी नहीं होगी ! दूल्हे राजा घोड़े से नीचे उतरो ! कोंडीबा दूल्हे को नीचे उतारो और गंगे, पानी लाकर

दूल्हेराजा की हल्दी धो डाल ! यह शादी नहीं होगी, बारात लौटा दो।"

जिस तरह कोई सेनापति लड़ाई की सूचना देता है, ठीक इसी तरह कचरबुवा सबको बता रहे थे। आदेश दे रहे थे।

बस, कचरुबुवा का फरमान जारी होते ही उसके बारातियों में भगदड़ मच गयी।

कन्या पक्ष के लोग घबरा उठे। कचरुबुवा के पैर पकड़ने तक बात पहुँच गयी, परन्तु कचरुबुवा पीछे हटने को तैयार न थे।

दुल्हन की ओर के लोग हम तक भागते आये।

"मारुतिदा, आपके पैर पड़ता हूँ, उन्हें आगे जाने दीजिए। दायीं ओर से, पीछे से आप जाइये।"

बस, दादा क्रोधित हो उठे "वाह पारगावकर ! ये क्या बचपना है ? लोग हमारे मुँह में गोबर ठूंस देंगे न ?"

"फिर समस्या कैसे हल होगी ? इसलिए आप हमारे लिए इतनी छोटी बात मान लीजिए।"

"अच्छा, ठीक है—आपके लिए ! पर हम उलटे कदमों से लौट जायेंगे।" दादा ने समस्या में और एक गाँठ जोड़ दी। कन्या-पक्ष के लोग दोनों बारातियों के हाथ पैर जोड़ने लगे पर कोई भी एक कदम पीछे न हटता।

गाँव के छोर पर पारगाव का पाटील यह सब स्थिति देख रहा था। जब गड़बड़ी बहुत बढ़ गयी, तब वह चिल्लाकर बोला, "ए हज्जामो, चुप रहो !"

सब शांत हो गये। आगे क्या होता है, देखने लगे।

'शिवराम, तू ये घोड़ा थाम ! बालू, तू दूल्हे का घोड़ा थाम ! दोनों बाराती गाँव के बाहर खड़े रहो, हम दोनों दूल्हा की शादियाँ लगा देंगे। दुल्हन समेत गाँव के बाहर लाकर छोड़ देंगे। बहुत सिर चढ़ गये हो ! हमारे गाँव आकर ये भापा ? शिवा, बालू ! थाम लो घोड़ियाँ।'

पारगाँव के पाटील की धौंस कुछ और ही थी। उसकी आवाज कुछ ऐसी थी कि वह जो कहेगा, वही करेगा। पाटील की आवाज से दोनों बाराती चुप हो गये। क्या करें, कुछ न सूझता।

दोनो बारातियो म से कुछ समझदार लोग पाटील की ओर बढे और मिन्नतें करने लगे। वह जैसा बोलता, वैसा सिर हिलाते।

पाटील के कारण फिलहाल समझौता हो गया। दोनो दूल्हा के घोडे साथ साथ निकलेंगे और बारातियो को जैसी जगह मिलेगी वे आगे बढेंगे। गाडियाँ आयी और लानी हैं।

जैसा तय हुआ था दोनो दूल्हे साथ-साथ निकले। इतनी देर तक सारे बजनियाँ शात थे। 'अच्छा हुआ'—इस आनन्द म वे जोर से बजाने लगे। अब अँधेरा फैल रहा था। मशालें जलायी गयी और उनकी रोशनी मे बारात धीरे धीरे आगे बढी, पर कब स्थिति मडप उठेगी, कहना मुश्किल था।

किसी तरह मडप तक पहुँच गये। मडप बडा था। इसी तरह तय भी हुआ था। एक ही खच म दोनो शादियाँ करनी थी। इसीलिए एक ही मडप था। दो गैस-बत्तियाँ, चार पाँच मशालें इस तरह की स्थिति थी।

"दुल्हनें लाओ!" आवाज आयी।

दोनो दुल्हनें आयी। दो दूल्हो के सामने खडी रही। बीच म कपडा ताना गया।

"दुल्हन के मामा को बुलाओ!" पडित ने आवाज दी। एक मामा रूठ गया था। उसे समझाते-समझाते समय हो रहा था। अतत मामा आया।

"सावधान!" (शादी म पढे जानेवाले श्लोक का पहला वाक्य) श्लोको की शुरुआत हुई। पडित ने पहला श्लोक कहा। फिर हमारे बारातियो मे से एक और उनके बारातियो म से एक इस तरह की स्पर्धा शुरू हो गयी। हम किसी से कम नही—यह बात दोना एक-दूसरे पर जाहिर करते।

दूल्हा दुल्हन के बीच कपडा ताने पडित तग आ गये। दोनो दूल्हा-दुल्हन भी तग आ गय। पर कोई हटने को तैयार नही था। स्पर्धा बढती जा रही थी।

पडित बीच म ही घुसकर 'बाजा बजाओ' का श्लोक कहने की

कोशिश करता रहा, परन्तु सारी कोशिश बेकार हो जाती। श्लोकों के दौर चलते रहे।

"रुकिए! रुकिए!! गड़बड़ हो गयी! अरे, दूल्हे बदल गये! इधर की दुल्हन उधर गयी और उधर की इधर!" इस तरह लड़कियों में एक तहलका मच गया।

फिर क्या कहें? इस कोलाहल में हँसें या रोयें, कुछ समझ न पड़ता।

"वजनियो, बाजे बजाओ!" इस तरह के अंतिम श्लोक का चास पंडित ने उस कोलाहल में ले लिया।

अंतत: शादी संपन्न हुई।

"लड़की का क्या नाम रखें?" पंडित ने पूछा।

माँ ने तपाक से कहा, "लछमी!" और बाप बोला, 'कौशल्या।"

एक ने बाप का मजाक उड़ाया, बोला, "लड़की का नाम तो बहुत अच्छा रखता है! पति का नाम राम, और पत्नी का कौशल्या! अहो विठोबासेठ, कौशल्या राम की माँ थी!"

सब हँस पड़े। अंत में दुल्हन का नाम 'सीता' रखा गया, पर हम 'राधा' कहकर ही पुकारते हैं।

नाम लेने का आग्रह चला। दुल्हन ने नाम लिया। अब मेरी बारी थी। मैंने भी नाम लिया, पर मंडली कहने लगी कविता में बोलो। फिर मैंने कविता में नाम लिया—

"सामने था आला उसमें रखा आम
सीता बोली मैं आयी वनवास चल दिये राम।"

दोनों दूल्हा दुल्हन के बीच इस तरह मधुर समारोह चल रहा था। उसमें हिस्सा लेने वाले सभी युवा ही थे। बुजुर्ग लोग झगड़े के मुद्दों पर जूझ रहे थे। ठंड पड़ रही थी। किसी तरह भोजन हुआ। कुछ लोग भोजन के समय रूठे हुए थे। कुछ को जनवासा पसन्द नहीं था, इसलिए रूठे थे। पिपलगाँवकर की समूची बारात वहाँ रूठी पड़ी थी। पारगाँवकर भोजन करने के लिए हाथ-पैर जोड़ रहे थे। डाँटने वाला पाटील अपने

घर की शादी की तरह, काम मे जुटा था। वह हाथ जोडकर समूचे बाराातियो को भोजन के लिए आमंत्रित कर रहा था।

भोजन सपन्न हुआ। कुछ अलाव जलाकर गप्पें मारने लगे, कुछ स्कूल म, कुछ हनुमानजी के मंदिर मे, कुछ जनवास म सोने निकल गये।

मैं मडप मे ही सोया। रिवाज है कि दूल्हा मडप म ही सोय।

मडप भी क्या था? ढोर डगर, बकरी बाँधने की जगह थी। परतु आम की डालियो से सजाया गया था। कुम्हार ने 'बोहला' तैयार किया था। बोहला अर्थात दूल्हा-दुल्हन के लिए बठने का छोटा चबूतरा। उसके पीछे आराम मे बैठने के लिए मिट्टी का सिंहासन बनाया गया था। उसे लीपा गया था, उस पर पाँच कलश रखे गये थे, प्रत्येक कलश मे श्रीफल और चारो ओर आम की पत्तियाँ। इस तरह बोहला को सजाया गया था।

ठड पडने के कारण ओढकर सो गया। चादर जब हटायी तब देखा कि बकरियो की लेंडियाँ शरीर पर बिखर गयी हैं। मडप के मालिक ने बकरियाँ बाँध दी थी। यह बकरियाँ बाधने की जगह ही थी। इसम उसकी क्या गलती?

उठा। आसपास देखा, सब लोग उठ चुके थे। सच तो यह था कि मैं ही देरी से उठा। जेब स तम्बाकू की डिबिया निकाली। लगा, तम्बाकू फाँकी जाये और शानदार दिशा मैदान किया जाये। मेरी ऐसी ही आदत थी।

तम्बाकू फाँककर अगली तयारी म लग गया। कौशिल्या—मरी मौसेरी बहन, पुणे के दारूवाला पुल पर रहती थी। वह कुछ जल्दी में घर के भीतर जा रही थी। मैंने उसे आवाज दी, "ऐ, कौशा, मैदान जाना है, लोटा तो भर ला जरा!"

'लाती हूँ।'

इतना कहकर वह भीतर गयी तो भीतर की ही हो गयी।

इतने मे मौसी बाहर आयी। बोली, "उठ गया, बेटा?"

"हाँ!" तम्बाकू की पिचकारी मारते मैंने कहा।

"मौसी, दिशा-मैदान जाना है, एक लोटा पानी ला दो न !"

"इस बाबूराव को क्या कहें ? सब सभालनेवाला बनता है पर दूल्हे-राजा को मैदान तक नही ले गया !" इतना कहते हुए वह भी भीतर चली गयी, फिर लौटकर नही आयी।

कुछ समय नही पड रहा था, क्या करें ! इतने मे मेरा ध्यान विवाह वेदी पर गया। वहाँ एक छोड, पाँच मटकियाँ थी।

उसमें से एक मटकी मैंने उठा ली और पानी की खोज म निकल पडा। इतने मे भीतर से मौसी आयी। मेरे हाथ म मटकी देखकर चौंकी। "ए, मुआ, मटकी क्यो छुई ?" वह इतनी जोर से चिल्लायी कि मैं चौंक गया। मटकी अचानक गिर पडी और फूट गयी।

इतने मे बाबूतात्या बैलगाडी लेकर आया। उसे देखते ही मौसी बोली, "अहो बाबूराव, दूल्हेराजा को दिशा मैदान कब कराओगे ?"

"उसी तैयारी मे तो आया हूँ ! देख न, गाडी भी लाया हूँ !"

'स्साला, दूल्हा गाडी म बैठकर टट्टी के लिए जायेगा मजा है !' मैंने मन-ही मन कहा। अपनी शान शौकत देखकर अच्छा लगा।

गाडी म दरी बिछाता हुआ बाबूतात्या चिल्लाया, लडकिया कहाँ गयी ? और बजनियो को भी बुलाओ !"

'जाना तो है टट्टी ! और साथ म लडकियाँ बजनिया !'—मैं चौक सा गया।

लडकिया आयी। बजनियाँ आये। सब साज सामान तैयार हो गया।

"ए, रामचन्द्रया, गाडी मे बैठ, बेटे !" बाबूतात्या गाडी घुमाते बोला।

फिर मासी बोली, 'अरे, रुकिये भी, दुल्हन को आने दीजिए !

"साथ मे दुल्हन भी आयेगी ?" गाडी म चढते-चढते मैं डगमगा गया।

दुल्हन आयी। दूल्हा-दुल्हन पास पास बैठे। बाकी विवाह के लिए विशेष रूप से आयी लडकियाँ। पानी से भरे दो लोटे साथ रख गये। सामने बजनियाँ, उनके पीछे गाडी के दोनो ओर के बैलो की रास लेकर बाबूतात्या पैदल चल रहे थे। गाडी के पीछे भी कुछ लोग थे। मैं बडे

देखता ही रह गया।

"ए बापूतात्या जरा जल्दी।" मैंने तो इतनी धीमी आवाज में कहा था कि सिर्फ बापूतात्या को सुनायी दे जाये, पर पास बैठी दुल्हन 'खिद्' से क्या हँस पड़ी इसका कारण नहीं समझ पाया।

मेरी बात सुनकर बापूतात्या बोला, "अरे बेटा इस काम में जल्दी नहीं चलती। सब तरीके से होना चाहिए!"

सुनकर मैंने माथा ठोक लिया।

हमारे दिना मैदान की बारात गाँव में घूमते घूमते गाँव के बाहर हनुमान मन्दिर के सामने पहुँच गयी।

दूल्हा दुल्हन गाड़ी से उतरे। भगवान के सामने पान सुपारी और एक एक पैसा रखा, पैर पड़े, फिर गाड़ी में बैठ गये।

गाड़ी में बैठते बैठते मैंने बापूतात्या से पूछा 'तात्या शौच के लिए कब जाना होगा?"

"अरे बेटा वही तो चल रहा है! दिखायी नहीं देता?" बापूतात्या ने तंग आकर कहा।

बारात जब गाँव से बाहर निकली तब मुझे कुछ ठीक लगा। पर सारी भीड़ साथ में। बैठना कैसे होगा? फिर असमंजस में पड़ गया।

स्वामी ये सब क्या चल रहा है?' मैंने मन ही मन कहा।

'हाँ! ठहरिए यहीं!" भीड़ में से एक ने कहा।

दूल्हा दुल्हन उतरे। सेना के हाथ में पानी का एक एक लोटा दिया।

मेरे पीछे आइए!" फिर वही आदमी जो दुल्हन की ओर से था, बोला, मुझे इतनी जल्दी थी, पर इच्छा ही नहीं रही।

'ठहरिए!' चार कदम जाने पर कहा गया हाँ, बैठिए!"

सारे लोग दुल्हन, लड़कियाँ बड़े आराम से कहते हैं, 'बैठिए!" मेरी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। मैंने बापूतात्या से धीरे से पूछा, 'तात्या, इतने सारे लोग साथ हैं और ?'

मैंने धीरे से ही कहा था, पर सबने सुन लिया। दुल्हन समेत सब

लोग कुछ इस तरह हँसने लगे, जैसे मैं कोई पागल होऊँ। और हुआ भी वही। बाबूलाल्या उसी दिशा में बोला, "अरे, ए पगले, सचमुच टट्टी को बैठना नहीं होता ! तुम ठहरे शहरा के ! गाँव के रीति रिवाज तुम लोगों को क्या पता होंगे ?"

और बाद में मुझे मालूम हुआ कि यह एक रिवाज है। दूल्हा दुल्हन को दिशा मैदान की जगह ले जाया जाता है। वहाँ वे दो छोटे छोटे पत्थर लेते है और उन पर दोनो पानी डालते हैं। मर्यात तब दूल्हा दुल्हन को भूत प्रेत का डर नहीं रहता। वैसे हल्दी की देह होने के कारण भूत-बाधा का डर रहता है।

इस तरह दूल्हा-दुल्हन के दिशा-मैदान का कार्यक्रम सपन्न हुआ। बारात फिर घूमते घूमते लग्न मडप की ओर आयी। तब बाबूलाल्या बोला, 'ए लडके, अब जा ! तुझे जाना था न ? आऊँ क्या साथ ?"

"ना, मैं अकेला ही चला जाऊँगा।" मैं लोटा उठाकर सचमुच शौच के लिए दौड पडा।

दिशा मैदान से लौटने पर दूल्हा दुल्हन का सगीत स्नान होता है। यह स्नान बडा मजेदार होता है। दूल्हा दुल्हन मैदान से लौटने के बाद, हल्दी खेलते हैं। दूल्हा दुल्हन को हल्दी लगाता है, दुल्हन दूल्हे को लगाती है। इसमें दूल्हा दुल्हन के साथ आये लडके लडकियाँ भी भाग लेते है। कुछ लडके किसी अच्छी लडकी को देखकर मौके का फायदा भी उठाते है।

जिस तरह होली मे रग डालने पर कोई गुस्सा नही करता, उसी तरह ऐसे समय कोई गुस्सा नही करता। साले सालियो म इस मौके पर कुछ अधिक उत्साह रहता है। दूल्हा ने दुल्हन को हल्दी लगाने की शुरु-आत की, कि साली (चचेरी मौसेरी, पर रिश्ते मे साली) हल्दी लकर आयेगी ही। यदि वह आ गयी तो एकाध बार चल भी जायेगा पर यदि साला आ गया तो बडी मुश्किल होती है। वह हल्दी लगाता है। लगाता क्या है रगडना है ! जैसे किसी भैंस को नदी मे रगडा जाये, ठीक उसी तरह रगडता है। अच्छा, इस हल्दी मे सिर्फ हल्दी ही नहीं रहती, इसमें

खसखस भी मिली (पिसी दाल और मसाला, दीवाली के उबटन की तरह) होती है। वह यदि आँख में चली गयी तो आँखें इतनी चरपराती हैं कि मत पूछिए।

हल्दी के कार्यक्रम के बाद स्नान। दूल्हा दुल्हन के लिए दो पीढ़े डाले जाते हैं। उसमें दूल्हे को जानबूझकर ऊँचा पीढ़ा दिया जाता है। दोनों के पीढ़े पर बैठ जाने के बाद सुपारी दी जाती है। उसे दूल्हा अपनी मुट्ठी में कसकर रखता है और दुल्हन छुड़ाकर निकालती है। फिर दुल्हन दोनों हाथों से सुपारी कसकर रखती है और दूल्हा दायाँ हाथ उसके गले में डालकर उसी हाथ से छुड़ाता है। वह जब ऐसा करता है तो साले पीछे से उसे खींचते हैं और ऊँचे पीढ़े पर बैठा बेचारा दूल्हा धप्प से पीछे गिर पड़ता है।

इस संगीत स्नान में बजनियाँ भी रहते हैं। फिर दूल्हा दुल्हन कपड़े बदलते हैं और दुल्हन को गाँव में किसी के घर में छिपा दिया जाता है। फिर दूल्हा उसे खोजकर छिपी जगह से उठाकर लाता है। मुझे तो ऐसे घर से उठाकर लाना पड़ा जिस घर में पाँच पच्चीस सीढ़ियाँ थीं। ऊपर से शरीर पर दुल्हन का बोझ उठाकर वे सीढ़ियाँ उतरनी पड़ीं। इधर कर्ता भागा ने 'फल' तैयार रखा था। फल अर्थात दोनों समधी, स्त्री पुरुष और मेहमान मंडप में एकत्र होते हैं, बीच में पंडित बैठता है और उनके सामने दूल्हा दुल्हन के नये कपड़े होते हैं। इन कपड़ों में दुल्हन के लिए जितनी महँगी साड़ी होती है सम्बन्धी उतना ही जोरदार समझा जाता है। इसी फल में तय किया जाता है कि जाति समाज का कैसा भोजन दिया जाये। किसी को यदि मान सम्मान या लेना देना होता है वह भी इसी समय किया जाता है। मान लीजिए बाप को समूची सालियों (पत्नी की बहनों) को साड़ी देनी हैं, तो वह इसी समय देगा। उस मौके पर पंडित ऊँची आवाज में बोलता है—

ये साड़ी चोली, बाघुल की बबावाई को।
ये साड़ी चोली जबला की नवाबाई को।'

यह सब चलते समय दूल्हा दुल्हन को उठाकर लाता है। फिर पंडित उन दोनों के आँचल में फल रखता है। दूल्हा दुल्हन जब कपड़े बदलते

जाते हैं तब पंडित चिल्लाता है, "पहले दूल्हे की ओर की भेंट आने दो।" फिर भेंट की शुरुआत होती है। भेंट देने वाले देते रहते हैं। पंडित चिल्लाता रहता है—

"यशवंतराव सालुंके की ओर से आठ आने भेंट !"

"बाबूराव मोरे की ओर से चोली-साफा भेंट !"

जैसे रिश्ते हों वैसी ही भेंट वस्तुएँ मिलती हैं।

फिर पंडित चिल्लाता है, "अब दुल्हन की ओर की भेंट आने दीजिए !"

तब दुल्हन की ओर की भेंट चालू होती हैं।

दूल्हा दुल्हन कपडे बदलकर ज्यों ही आते हैं, पंडित दूल्हे के उत्तरीय की दुल्हन के शाल के छोर में गाँठ बाँध देता है। अब दूल्हा-दुल्हन पहले पंडित के, उसके बाद गाँव के पाटील के पैर छूते हैं। फिर सारे बडों के पैर छूते हुए आगे बढ़ना होता है। स्साला ! झुक झुककर मेरी तो कमर दुखने लगी। घंटा भर यही चलता रहा। लोग उधर इस चर्चा में मशगूल थे कि खाने में क्या लिया जाये और हम इधर पैर छूने में लगे थे।

इस पैर छूने वाले कार्यक्रम में तनिक भी आगे पीछे हुआ कि रूठना शुरू हो जाता था। गलती से मैंने मँझली मौसी के पैर छू लिये। बस बड़ी मौसी रूठ गयी। पैर छूने ही न दे। उसके पैर छूने से पहले कोई और भी न छूने दे। फिर बुजुर्गों ने समझाया। साडी, चोली नारियल पैरों पर रखे, तब कहीं मौसी ने पैर आगे बढाये।

इस फल का कार्यक्रम बिलकुल ठीक ढंग से चलेगा—यह आवश्यक नहीं है। थोडा भी मानापमान में परिवर्तन हुआ कि झगडा तय ही समझिए। कुछ तो पहला बदला निकालने की घात में ही रहते हैं।

फल के समय टीका लगाया जाता है। पंडित के तिलक तैयार कर देने के बाद एक कोई उठता है और पंडित के पैर छूता है। फिर तिलक की कटोरी दाहिने हाथ में लेकर पहला तिलक पंडित को, दूसरा गाँव के पाटील को, फिर बाकी लोगों को लगाता है। पर इसमें भी मानापमान होता है। तिलक लगाने में तनिक भी आगे-पीछे हुआ कि झगड़ा शुरू।

सबके पैर छूने के बाद, वर वधू को लेकर अपने जनवासे की ओर

चढ़ता है। सिर्फ पति को छोड़कर सब जनवासे में रहते हैं। दूल्हे को ऐसा बताया जाता है कि बाबा, दुल्हन को लेकर ही जनवासे में आना।'

दूल्हा दुल्हन को लेकर जब निकलता है, तब दुल्हन को विदा देने उसकी ओर से सब स्त्री-पुरुष सबई, गुझिया, पापड़, लड्डू, पूरियाँ आदि पकवानों से भरी थालियाँ लेकर आते हैं। जनवासे में दूल्हे के लोगों के सामने वे उपहार रखते हैं। उपहार ढँका होता है। उस पर दुल्हे की ओर के लोग कपड़ा और सवा रुपया रखते हैं। यह सारा कार्यक्रम महिलाओं का होता है। जब उपहार रखा जाता है, तब दुल्हन की ओर की स्त्रियाँ कहती हैं—

मंडप के सामने फैली है झाड़ी।
उपहार में दी है बैलगाड़ी।।
गाड़ी का टूट गया है पहिया।
बाप से उपहार पाये दुलहनिया।।
दुल्हन का बाप पागल घोड़ा।
उपहार में दिया बैठा घोड़ा।।
बैठा घोड़ा कुछ ना कर पाय।
उपहार में दे दी चार गायें।।
गायों के सींग टूट गये।
भाभी की बहन समझाती रहे।।

दुल्हन की ओर की महिलाओं द्वारा इस प्रकार का विवाह गीत गाने के बाद दूल्हे की ओर की महिलाएँ तुरंत कहती हैं—

उपहार आया, उपहार आया,
हिल गयी घर की चोटी।
अरी खोलकर देखा तो
भीतर सिर्फ डेढ़ रोटी।।

इस तरह कहने के बाद उधर की महिलाएँ चुप नहीं रह जातीं। वे कहती हैं—

मडप के बाहर रगीन जनता,
नेवला गाना गाये
भाभीजी की नाभी पर,
अरी, मुझे कुछ खबर न थी
कोई चिल्लाता गाव के बाहर॥

इस तरह जुगलबन्दी चलती है। जैसी हम अत्याक्षरी खेलत हैं न, वैसी ही। जिसको जो सूझता वह वही कहता। अच्छी स्पर्धा हाती है। ऐसी स्पर्धाओ मे कभी कभी झगडे भी हो जाते हैं।

ऐसी कहावतें, गीत गाने होने पर झगडे निश्चित ही हाग।

इस तरह यह उपहारो की बात थी। दूल्हा दुल्हन को लेकर अपन गाव निकलने लगा। बडे लोग इसी काम म लगे थे। बैलगाडिया जोती गयी, बारात निकली, रोना धोना शुरू हुआ। दुल्हन की ओर के स्त्री पुरुष सिसक सिसककर रो रहे थे। कुछ रोने का ढोग कर रह थे पर रा रहे थे। बारात गाँव से बाहर तक निकल आयी। दुल्हन की आर के लोग चार कदम आगे आये। उस गाव का पाटील गाव के छोर क टीले पर बैठा हँस रहा था।

दुल्हन को लेकर हमारी बारात सारल आयी। दूल्हा-दुल्हन का मदिर मे उतारकर सारी बारात गाँव म चली गयी। रात के आठ बजे होगे। हम जब मदिर गये, तब वहाँ एक टिमटिमाते दीये के अलावा सिफ अँधेरा ही था। कोई किसी को न देख पाता। मेरे साथ शादी मे आयी लडकियाँ थी। बाकी सब गाँव मे चले गये थे।

गाडी मे बैठे-बैठे देह अकड गयी थी। ऐसा लग रहा था कि कब लेटने का मिले। पर अभी तो बारात गाँव मे घूमने वाली थी।

अँधेरा कहता हूँ मैं, पर गाँव के लोग कदमो की आवाज स ही आदमी को ठीक से पहचान लेते। आवाज देकर भी पता कर लेते थे, 'कौन जा

रहा है रे ? काले का गजोवा है ?' 'कौन है ? पवार का भाणुजी ?' इस तरह की उन्हें आदत हो चुकी होती है। पर मैं दीये की टिमटिमाती रोशनी में "कोदो चल इधर बैठेंगे !" ऐसा कहकर गलती से अचानक दुल्हन की सहेली का ही हाथ पकड़ बैठा। चिल्लाहट मची, "भई माँ, दूल्हा बड़ा बदमाश लगता है !" आवाज उसकी ओर की लड़कियों में से आयी। तब मालूम हुआ कि मैंने किसी दूसरी का ही हाथ पकड़ लिया। दुल्हन के साथ जो उसकी सहेली आयी थी वह जरा ज्यादा ही होशियार थी। गैस बत्ती आयी। मैं दुल्हन की ओर देख रहा था और दुल्हन की सहेली गुर्राकर मुझे घूरे जा रही थी।

चाय आयी। पान-बीड़ा खाया। गप्पें चल रही थी। गाँव के लोग आ रहे थे। हमारा मुँह देखते और चल देते। भोजन आया। दस बजे सब मंडली आयी।

बापूतात्या बैलगाड़ी लाया। उसमें दूल्हा दुल्हन, सारी लड़कियाँ, लड़के बच्चे। गाड़ी खचाखच भर गयी। गाड़ी के दोनों ओर मशालें, सामने लेझिम बीच में ढोल उसके आगे गाँव का तानेवाला ! धिंग तान धिनाक धिंग तान धिनाक ! ढोलक की इस चाल पर हमारी बारात निकली। गाड़ी के सामने पन्द्रह बीस लोग ताल पर नाच रहे थे। जिनके हाथों में लेझिम नहीं थी वे सिर का साफा उतारकर लेझिम सा बनाकर नाच रहे थे। उनके पास दो मशालें और ताशे वालों के पास एक मशाल। गाड़ी के पीछे स्त्रियाँ चल रही थी। उनके बीच गैस बत्ती थी।

हमारी बारात चींटी की गति से सरक रही थी। नाचनेवाले नाच रहे थे। बजानेवाले बजा रहे थे। पर इधर गाड़ी में दुल्हन ऊँघ रही थी।

सारे गाँव से बाजे-गाजे के साथ बारात घर के सामने आ पहुँची। वहाँ बड़े बुजुर्ग पैसे उतारकर बजनिया को दे रहे थे।

फिर खंडोबा का खेल खेलना था। उस खेल को 'टेढ़ा खेल' कहते हैं। इसमें दूल्हे की ओर से कोई व्यक्ति दूल्हे को पीठ पर उठाता है। दूल्हा-दुल्हन के हाथ में छह छह चपातियाँ देता है। फिर बजनियाँ बाजा बजाते हैं और उस ताल पर दोनों नाचते हैं। दूल्हा-दुल्हन एक-दूसरे को चपातियाँ फेंककर मारते हैं। यह खेल खत्म होने के बाद खंडोबा की आरती उतारी

जाती है और 'खंडोबा के नाम का जय-जयकार !'

आरती के बाद दुल्हन देहरी पर रखे बर्तन को पैर से उलटा कर घर में आती है।

यह सब हो गया। इसके पीछे क्या उद्देश्य था, पता नहीं। पर इतना अवश्य था कि रोज भागदौड़ करनेवाले जीव का मनोरंजन हो रहा होगा।

समारोह हुआ, पूजा हुई और हम सब बम्बई आ गये।

वैसे पत्नी का प्रवेश शुभ साबित हुआ। बम्बई आया और डाक विभाग से बुलावा आया। कितनी खुशी हुई! यह निश्चित ही मेरी पत्नी के शुभ आगमन का सूचक था। विभाग ने मेरी परीक्षा ली, मैं पास हुआ और करेस्पाडेंस डिपार्टमेंट में पैकर के रूप में नौकरी पर लग गया। अब मुझे सतरहवाँ वर्ष लग चुका था।

डाक विभाग में काम करते छह महीने हुए। खाकी कपडे पहनकर घर आता जाता। मां-बाप को मुझ पर बड़ा गर्व होता। 'लड़का सरकारी विभाग में है।' ऐसा वे सबको बताते।

डिलिवरी विभाग में हर वर्ष पूजा होती, उस वर्ष मैंने उत्साह से लोकगीत गाया। मेरी खूब तारीफ हुई। कुछ पूछते, "तू गाना क्यों नहीं सीख लेता?" तो कुछ कहते, "तू रात्रिकालीन स्कूल में पढ़ाई कर, तो पोस्टमैन की परीक्षा में बैठ सकेगा।" इस तरह सुझाव देते रहते।

डाक विभाग में नौकरी लगी, इसीलिए मैं कलाकार बन सका, अन्यथा !

मैंने नाइट स्कूल में जाना तय कर लिया। आग्रेवाडी में ब्रैडले नाइट हाईस्कूल में जाने लगा। मेरी ड्यूटी सुबह नौ से शाम पांच बजे तक होती। साढ़े पांच छह तक घर फिर तुरंत ट्राम पकड़कर स्कूल जाता।

यह सब चल रहा था। साथ ही गिरगाँव में कहीं कुछ नाटक कला-पथक का कार्यक्रम होता तो मित्रों के साथ देखने चला जाता।

[एक दिन सरकारी तबेला (शांतिनगर—गिरगाँव) में जनता कलापथक का कार्यक्रम था। उन दिनों, पंढरपुर का विट्ठल मंदिर सबके लिए खुले इसके लिए, पूजनीय सानं गुरुजी चारों ओर जन-जागृति के लिए घूम रहे थे। जगह-जगह प्रचार सभाएँ आयोजित करते। उनके साथ कलापथक होता। इसी तरह से एक कलापथक का कार्यक्रम सरकारी तबेले में था।

मैं और मेरे मित्र उस कार्यक्रम को देखने गये। सारा कार्यक्रम देखा। मन में आया इस तरह के कलापथक में यदि मौका मिले तो कितना अच्छा हो! कार्यक्रम समाप्ति के बाद मैंने उनमें से एक से पूछा, "क्या भई, आपके कलापथक का मुखिया कौन है?"

"क्यों!

"मुझे कलापथक में शामिल होना है!"

मुझे क्या-क्या आता है, उसने पूरा पूछ लिया। फिर बोला 'आप—कमलाकर म्हात्रे, जनता कलापथक, गिरगाँव वगैरह—इस पते पर पत्र भेजिए!"

पढ़े लिखे लोगों के बीच अच्छा मौका मिलेगा, इसकी मुझे बहुत खुशी हुई। मैंने पत्र भेज दिया। पर एक गंवारपन कर ही बैठा। कमलाकर म्हात्रे की जगह सीधे कमलाबाई म्हात्रे लिख मारा। शायद मन ने सोचा होगा कि कमलाकर आदमी का नाम कैसे हो सकता है!

मुझे कलापथक में प्रवेश मिल गया। उनके कार्यक्रम शनिवार रविवार को छुट्टी के दिन होते। वैसे तो मैं सिर्फ साथ देने का काम करता। मेरी आवाज अच्छी थी इसलिए मुझे एक गाना गाने को कहते। आवाज अच्छी थी इसलिए मैंने गाना सीखने की बात सोची, पर गाना सीखना के लिए सचमुच क्या करना होगा यह जानने के लिए एक से पूछा।

उसने बताया, पहले पेटी (हारमोनियम) बजाना सीखिए इससे सुरों का ज्ञान होगा। कुछ लोगों के कहने पर कांदेवाडी गिरगाँव गया। केशव-जी नाईक चाल के पहले रास्ते पर एक बिल्डिंग है। नीचे मंदिर था, ऊपर 'महाराष्ट्र संगीत मंडल' का बोर्ड लगा था।

ऊपर गया। पाँच-छह विद्यार्थी बैठे थे। कुछ पेटी बजा रहे थे, कुछ तबले ठोंक रहे थे। मास्टरजी रास्ते की ओर की खिड़की के पास दीवार से टिककर सबकी ओर ध्यान दे रहे थे।

मैंने प्रणाम किया।

"बैठिए!" मास्टर बोले।

"पेटी सीखनी है।" मैं बोला।

"बहुत अच्छा! पाँच रुपये महीना। हफ्ते में तीन दिन।"

मैं राजी हो गया। परन्तु मास्टर ने शुरुआत में पन्द्रह रुपये लिये—इम फीस, प्रवेश फीस, अमुक फीस, ढमुक फीस।

दो महीने बीत गये। देस राग कुछ-कुछ आने लगा था। एक दिन मास्टर बोले, "घर पर प्रेक्टिस करते हैं या नहीं?"

"घर में कैसे करूँगा? पेटी कहाँ है?" मैंने कहा।

"फिर एक पेटी ले लीजिए, इसके बिना शिक्षा नहीं हो सकती।"

अब हो गयी न दिक्कत! फिर इधर-उधर से पैसे जमा कर मास्टर से ही एक पेटी ले ली।

जिस दिन पेटी घर लायी गयी, उस दिन सारी चाल जमा हो गयी थी। जैसे किसी नयी-नवेली दुल्हन को देखने आयें, ठीक उसी तरह।

पति जैसे पत्नी से आग्रह करता है न, 'अपना नाम बता!' ठीक वैसे ही लोग मुझसे कहते, 'अरे, रामचन्द्रया, पेटी लाया है न? वाह! अब एक गाना गाओ भई!"

फिर मैंने जो कुछ सीखा था वह गा देता।

इस तरह दिन बीत रहे थे। पढ़ाई जारी थी। कोई आता तो पेटी वादन जोरों में चालू हो जाता। सभी चाहते हैं कि हम जो करते हैं उसकी प्रशंसा हो, तारीफ हो! वैसा ही मुझे भी लगा।

एक दिन मास्टर से पूछा, "आवाज कमाने की बात कहते हैं, वह किस तरह होगी?"

"भोर में उठना और खर्ज में गाना चाहिए। शाम को तार सप्तक

गाना चाहिए ।" मास्टर ने शिष्य को सलाह दी ।

बस, अब तक पेटी बजाने का कोई समय न था, अब मास्टर के कहे अनुसार सुबह उठना, मुह धोना, पेटी लेकर ऊपर चले जाना और बाज म गाने की शुरुआत करना। वैसे मेरे इस रियाज से किसी को तकलीफ न होती । मेरी तकलीफ मुझे ही होती । सा रे ग म प ध नी सां' इस तरह एक एक सुर लेकर गाता । पेट म ऐसा उबाल आता कि कुछ मत पूछो, पर वहा गायक बनना था न !

शाम का तारसप्तक का चिल्लाना, सारी चाल को मालूम हो गया । सुननेवाला पूछ बैठता, "क्या पेटी सीख रहे हो ?"

मैं गरदन हिलाता और छाती अनायास ही फूल जाती ।

हमारे पडोस का कमरा भागूआक्का का था । सुबह घर के लोगो का खाना पकाकर वह दोपहर मे काम पर (बतन मांजने) निकल जाती। सारे काम निबटाकर चार साढे चार बजे घर लौटती । वही शाम का समय मेरे रियाज का समय होता । प्रारम्भ म उसने मेरी मां स बडी उत्सुकता से पूछा था, "गोदे, तेरा बेटा पेटी सीख रहा है ? बहन, तेरा रामचन्द्रमा वैसे बडा होशियार है !'

पर धीरे धीरे मेरे गाने का समय और उसके सोने का समय एक होने के कारण उसकी नीद खराब होने लगी । उसे दोपहर को जागना पडता । तब वह एक दिन चिढकर मां से बोली 'ऐ गोदे अपने बेटे का चीखना बन्द करा, भई ! बाहर स थके मांदे घर आयें, तो यहां यह झझट !'

परन्तु मेरा रियाज चलता रहा । भागूआक्का मेरे नाम से रोती रहती ।

एक दिन पुणे से मेरी मौसेरी बहन कौशल्या और उसका पति हमारे घर आये । उसे बाल बच्चा नही था, इसलिए डा० अजनाबाई मगर (हमारी जाति की) से दवाई लेने आयी । उन्होने उसे बीस दिन बम्बई म रहने की सलाह दी । तब उन दोनो ने हमारे घर का मुकाम बढा दिया । परन्तु बहन को पेटी बजाकर दिखाने का मौका हाथ न लगता । सुबह गाता, तब

वह सोयी होती और शाम को डॉक्टर के पास ।

पर एक बार अवसर मिला।

मैं घर आया। देखता हूँ तो कौशल्या घर में थी।

माँ पड़ोस में गयी थी। घर पर कोई नहीं था।

मैं पेटी उठा लाया।

"काहे का खाना है ?" उसने पूछा।

'अरी यह बजाने की पेटी है।" कहकर मैंने पेटी जमीन पर रख दी। ठीक से पालथी मारकर बैठा। पेटी को खोला। देस राग की शुरुआत की।

अब तक मैं ठीक से पेटी न बजा पाता था। बजाते समय इधर-उधर देखा कि अँगुलियाँ गलत हो जाती। गाने की शुरुआत हुई और उधर से 'हिहऽ हिहऽ हिहऽ' आवाज आ रही थी। मैंने कौशी की ओर देखा। वह दोनों हाथ एक दूसरे में उलझाए 'हिहऽ हिहऽ हिहऽ' कर रही थी।

"क्यों कौशी ?" मैंने पेटी बन्द करके उससे पूछा।

'बऽजाऽव !" उसने 'हिहऽ हिहऽ हिहऽ' करते हुए हुक्म दिया।

मैंने पेटी बजानी शुरू की। मन घबराया। क्योंकि 'हिहऽ हिहऽ' आवाज जोर से आ रही थी। मैंने माँ को पुकारा। पुकारते समय पेटी बन्द हो गयी। फिर आवाज आयी, "बऽ जाऽ आ !' मैंने फिर पेटी बजानी शुरू कर दी।

माँ नहीं आ रही थी। जी किया, पेटी छोड़कर भाग जाऊँ। तब तक कौशी खड़ी होकर नाचने लग गयी थी। मैं फिर जोर से चिल्लाया, "माँ आऽ ! आ जल्दी !"

पेटी बन्द होते ही, फिर आदेश हुआ, 'बऽ जाऽ ओ !"

मुझे फिर पेटी बजानी पड़ी। माँ दौड़ती आयी। पूरा मोहल्ला लेकर आ गयी। मेरी पेटी बज रही थी और कौशल्या 'हिहऽ हिहऽ हिहऽ' करते नाच रही थी।

माँ ने आगे बढ़कर गाली दी, 'मुआ, पेटी क्यों बजायी ? इसके शरीर में कालवाई संचार करती है। कुछ भी बजाया कि इसके भीतर उसका संचार होता है।"

माँ के इतना कहने पर मैंने पेटी बन्द की। आदेश हुआ, "बऽ जाऽ ओ! हिहऽऽ हिहऽऽ हिहऽऽ!"

"अब, मुए, शरीर से सचार उतरने तक बजाते रहो।"

माँ ने कहा। उसने एक को नारियल-नीबू लाने भेजा। मेरा बजाना चालू था।

नारियल, नीबू गुलाल आया। कालूबाई के सामने रखा गया।

"बाई, क्यो आयी तू?" माँ न प्रश्न किया।

उत्तर की प्रतीक्षा मे मैं रुका था। फिर पेटी बन्द हो गयी।

'बऽ जाऽ ओ! हिहऽ हिहऽ हिहऽ! दो वर्ष हो गये। मेले म कोई नहीं आया। हिहऽ हिहऽ हिहऽ!" कालूबाई बोलने लगी।

"माँ, दाजी को बुला लाऊँ?" मैंने माँ को रास्ता सुझाया। पेटी बन्द की।

'बऽ जाऽ ओ! हिहऽ हिहऽ हिहऽ!"

"मुए, तू मत जा। तू अपना बजाता रह।" माँ ने कहा और एक को दाजीबा को बुलवाने भेज दिया। फिर दाजी आये। माने गुनाह कुबूल किये, "अब मेले म आऊँगा,' कुबूल किया और तब कालूबाई ने जमीन पर शरीर डाल दिया। जब 'हिऽह हिऽह' की आवाज बन्द हो गयी, तब कहीं जाकर मेरी पेटी की आवाज भी बन्द हुई।

बाद मे कौशल्या महीना भर रही, पर एक बार मैंने जो पेटी रख दी तो उसे छूने का तो सवाल ही नहीं उठता था, सोचने का भी साहस नहीं किया।

जनता कलापथक के कारण राष्ट्र सेवा दल के कलापथक से सपर्क हुआ। पुणे के पास मोहमेंहवाडी म सेवा दल के सेवापथक का श्रमदान का कार्यक्रम था। रास्ता तैयार करना था। हम चार पाँच लोगो ने जाना तय किया।

मेरी ससुराल पुणे की थी। ऐसे मे यह सोचकर कि 'चलो एकाध चक्कर मार कर आया जाये' निकला।

ससुराल होकर श्रमदान के स्थान पर जाने की बात तय करके मैं पुणे के लिए निकला । शाम को पौने दस की गाडी पकडी और साढे दस बजे पुणे पहुँचा । सच देखा जाये तो इस गाडी मे नही आना चाहिए था । पुणे की जानकारी नही थी । एक बार बाप के साथ आया था—लडकी देखने, उसके बाद अब आया । वैसे, ससुरालवाले बुला रहे थे, परन्तु सम्भव नही हुआ, इसलिए नही गया ।

स्टेशन पर उतरा, बाहर आया । बाहर ताँगेवाले पैसेंजर की राह देख रहे थे । (उस समय आटो रिक्शा नही थे, साइकिल रिक्शा थे) ।

मुझे देखकर एक ताँगेवाला बोला, 'क्यो जी, कहा जाना है ?"

"गणेश पेठ, पागुल लेन, डुल्या मारुति के पास वह गली है न ? वहा । मैं अनजान सा लग रहा था । उसने इस बात का लाभ उठाया ।

"हमारा, गणेश पेठ ? काफी दूर है वह तो !"

"कितने पैसे लगेंगे ?"

'ढाई रुपये लगेंगे ।"

मुझे यह किराया ठीक नही लगा । पर जाना था, इसलिए दूसरे ताँग-वाले से पूछनेवाला था, इतने मे पहला उसे चिल्लाकर बोला, "इनको गणेश पेठ जाना है रे sss !"

शायद वह उसका इशारा था या उसे सकेत करना था कि दूसरा ताँगेवाला बोला, ' इतनी दूर ? देखिए, वापसी का भाडा भी देना होगा ।'

मैंने दो चार ताँगेवालो से पूछा, पर सब एक-दूसरे के चट्टे-बट्टे । किसी तरह दो रुपये में तय हो गया । मैं ताँगे मे बैठा फिर भी उसने और दो पैसेंजर ले ही लिये ।

ताँगा चला । सगम पुल कोर्ट की फेरी मारकर नये पुल के पास आया । वहाँ एक उतर गया । फिर ताँगा चलने लगा । नया पुल शनिवार वाडा, सीटी पोस्ट । वहाँ एक उतरा । अब मैं अकेला ही बचा था । ताँगे पर बैठे बैठे आसपास देख रहा था । मेरे लिए सब नया था । उत्सुक नजरो से सब देख रहा था । किसी तरह पाँगुल लेन आयी और मैं उतरा । पैसे दिये और आसपास पूछने लगा कि 'कदम का मकान कौन-सा है ?'

पूछते पाछते मैं घर पहुँचा । घर मे सब लोग, अर्थात ससुर, [illegible]

पत्नी, चचेरा साला राह देख रहे थे।

मैं पुणे आनेवाला हूँ, यह संदेशा पिताजी ने भेजा था, ऐसा वे बता रहे थे। वे मुझे लेने स्टेशन भी गये थे, परन्तु हमारी मुलाकात नहीं हो पायी। मुझे देखते ही सब प्रसन्न हो गये। इधर-उधर की, हवा-पानी की पूछताछ हुई। खाना-पीना हुआ और मैं साले के साथ दारुवाला पुल की दूकान में सोने के लिए गया।

सुबह स्नान, चायपान के बाद साले के साथ घूमने निकला। घूमते घूमते मैंने पूछा, "हमारा बौधुल का बाबूशा यहाँ कहाँ काम करता है।"

"वह क्या? ससून हास्पिटल के सामने के दूकान में। मिलना है क्या?'

'काफी दूर होगा?' मैंने अन्दाज बाँधते कहा।

'वैसे ज्यादा दूर नहीं है, चलिए, घूमते घूमते चले चलेंगे।'

हम घूमते फिरते निकल पड़े। रास्ता पेठ पावर हाउस से ससून हॉस्पिटल की ओर आये। मथुरा भुवन के नीचे वाले सैलून में बाबूशा काम करता था। हमारी मुलाकात हुई। चाय पीने के लिए ईरानी के होटल में गये।

सामने स्टेशन देखकर मैंने साले से पूछा, 'य कौन सा स्टेशन है?"

साले ने मेरा चेहरा निहारते हुए पूछा, 'क्या मतलब? अहो, य पुणे स्टेशन है।"

मैं मुँह फाड़कर देखता रहा, पर रात में ताँगेवाले ने कैसी टाँग मारी, यह साले को और बाबूशा को नहीं बताया।

साले से पूछताछ करके मैं मोहम्मदवाडी जाने के लिए निकला। बस पकड़ी। शिंदे का छाता वाले स्टाप पर उतर गया। वहाँ भाई वैद्य पुणे के लड़कों का जत्था लेकर मोहम्मदवाडी की ओर जा रहे थे। मैं उनके साथ मोहम्मदवाडी पहुँच गया। नाना डेंगले, घुलिया व दशरथ पाटील---ये लोग श्रमदान शिविर के प्रमुख थे। श्रमदान शिविर पन्द्रह दिना का था। सुबह पाँच बजे उठना प्रातःकालीन कार्यक्रम से निवृत्त होकर साढ़े पाँच

बजे प्रार्थना-गीत। फिर मैदान पर कवायद। सात बजे गेहूँ का दलिया। फिर सब कतार में खड़े होकर हाथों में कुदाल, फावड़े घमेले लेकर गाते—

तुम्हारी मेहनत से, तुम्हारे पसीने से
मन काटेंगे हम सोने की फ़सल!

यह गाना गाते हुए हम जो रास्ता तैयार करना था, वहाँ पहुँचना, ग्यारह तक श्रमदान का काम करना, फिर उसी तरह गाना गाते हुए लौटना। फिर स्नान, कपड़े धोना आदि। दोपहर साढ़े बारह से डेढ़ तक भोजन। (इस भोजन में भात न होता। भात सिर्फ बीमार आदमी को मिलता।) दो से चार आराम। चार से छह श्रमदान। छह से सात वैचारिक चर्चा। सात से आठ आपसी गप्पें। आठ बजे भोजन। फिर मनोरंजन का कार्यक्रम। नौ के बाद सोना।

इन सारी बातों पर भाऊ साहब रानाडे की कड़ी नज़र होती। मेरे दो चार दिन तो मज़े से कट गये, सारे काम व्यवस्थित रूप से किये पर आगे कठिन होता गया। हाथों में छाले पड़ गये। सुबह साढ़े पाँच बजे उठना। अरे भगवान, उसमें भी चाय बटर नहीं! भात नहीं। अपने कपड़े धोना। क्या होगा? मैं सोचने लगा।

फिर मैं झूठ मूठ बीमार पड़ गया। अब मेरा लाड़ शुरू हुआ। चाय, भात। श्रमदान से छुट्टी। कपड़े धोने की झंझट नहीं। परन्तु ढोंग में भी सौ आदमी लग आ जाता है।

मुझे शिविर-प्रमुख ने पकड़ ही लिया। मैंने सारा कबूल किया। "मुझे घर जाने की अनुमति दीजिए।" मैंने प्रार्थना की।

मेरा झुकाव देखकर मुझे मेरी पसन्द का काम दिया गया। रोज़ के पत्र पुणे ले जाकर पोस्ट में डालना, वहाँ से पत्र ले आना। ये सारे काम साइकिल से।

इस शिविर के लिए पूरे महाराष्ट्र से चार पाँच सौ लड़के लड़कियाँ आये थे। वे भी सारे पढ़े लिखे थे या पढ़ रहे थे। मैं तो गड़गड़ा गया। सच तो यह था कि उनमें से कुछ लड़के लड़कियाँ धनी घरों के भी थे। वे काम कर रहे थे। अनुशासन-बद्ध व्यवहार करते। जो मिलता, उसे

सो पचा रहे थे और एक मैं था, जो झूठ के सहारे चल रहा था।

इसी शिविर में बम्बई के गिरगाँव ग्रुप (सेवा दल) से पहचान हुई। "अब सेवा दल में आइए।" कहने लगे। श्री पुंडलिक नाईक और श्री चन्द्रकान्त कायतकर निकट के मित्र बन गए। बाद में भी आगे कितने ही कामों में सहायक बने।

अंतिम दिन कैंप फायर का कार्यक्रम हुआ। मैंने और राउरी के होशीनाथ लोहार ने मनोरंजनात्मक कार्यक्रम दिए। मैंने गाने गाए। उन दिनों 'बना महार पंढरीनाथ' गाना मशहूर था। वह मैंने गाया। इस गाने का आखिरी पद 'शाह डाले मुँह में उँगली' इस तरह था।

इस कैंप फायर में कवि वसंत बापट, लीलाधर हेगडे, मधु कदम, सुधा वर्दे आदि भी, सेवा दल के कलापथक के प्रमुख लोग, आए थे।

लीलाधर मुझसे मिले। कहाँ, क्या करता हूँ—इसकी पूछताछ की। पता लिख लिया।

अब मन में विचार आता है, कि उस कैंप से मैंने भाग जाने की सोची थी। समझिए, चुपचाप भाग गया होता तो ?

उनका कोई नुकसान न होता, पर मेरा कितना नुकसान होता!

पुराने लोग बड़ी शान से बताते हैं कि दो बच्चे होने तक वे पत्नी से बात न करते थे।

बस हमारे साथ ऐसा कुछ नहीं हुआ। मैं बीच-बीच में पत्नी से बोलने का चांस लेता, पर माँ या बहन नहीं तो पड़ोसिनें, बीच में टपक पड़तीं।

वैसे घर में भला कितना समय मिलता ? सुबह सात बजे ड्यूटी पर, दो बजे वापस। भोजन थोड़ी झपकी (गैलरी में) पाँच बजे दुकान में, फिर कलापथक (बुलावा आता तो)। रात में भोजन। बिस्तर उठाया और चला दुकान के सामने फुटपाथ पर।

वैसे मेरी पत्नी को सतरहवाँ साल तो लगा ही होगा, अर्थात प्रौढ़, परन्तु आज की भाषा में हनीमून जाने का चांस न मिलता। मन में आता,

धीरे से पूछूँ, "ऐ, सिनेमा चलेगी ?" पर इतना पूछने की हिम्मत भी न होती।

माँ वैसे समझदार थी। मैं खाना खाने आता तो वह जान-बूझकर पड़ोस म बैठने चली जाती। जाते जाते कह जाती, "ऐ राधा, लड़के को परोस द।"

फिर घर मे, मैं और मेरी पत्नी। उनके मन मे क्या चल रहा होगा, मुझे मालूम न पड़ता, परन्तु मेरी छाती अनायास धड़कती रहती।

एक दिन थाली लेकर जब वह सामने आयी तो मैंने पूछा, "ऐ, सिनेमा चलेगी ?" वह तुरन्त एक चपाती परोस देती। "ऐ, घूमने चलेगी न ?" पूछने पर वह और कुछ परोस देती। सच तो यह था कि उसे मालूम था कि बाप ऐसा नहीं करने देगा। मान लीजिए, हम घूमने या सिनेमा देखने गये और बाप को मालूम हुआ, तो वह तुरन्त कहता, 'जा, जा, आज घूमने जा, कल सिनेमा देख! अरे भड़वे, ये बड़ो के चोचले हम नही पचेंगे! पहले पैसे कमाना सीख! फिर बीवी को सिर पर चढ़ा!'

परन्तु तकलीफ के प्रेम का सुख कुछ और ही होता है। कभी कभी भोजन के समय ऐसा चास मिलता। ऐसा लगता, जैसे मुह पर कोई मार-पन्न सहला रहा हो। बहुत मीठा मीठा लगता।

हमारे पड़ोस मे चिंगूआक्का रहती थी। सच तो यह था कि उसी के कारण हम अधिक करीब आ सके। मेरे पत्नी की ओर चिंगूआक्का की दोस्ती हो गयी। बस चिंगूआक्का कोई इक्कीसेक साल की रही होगी। अर्थात मेरी पत्नी से कुछ बड़ी थी। पर दोनो बराबरी मे रहते। अब दो जवान स्त्रियाँ इकट्ठी बैठी तो क्या बात करेंगी, इसका क्या अन्दाज किया जाय!

एक दिन चिंगूआक्का ने मुझे बुलाया। मैं गया।

'क्या री, चिंगूआक्का, क्या काम है ?" मैंने पूछा।

'अरे मुआ, घर मे जवान पत्नी और तू निश्चिन्त फुटपाथ पर सो— है ?"

चिंगूआक्का ने दुखती नस पर ही हाथ रख दिया।

क्या बोलें, कैसे बोलें, कुछ न सूझा। मैं सकपकाया।

"अरी, पर ।" बस, मेरे मुह से सिर्फ इतने ही शब्द निकले।

'ये देख, आज रात को एक बजे के बाद आ। मैंने तेरी बीवी को सब समझा दिया है।"

'अरी, पर मा है घर म। दरवाजा बन्द होगा। मैं कैसे आऊँगा ?"

"उस सबकी व्यवस्था हो जायेगी। तुम्हारे घर की थामी ओर खिड़की है न ? तेरी बीवी वह खिड़की खुली रखेगी। तुम खिड़की ढकेलकर सीधे भीतर घुस जाना, बस !"

चिगूआक्का के इतना बताते ही मेरे पैर हवा म तरने लगे।

सच तो यह था कि मैं कई दिना से इस बात की टोह म था। अन्तत चिगूआक्का के द्वारा वह मौका हाथ आया।

सच यह भी था कि मेरी पत्नी को ही इसके लिए पहल करनी पड़ी।

मैं पहल कैसे करता ? दस बाय बारह (10 × 12) का कमरा। हम चार भाई-बहन और माँ बाप। मैं और मेरा बाप दुकान के सामन सोते। फिर मैं कैसे पहल करता ? कर भी लेता, पर बाप की मुझ पर कड़ी निगाह रहती। लड़का कहाँ जाता है ध्यान रखता। फुटपाथ पर दुकान के कुछ लड़के भी सोते।

उस दिन चिगूआक्का न बताया, तो सिर चकराने लगा। कलेजे म कहीं भुरभुरी पैदा हो गयी। सारा दिन किसी अलग मूड मे बीता। मुझे कुछ न दिखता। दिखता भी तो बस, रात का समय और पत्नी द्वारा खुली छोड़ी गयी खिड़की। बस्स !

बस किसी न किसी बहाने मैं दिन म एकाध चक्कर घर का लगा ही लेता। लगा चिगूआक्का ने मजाक तो नहीं किया है ? पर नहीं। पत्नी भी मेरी ही तरह मूड म थी। उसके चेहरे पर भी कुछ और ही चमक थी।

उस दिन मेरी पत्नी मुझे कितनी सुन्दर लग रही थी, क्या बताऊँ ! रात को आठ साढे आठ बजे भोजन हुआ। मैं घर म ही इधर उधर व्यस्त रहने का नाटक करता रहा। बीच बीच मे मैं और पत्नी आपस मे आँखो स इशारे कर लेते। सचमुच आश्चर्य घट रहा था। नहीं तो मेरी

पत्नी आँखें न मिलाती। नजर गडाकर देखा नहीं कि वह लजाती, भागती। पर उस दिन हम आँखो से बतिया रहे थे। मैं घर मे सुस्ती बरत रहा हूँ, यह जानकर बाप चिल्लाया, "क्यो रे भडए, घर में बडा अच्छा लग रहा है! सोने के लिए जाना है कि नही? फिजूल म रात को मत जाग। भाग, नही तो सुबह उठने मे तकलीफ होगी।"

मैंने बिस्तर उठाया। जाते जाते पत्नी की ओर चोर-निगाहो से देखा। उसने भी आखो से कहा, 'आइए मैं इतजार करूँगी।' और मैं गुनगुनाते हुए नीचे उतरा।

जहाँ हम सोते थे, वहा दुकान के दूसरे लडके भी सोते थे। उनमे मेरे मित्र भी थे। लगा तो था कि किसी सिनेमा मे जाकर बैठ जायें, समय निकल जायेगा, पर बाप के कारण यह इरादा छोड दिया। बडी समस्या यह थी कि रात के एक बजे तक समय कहाँ काटा जाये? अच्छा, मैंने अपना यह राज अपने मित्रो को बताया नही था। चिगूआक्का, पत्नी और मुझ तक ही यह राज छिपा था।

सबके बिस्तर फुटपाथ पर लग गये। मेरा बिस्तर हमेशा की तरह बाप के पास था। बाप आया बिस्तर डाला। हम सब दोस्त आपस मे गप्पें मार रहे थे। साढे नौ दस बजे होगें। हम सबको जागता देख बाप चिल्लाया "क्यो रे लडको, सोना नही है? चलो!" सब पसर गये, पर एक करवट। फिर गप्पें चलने लगी। सच तो यह था कि सबको मैं ही बातो मे उलझाए रख रहा था, क्योकि मुझे एक बजे जाना था। हममे से कुछ लोगो को नीद ने दबोच लिया था, परन्तु मैं उस्ताद निकला! मैंने गप्पें जारी रखी। परन्तु बाप ने आखिरी हथियार चलाया, "भडवे, राम्या, सोता है कि नही!' मैंने तकिये पर सिर रख दिया। बाप को दमा था। सोते ही उबाल आता। ऐसे म गहरी नीद आने तक वो बैठकर ही सोता। मैंने तकिये पर सिर तो रख दिया, पर बाप कुछ ऐसे बैठा था कि उसकी आँखें सीधी मेरी आँखो तक पहुँचती। अब हो गयी न गडबड?

मैंने तकिये पर सिर टिकाया। आँखें खुली रखकर एक बजे वाले दृश्य के सपने मे खो गया। पहली मुलाकात! तब ऽऽ!

"भडवे, अभी तक जाग रहा है?" बाप फिर झल्लाया। मैंने आँखें

मूंद ली। फिर अपने सपना म रँग गया। सपनों म डूबा रँगा पता भी गया, पता ही न चला।

उन दिना दूध वाले रात को तीन बजे दूध लेकर आते। कांवर की आवाज आपको मालूम होगी ही! उस कांवर से 'का ऽऽ र या का ऽऽ र' की आवाज आती। जैसे वह आवाज मुझे चिढ़ा रही हो, 'क्या ऽऽ र क्या र ऽऽ भूल गया ?'

पट स उठ बैठा। आसपास देखा। सिर्फ दूधवाला जा रहा था। बाकी सब नि शब्द। बाप की ओर देखा। वह भी सो रहा था। उठा। बिस्तर वहीं रख छोड़ा। अपनी बिल्डिंग के पास आया। वह भी सब सुनसान। अर्थात मुझे आने म काफी देर हो गयी थी। पर भगवान के मन म कुछ अच्छी बात थी, इसलिए इस समय आया। हमारा घर दूसरी मंजिल पर। गलरी, घर क सामने, जहाँ भी जगह होती, लोग सोये थे। अँधेरा इतना कि आँखा म अँगुलियाँ ठूँस दी जायें, फिर भी कुछ न दिखे। पर मुझपर तो दूसरी ही 'धुन' सवार थी। वैसे ही आगे बढ़ा। रास्ता परिचित था, इसलिए अटकने का सवाल ही नहीं था। चोर कदमा स घर के पास आया।

उस मंजिल पर कुल चार कमरे। शुरू म दो, फिर जीने का रास्ता और फिर दो कमरे—हमारा और विठ्ठलआवा का। उसके सामने साथ अनिक नल और संडास। मैं घर के सामने पहुँच गया। स्नानगृह म एक भिट्टी प तेल का दीया जल रहा था। बतन माँजने की आवाज आ रही थी।

बम्बई म सामान्यतया लोग तीन साढ़े तीन बजे ही उठ जाते हैं। परन्तु मेरा ध्यान उधर नहीं था। मैंने सिर्फ इतना देखा कि कोई स्त्री बतन माँज रही है।

मैं तय की गयी खिड़की क पास आया। अब यह सारा खेल करते समय मुझे कितना सभलना पड़ा, यह सिर्फ मुझे ही मालूम। अपनी पोल न खुल जाये, इसके लिए यह सारी सावधानी थी।

मैंने खिड़की ढकेली, पर खुली नहीं। स्साला! भूल गयी शायद खिड़की खुली रखना को ? मन म शंका उठी। अब हो गयी न गड़बड़ ?

जोर से ढकेलूं और कोई उठ जाये तो ?

परन्तु मैं तो सुलग रहा था। लगा, 'और जोर लगाया जाय।' इसलिए जोर से धक्का दिया। खिडकी खटाक से खुल गयी। परन्तु स्नान-गृह की दीवार पर बतन जो रखे थे, उनसे टकरायी और सारे बतन धडाधड नीचे गिर गये। बतन नीचे गिरते ही सावजनिक नल से आवाज आयी, "कौन है ?"

स्साला! मा! मैं सिर पर पैर रखकर भागा। दो दो सीढियाँ एक साथ लाघते हुए नीचे उतरा और भागता रहा। बिल्डिंग के सामने के फुटपाथ से आवाज आयी, "कौन भागता है, साला ?"

मैं फिर भागने लगा। सीधे बिस्तर पर ही जाकर गिरा। छाती धडक रही थी। धीरे धीरे छाती की धडकन कम हुई। फिर मैं चुपचाप सो गया।

बाप की आवाज से नीद खुली। बाप सुबह के कामो से निबटकर झोला उठाये अपने धधे पर निकल रहा था।

"ऐ राम्या! ऐ राम्या, उठ! देख कितने बजे हैं!"

सुबह हो चुकी थी। मैं उठा। रात का किस्सा याद आया तो सारा शरीर थर्रा उठा। बिस्तर लपेटा। घर की ओर निकल पडा। बिस्तर घर मे रखा। पत्नी चूल्हे के सामने बैठी थी। उसने मेरी ओर देखा। मैंने उसकी ओर देखा। परन्तु उसकी आँखो म कुछ अलग ही भाव थे—सहमे-सहमे से।

मैं तैयार हो रहा था। वह आयी और तरकारी की थैली थाली मे उलटती हुई बोली, "रामचद्रया, कल से तू घर मे ही सोया कर, बेटा!"

मैं चकराया। रात की बात मा ने परख ली शायद ? "मां मैं समझा नही!" मैंने अनजान बनते हुए कहा।

"अरे, तुझे नही मालूम, रात को घर मे चोर आया था!"

'अँ!' मैं झूठा आश्चय व्यक्त करता हुआ बोला।

"हा, मै नल पर बतन माँज रही थी और भई, रात म खिडकी कैसे खुली रह गयी, पता नही। चोर ने खिडकी खोली, वह जाकर लगी बतनो पर। बस, आवाज आयी और मैं चिल्लायी, कौन है ?"

"आँ ऽ !"

"मैं जैसे ही चिल्लायी, वह चोर भाग गया बेटा !"

हमारा यह संवाद जब चल रहा था, तब पड़ौस की भागूआक्का आकर खड़ी हो गयी। वह बोली "मैं दरवाज़े के सामने सोयी थी। भागते समय उसका पैर मेरे बिस्तर पर पड़ा। मैंने फटाक से पकड़ लिया। पर मुझे झटका देकर भाग गया !"

"एक मैं रामचंद्रया, तू घर में ही सोया कर। नहीं तो, दरवाज़े के सामने सो। मैंने तेरे बाप को बता दिया है, घर में कोई मर्द होना ज़रूरी है।' माँ बोली थी।

"गोदे मुझे लगता है, वह चोर हमेशा आता होगा ! अरी, सुखाने को डाले कई कपड़े चोरी चले गये हैं !" भागूआक्का ने कहा।

यह सारा संवाद जब चल रहा था, तब मैं और मेरी पत्नी एक-दूसरे को देखकर हँस रहे थे। मेरे सामने रखी चाय ठंडी पड़ चुकी थी।

डाक विभाग में पैकर के रूप में पाँच साल तक काम किया। करेस्पाडेंस रजिस्ट्री, वी० पी० पी० विभागों में तबादले हुए। वैसे कह लीजिए मैं परमानेंट हो गया था।

नौकरी, नाइट स्कूल, कलापथक—इस तरह मेरे दिन बीत रहे थे। मैट्रिक तक पढ़ा, परन्तु पास नहीं हो सका। अरे, जहाँ दिन में पढ़ने वाले फेल होते हैं वहाँ मैं तो रात वाला था ! परन्तु पढ़ाई का लाभ हुआ। मैं पोस्टमैन की परीक्षा में बैठ सका।

पोस्टमैन की परीक्षा में पास हुआ और डिलिवरी विभाग में काम करने लगा। यह विभाग मेरा अपना घर लगता। मैं काम कर रहा हूँ, ऐसा कभी लगा ही नहीं।

हमारे डिलिवरी डिपार्टमेंट में सब पोस्टमैन ही थे। दो सौ तो होंगे ही। मनीआर्डर, वी० पी० पार्सलवाले—यह सब स्टाफ अलग होता। दिन में पत्रों की कुल चार बार डिलिवरी होती—दो सुबह और दो दोपहर में। एक पोस्टमैन के हिस्से दो डिलिवरी !

मरी ड्यूटी हमेशा सुबह की होती। सुबह की ड्यूटी मिले, इसके लिए कभी मीठा बोलकर, कभी मनोरजन करके, कभी चाय-पानी देकर और नही तो कभी दूकान ले जाकर मुफ्त म बाल काटकर—ड्यूटी सुबह की करवा लेता। इलाका पुराना सचिवालय। चलना अधिक पडता, पर काम कम।

पहली डिलिवरी साढे आठ की। हम मोटर से 'काला घोडा' मे उतरते। वहा स पुराना सचिवालय। मेरे साथ कुली होता। समय नौ-सवा नौ हुआ होगा। आफिस साढे दस के बाद। उनके बाक्स होते। उनमे पत्र डालने होते। डालने का काम कुली करता। उसने यदि 'ना' कही, तो उसे बदल दिया जाता। वेचारा 'ना' क्या कहता? बाकी का काम पाच दस मिनट म निबटा कि दूकान पहुँच जाता। घटा भर बैठकर पटठा पोस्ट आफिस की ओर रवाना होता। तब ग्यारह बजे होते। वहा ग्यारह साढे-ग्यारह बजे तक काम देखा कि डिलिवरी के लिए बाहर निकल पडता। आधा घटा इधर उधर। बारह बजे जोडीदार के आते ही उसके सारे पत्र दिये और पटठा मुक्त। एक बजे घर। ड्यूटी खत्म। समझिए, सात बजे ड्यूटी है तो यह पटठा साढे सात बजे तशरीफ लाता। ऊपरवाले चिल्लाते, 'क्यो रे मुए, कितने बजे? ये क्या आने का टाइम है?'

मैं तुरत ऐतिहासिक नाटक की तरह सजदा करके कहता, 'महा-राज, मुझे क्षमा करें, सवारी से लौटते समय देर हो गयी।"

"अरे मुए, यह क्या स्टेज है? क्या नाटक करता है! हमारे आफीसर कोकण के थे।

बम्बई म पुलिस विभाग और डाक विभाग मे सब कोकण के लोग। उन दिनो पुलिस को सखाराम' नाम से यू ही न पुकारा जाता! परन्तु ये कोकणी लोग ममतापूर्ण थे। उनकी भाषा भी उसी तरह की होती।

कप फायर के बाद लीलाधर हमडे, प्रा० वसत बापट के साथ मिलने जुलने लगा। इसका कारण था, डाक विभाग। इन सारे कामो के लिए जो समय चाहिए, वह डाक विभाग न दिया। कार्यक्रम होता कि वहाँ पहुँच

अगर छुट्टी न मिलती, तो सीधे डॉक्टर को पकडता। पाँच दस रुपये म फिट अनफिट का सर्टिफिकेट तैयार !

मैं हमेशा ही छुट्टी पर होता, ऐसे मे कुछ पोस्टमैन शिकायत करते, "अहो साहब, हम छुट्टी मांगते हैं तो कहते हैं 'देखूगा' फिर उसे कैसे छोडते हैं ?"

"अरे मुए, उसे कहा नौकरी की परवाह है ? उसकी दुकानें हैं। तेरा वसा नही है। मुए, नौकरी गयी तो भूखो मर जायेगा !"

वैसे सारा डिपार्टमेंट मुझ पर खुश रहता। हर साल सत्यनारायण की पूजा म हमारा कार्यक्रम विशेष रूप से होता। जनता कलापथक का इतना ही काम। अग्रणी लोकगीतकार लीलाधर हेगडे, नीलू फुले, दादा कोडके जैसे लोग वहाँ नाच चुके हैं।

कार्यक्रम अच्छा होने पर, साल भर अपने बाप का राज्य। कॅम काम पर होते समय भी हँसी मज़ाक चलता रहता। पर कभी कभी हमारा ही मज़ाक हमारे लिए आफत बन जाता।

एक बार ऐसा हुआ कि हमेशा की तरह सात बजे वाला ड्यूटी पर साढे सात बजे पहुँचा। लाइन के पत्रो की सार्टिंग हो चुकी थी। आठ बजे हमारा ग्रुप चाय पान को निकलता। चाय पान हुआ। हमेशा की तरह इधर उधर चक्कर लगाया। बात यह थी कि मैं टाइम पास कर रहा होता।

उस दिन कोई बडा आदमी जी० पी० ओ० का दौरा करने वाला था। इसलिए पोस्ट आफिस हमेशा स ज्यादा चमक रहा था। जिस कोने को हमने पचापच थूककर लाल कर दिया था, वह भी धो पोछकर साफ कर दिया गया था। मैं थूकने गया तो बिलकुल साफ ! वहा फूलो के गमले लगे थे। हम सब देख रहे थे। देख-देखकर हँसी उडा रहे थे। जी० पी० ओ० (बबई) मे एक गोल राउड है। वहाँ टिकट बिकते ह। उस दिन किसी नये टिकट की बिक्री शुरू होनेवाली थी। इसलिए नया स्टैम्प लेने के लिए काफी लम्बी लाइन लगी थी। उसी लाइन म एक मोटा आदमी खडा था। चूडीदार पाजामा शेरवानी पहने सिर पर टोपी लगाये।

पोस्ट आफिस मे चल रही सफाई पर हम आपस मे हँसी मज़ाक कर रहे थे। शायद उस मोटे आदमी ने सुन लिया होगा। उसन हिन्दी मे

पूछा, "क्या भाई, आज सफाई चल रही है, कोई खास बात है ?"

"अजी, कोई मन्त्री सन्त्री आ रहा है, उसको खुश करना है, मस्का पालिश और क्या ?" हमेशा की तरह मैंने बीच में कूदकर शान से कह डाला।

नौ बजे। डाक विभाग के सभी अधिकारी स्वागत के लिए हाजिर थे। ठीक समय पर मन्त्री की गाड़ी आयी। सब तैयार हुए। गाड़ी से मन्त्री का पी० ए० उतरा। गाड़ी में दूसरा कोई नहीं था।

पोस्ट मास्टर जनरल ने आगे बढ़कर अंग्रेजी में पूछा, "मन्त्री महोदय किधर हैं ?"

"वे तो सुबह साढ़े सात बजे ही इधर आ गये !" पी० ए० ने उत्तर दिया।

बस, फिर क्या था सब मन्त्री महोदय को ढूढ़ने दौड़े। देखा तो साहब टिकट की लाइन में !

सब पास गये, परन्तु मन्त्री महोदय लाइन छोड़ने को तैयार न थे। जब नम्बर आया, तभी टिकट लिया। फिर पोस्ट आफिस का निरीक्षण करने निकले।

घूमते घूमते हमारे डिपार्टमेंट में आये। सब खड़े हुए। उनके जाने का रास्ता, जहाँ मैं था वहीं से था। सबका सलाम लेते-लेते मन्त्री महोदय, जहाँ मैं खड़ा था वहाँ आये। मैंने भी झुककर नमस्कार किया। लाचार होकर उनकी ओर हँसकर देखा और भीतर तक दहल गया।

मैंने मजाक में जिसे जवाब दिया था, वही आदमी मन्त्री था !

मेरी ओर देखकर मन्त्री महोदय केवल हँसे। परन्तु वह हँसना मुझे चिढ़ाने जैसा था। बाद में उनका नाम मालूम हुआ वे थे—रफी अहमद किदवई ! अचानक बड़ों को ठिकाने लगानेवाला मन्त्री !

इस मन्त्री ने मेरे मित्र राजा तावड़े को ऐसा ठिकाने लगाया, जिसका जवाब नहीं। उसकी दादागीरी के कारण उसका तबादला मेलगाड़ी पर कर दिया गया। डाक विभाग की लाल मोटरें घूमती हैं न, उन्हीं पर गार्ड के रूप

मे । बबई की डाक के पत्र पासल लाने ले जानेवाली इस मोटर के कुछ निश्चित रूट हुआ करते थे । इसी प्रकार एक रूट था, जी० पी० ओ० से पत्र पासल लेकर सातात्रूज हवाई अडडे के पोस्ट आफिस मे ले जाना और आते समय वहा स विमान से आये थैले ले आना।

तावडे इस रूट पर था । वह सातात्रूज हवाई अडडे के डाक के थैले ले गया । विमान कुछ देर से आनेवाला था । इसलिए ये पटठा कुर्सी पर बैठ गया । पैर टेबल पर । हाथ मे जलती सिगरेट । आराम से पसरे पडे थे ।

इतने मे चूडीदार पाजामा, शेरवानी और गाधी कैप पहने एक मोटा आदमी पोस्ट आफिस मे आया । वह इस तरह आया, फिर भी तावडे की शान म कोई अतर नही आया । तावडे तैश मे आकर पूछता क्या है, "यस, व्हाट यू वाट ?"

"आई वाट इनचाज ऑफ दिस डिपाटमट ।"

"[illegible] आर यू ?" तावडे सिगरेट का धुआं छोडता बोला ।

"सर, आई एम रफी अहमद किदवई, मिनिस्टर ।"

इस नाम को सुनते ही तावडे कुर्सी समेत नीचे गिर पडा ।

अमुक-अमुक पते पर आइये, ऐसा लीलाधर हेगडे का पत्र आया । मुझे बेहद खुशी हुई, क्योकि अब मुझे बडे लोगो के बीच मौका मिलने वाला था ।

जनता कलापथक (गिरगाँव) म मैं काम करता था । उन्होने 'लोक-राज्य' और 'नारद मुनि की फेरी' नाटक तैयार किये थ । 'लोकराज्य' के बीस पच्चीस मचन हो चुके थे और 'नारदमुनि की फेरी' स्वर्गीय शाता-राम पाटील लिखित एक प्रसिद्ध लोकनाट्य था । मचन भी काफी हुए थे ।

आज जिस प्रकार थियटर मे लोकनाट्य खेला जाता है इस तरह उस जमाने मे न होता । उन दिना रास्ता पर, गलिया म, गणेशात्सव म, सत्यनारायण की पूजा म य नाटक खेले जाते थे । वैसे कायक्रम प्रचारात्मक ही होत ।

यह न भजन में था, तब लगता था कि स्टेज पर होना चाहिए और वह भी गणेशोत्सव में। यह इच्छा जनता कलापथक ने पूरी की। गिरगाँव इलाके में नाचने का मौका मिला। दादावाडी, हमराजवाडी, फणसवाडी, झावबा की वाडी, टोपीवाला लेन में गणेशोत्सव के कार्यक्रम हुए। परन्तु, लालबाग दादर आदि इलाकों में नाचने का मौका कब मिलेगा, यह बात मन में बनी रहती।

लीलाधर के पत्र के कारण जी की कली खिल उठी। मैं दूल्हे सा सज-सँवरकर न्नाग मिलने गया। बापट के घर (न्नार में) लीलाधर हेगडे, सदानंद वर्दे, सुधा वर्दे, प्रमिला दंडवते आदि की मंडली जमी हुई थी। मैं गुमसुम-सा था। सब मुझे नीचे-ऊपर तक निहारते और मैं सबको देखता। मेरी ओर देखने का एक कारण भी था।

तेल लगाकर बाल बनाये हुए, कान में इत्र का फाहा, आँखों में काजल, इस्त्री किये कपड़े! पान चबाकर लाल लाल किये होंठ! मेरा यह रूप देखकर सुधाताई लीलाधर के कान में फुसफुसायी, 'लीलू, ये बंगला कहाँ से उठा लाये?"

सब हँस पड़े। मन में आया चुपचाप भाग जाऊँ। हमारी इनकी जमती नहीं। पर रुका। डरूँ तो क्या कहते हैं!

वसंत बापट का नाटक 'माटी के पुतले' तैयार किया गया। इसमें मुझे डाकू की भूमिका दी गयी थी। शुरू का एक गाना गोआ की स्वतंत्रता पर था— 'डंडी गिरी नौबत झडी, गूँज उठा आसमान!' इस गाने पर मैं तालियाँ लूट लेता।

पहला कार्यक्रम पोद्दार कॉलिज के रंगमंच पर खेला गया। कार्यक्रम के लिए नवाल्ल प्रेमी मंडली थी। ऐसे में कितनी भीड़ हुई होगी, बताने की आवश्यकता नहीं है।

कार्यक्रम खूब जमा। लीलाधर, मधु कदम, ज० म० आठवले, सदानंद वर्दे, सुधा वर्दे, प्रमिला दंडवते — ये सारे लोग काम कर रहे थे। कार्यक्रम की समाप्ति के बाद काफी लोग मेकअप रूम में कलाकारों को बधाइयाँ देने पहुँचे। मैं न ही कभी शाखा में गया और न ही कभी चर्चाओं में भाग लिया, ऐसे में मुझे कौन देखता! वैसे मैंने काम अच्छा किया

था। परन्तु डाकू की मेरी भूमिका देखकर कुछ लोग कहने लगे थे, "डाकू की भूमिका के लिए वापट कहीं सचमुच का डाकू तो नहीं पकड लाये ?"

ऐसा कहने मे उनकी कोई गलती नही थी। मेरा चेहरा ही इस तरह का है। मेरा चेहरा ऐसा है कि हाथ-भट्टी वाले को लगे कि पुलिस है और पुलिस को लगे कि हाथ भट्टी वाला है।

गोआ की हमारी ट्रिप मे बिलकुल यही हुआ।

हम पाच-छह मित्र मिलकर गोआ गये। ट्रिप के लिए ही गये थे। दो चार दिन मजे से बिताने का उद्देश्य था। सेवादल के काम से दो चार बार गोआ जाने के कारण वहां की थोडी बहुत जानकारी थी।

तीन दिन हम गोआ मे रहे। वापसी मे सबने सूखी मछलियाँ, सूखे बागड (समुद्री मछली) और सस्ती होने के कारण दारू की बोतलें खरीद ली। कोई क्वाटर, कोई एक, कोई दो कोई छह बोतलें तक लिये था। मैंने भी घर पर दवाई के लिए एक क्वाटर खरीदा।

वतीम बस से आया। फोंडा घाट मे चेकिंग होने वाली थी इसलिए बोतल या बोतलें छिपाने की सबने बहुत कोशिश की। युक्तियां खोजी जाने लगी। किसी ने बोतलें छाती से बाध ली किसी ने पैरों मे। जिसके पास छह बोतलें थी, उसने नीचे सूखी मछलिया फैलायी और उस पर दो बोतलें रखी। फिर उन पर बागडे (समुद्री मछलियाँ) फैलाये। उस पर और दो बोतलें, उस पर और सूखी मछलिया। इसी तरह वे छिपाते रहे। जो भी हो रहा था, इसके लिए सब अपने आपको सतुष्ट कर रहे थे— हम क्या हमेशा इस तरह लाते ले जाते है?' लोग बोरो मे भरकर ले जाते हैं। हमने तो कुछ ही बोतल ली हैं। अलावा इसके 'हम सेवा दल मे हैं।' वगैरह वगैरह।

वतीम से गाडी चली। रात भर जागते रहे। ठडी हवा चल रही थी। अब नीद के लिए कोई बाधा नही थी। पर मन इतना घबराया हुआ था कि किसी भी स्थिति मे नीद न आती। मन मे लगता रहा कि हमने यह

जो किया है यह ठीक नही है । मान लीजिए, हमरा पुलिस न पकड लिया तो ?

छि छि । मन चुपचाप बैठने न देता । अततः मैंने चलती बस से चोतल फेंक दी तब कही जाकर राहत मिली ।

नीद कब लगी, पता ही नही चला । नीद खुली तब पुलिस वाला ही जगा रहा था, ओ मिस्टर उठिए । नीद का ढोग अब बस कीजिए ।"

पुलिस ने मेरी कसकर खबर ली । वैसे उसे मिला कुछ नही । पहले ही शीशी फेंक देने के लिए मैंने मन ही-मन खुद को धन्यवाद दिया । परन्तु इतने पर भी यह आफत टलने वाली नही थी ।

आँखें मलता मैं बस से नीचे उतरा और सामने के होटल की ओर बढा ।

वहाँ हमारी गग चाय पीते हुए गप्पें हाँक रही थी और जिस पुलिस वाले ने मेरी झडती ली थी वह उन्ही के साथ बैठकर चाय पी रहा था ।

मेरा चेहरा पिटा हुआ था ।

मैं जिस कलापथक म काम कर रहा था वह राष्ट्र सवादल का प्रान्तीय मुख्य कलापथक था । वैसे सारे महाराष्ट्र म सवादल क कलापथक हैं । बम्बई म सिर्फ गिरगाँव शिवडी करली बाद्रा गोरेगाँव इलाको म कला पथक थे । मुझे सीधे मुख्य कलापथक म स्थान मिला । कलापथक का दौरा पुणे नासिक कोपरगाँव श्रीरामपुर नगर आदि की ओर निकला । परन्तु मुझे इस दौरे म कोई खास नही मिला । तब मैं कुछ शकित हुआ । शायद मेरा पत्ता कट गया । पर जब लीलाधर की ओर स फिर बुलावा आया तब अच्छा लगा ।

माटी क पुतले' नामक लोकनाटक के बाद सवादल ने व्यकटेश माल गूलकर लिखित बिन बीज के पेड लोकनाटक लिया । उसका मचन खूब जमकर हुआ ।

यह लोकनाटक पुणे के कलापथक न बैठाया था । वह ग्रुप नीलू फूले के पास था । परन्तु उस लोकनाटक का प्रचार नही था । एम म मुख्य

कलापथक में इसे मंचित करें या नहीं, इस पर विवाद खड़ा हो गया था। परन्तु, मनोरंजन से भरपूर लोकनाट्य मंचित करने में क्या कठिनाई ? अंतत: वह लोकनाट्य रंगमंच पर लाया गया।

इसमें एक सिपाही का छोटा सा काम मुझे भी मिला था। पहले दौर में मुझे फिर टाल दिया गया। परन्तु, गणेशोत्सव में लीलाधर जब छोटा यूनिट लेकर शक्कर कारखाने की ओर निकले तब उन्होंने मुझे चांस दिया। लोकनाटक वही था, परन्तु मेरे काम में परिवर्तन हो गया। मुझे कुछ अधिक काम मिला। भीतरी कला दिखाने का अवसर मिला।

उसके बाद मैं फिट बैठ गया। सारे कार्यक्रमों में बुलावा आने लगा। मैं भी जाने लगा। उनके घर आने-जाने लगा। बसन्त बापट, वर्दे, हेगड़े के घर भी जाने लगा। उनके घर का वातावरण देखने लगा। यह सब देखकर मन में आया 'ये लोग कितने ढंग से रहते हैं, ठीक से व्यवहार करते हैं, पति पत्नी मजे में घूमते हैं। फिर हम ऐसा क्यों नहीं कर सकते ?'

बस तय कर लिया कि अपनी पत्नी को भी आधुनिक बनाएँगे, साथ में घुमाएँगे।

एक बार सुधाताई बोली, "आपके घर में कौन कौन है ?"

मैंने सारा कुछ बता दिया। वे बोलती क्या हैं, 'अपनी मिसेज को एक बार लाइए न।"

तभी मेरी पत्नी मेरी आँखों के सामने खड़ी हो गयी। इनका रहन-सहन, उसका रहन सहन, इनका व्यवहार, उसका व्यवहार ! हमने जिसके सामने साक्षी की बात की, वह सब खुल जायेगी, इसलिए 'हाँ, हाँ लाऊँगा' कहकर टाल दिया।

नौ गजी साड़ी, माथे पर आड़ा सिन्दूर, नाक में नथ—ऐसी स्त्री को इन लोगों के सामने लाऊँ ? पर हम इनकी तरह क्यों नहीं रह सकते ? बस, पत्नी को सुधारना चाहिए। उसे चोटी बनाने को कहना चाहिए, पाँच गजी साड़ी पहननी चाहिए कन्धे पर आँचल रखने को कहना चाहिए, साथ में घूमने ले जाना चाहिए— ये सारी बातें मन में आयीं। पर बाप क्या कहेगा ! यह विचार मन में आते ही मन-ही-मन बनायी कुतुब मीनार टूटकर बिखर गयी।

मन फिर उठ खड़ा हुआ। किसी न किसी निमित्त उसे चार लोगों में घुमाना चाहिए। दुनिया कैसी है कैसे रहती है कैसा व्यवहार करती है, यह सब दिखाना चाहिए। मन में ये बातें घूमती रहीं। आखिर एक बार मैंने उससे कहा, 'अरी ओ, चलो सिनेमा चलें! बुड्ढा-बुढ़िया बाहर गये हैं। अच्छा चांस मिला है!'

'मैं तो चलूंगी, पर माँ जी नाराज हुई तो?'

'वह मुझ पर छोड़ दे, पर कौन सा सिनेमा देखेंगे?"

'अच्छा-सा देवी देवता का!"

'देवी देवता का सिनेमा अपने बाप के साथ देख! अरी पगली, पति पत्नी को क्या ऐसा सिनेमा देखना चाहिए?

'फिर आप ही बताइए!'

'हम इंग्लिश सिनेमा चलेंगे।'

'ना बाबा! मुझे कहां समझ आती है, इंग्लिश फिंग्लिश!'

'और मेरी समझ में भी कहां आती है?"

'फिर मजा आता?'

'अरी उसमें चित्र बड़े अच्छे होते हैं और चटपटे भी।'

सिनेमा जाने की हमारी तैयारी पूरी हुई। मैंने अच्छी सी ड्रेस पहनी। परन्तु वह तो गजी साड़ी, ब्लाऊज, माथे पर आड़ा सिंदूर—इस तरह सजी। ऐसी स्त्री मेरे साथ सिनेमा में पहुँचेगी तो कितनी मजेदार दिखेगी! वैसे मैंने उसे बतलाया। तब वह कहने लगी कि 'इसमें कैसा गंवारपन?'

सिनेमा जाने की तैयारी पूरी हुई। पत्नी ने बताया, 'आप गली के नाके पर खड़े रहिए। मैं पीछे से आती हूँ।'

मैंने सिर हिलाया और खुशी-खुशी नीचे उतरा। नाके पर पत्नी की राह देखता खड़ा रहा।

पाँच मिनट हुए। दस मिनट हुए। पत्नी नहीं आयी। आने जाने वालों में से कुछ परिचित पूछते 'क्यों रे नाके पर बहुत देर से खड़ा है?' 'रम्या भड़व आज बड़ा दूल्हे-सा सजा है रे?"

मैं यूं ही हँस देता। पत्नी कब आयेगी, यह उत्सुकता बढ़ती जा रही

थी। वह वही ब्लाऊज व नाक म नथ पहने, माथे पर आडा सिन्दूर लगाए, हाथ म थैली लिये बडे ठाठ म आ रही थी।

आसपास कोई उसे देख तो नही रहा है, इस बात से वह सशक्ति थी और तेजी म आ रही थी। वह जसे ही पास आयी, उसके हाथ की थैली देखकर मैंन पूछा, "अरी ए, थैली क्यो लायी ? और चप्पलें नही पहनी ?"

उसन थली मे हाथ डालकर चप्पलें निकाली।

य रही चप्पलें !"

तो पैरा मे पहनकर आना चाहिए, या थैली मे रखकर ?"

'आप कुछ भी नही समझत। अजी, अगर मैं घर से ही चप्पल पहनकर आती तो किसी ने देखा होता और माजी को बता दिया होता, कि बहन, गोद, तुम्हारी बहू बड़ी नखरे वाली लगती है। चार लोगो के बीच से चप्पल पहनकर झटपट निकली जा रही थी। तो ?"

मुझे उसका कहना जँच गया। हमारे गाव म अभी भी लोग चप्पल-जूते पहनकर नही घूमते। गाँव के बाहर जाने पर ही चप्पल पहनते है।

हम दोना आगे बढे। किस सिनेमा मे चलना है, यह तय नही था। इसलिए अपने घर के पास, पहले एक्सेलसियर पर आये। पोस्टर देखे। उसमे चटपटापन नही था। वैसी ही एम्पायर, कैपिटल की स्थिति थी। चलते समय मैं आगे रहता और पत्नी पीछे। कोई चार फुट का अतर होता। मुझे लगता कि पत्नी सटकर चले, परन्तु मैं घबराता—किसी ने देख लिया, पहचान लिया, तो ?

कैपिटल स बायी ओर मुडकर हम आजाद मैदान की ओर गय। मदान म जात समय मस्ती स हाथ म हाथ लेकर चलेंगे ऐसा तय किया था।

दोपहर के दो-ढाई बजे होगे। मैदान सुनसान था। कुछ लडके खेल रहे थे। हम मैदान म घुस तो पत्नी बोली "जरा रुकियेगा !"

मैं रुका। पत्नी ने थैली से सिन्दूर की डिबिया निकाली। थैली मरे हाथा म देकर, आँचल से माथे पर लगी सिन्दूर की आडी रेखा पोछी और वहाँ आठ आने के आकार का सिन्दूर लगाया। य सब अदाज स। पर सब व्यवस्थित।

मैंने पूछा, "य क्या है ?"

'आप ही तो कहते हैं बिंदिया लगा, जिंदिया लगा !"

यह सब पास म चल रहा था। मैदान स आने-जाने वाले यू ही गाँसते हुए निकल जाते।

हम दोनों वहाँ स चले। मन म आया, मट्रो की बजाय इराज म जायें। इसलिए हम दोनो उसी दिशा म मुड़े। मैदान स जाते हुए मैंन जानबूझकर उसका हाथ अपने हाथों में ले लिया। वह बोली, "रास्ते म चलन समय फालतू हरकतें मत कीजिए। चारो ओर लोग हैं।"

"अरी, इसी तरह साथ-साथ चलो !"

ऐसा कहकर मैं उसका हाथ पकड़ता और वह हाथ छुड़ाने की कोशिश करती। किसी के आ जाने पर मैं भी छोड़ देता। फालतू किसी के मन म शका नहीं होनी चाहिए कि खुला मैदान देखकर महिला स छेड़खानी कर रहा है।

हम रानी के पुतले के पास आये (अब वहाँ विशालकाय बिल्डिंग खड़ी है)। वहाँ से रास्ता पार करते समय एक जोड़ा तेजी से मोटर-साइकिल से निकला। पत्नी न उन्हें देखा। उस मोटर साइकिल पर महिला को पुरुष से चिपके देखकर वह बोली, 'अजी, अजी ! उधर देखिए ! फटफटी पर बैठी बाई कितनी घबरायी हुई है।"

'अरी पगली वह घबरायी नहीं है, मस्ती मे है।"

ऐसे समय ?"

तो ! तुम औरतो की आदत है। पुरुष काम म लगा कि तुम लोग मस्ती म रँग जाती हो।

चलिए !" कहकर पत्नी ने ऐसा चेहरा बनाया कि पूछिए मत। किसी तरह इरोज सिनेमा के पास आये। पोस्टर देखे। अच्छे लगे, परन्तु पत्नी को ठीक नहीं जँचे।

तू चुप रह ! ' मैंन उसे इशारे स कहा।

सेकड क्लास की दो टिकटें खरीदी। काफी भीड़ थी। तीन सवा तीन बजे थे। लोग मोटरो से आ रहे थे। एक नौ गजी साड़ी और नाक मे नथ पहने महिला खड़ी थी।

"साला, हम मैजेस्टिक सिनेमा में तो नहीं आ पहुँचे !" इस तरह की बात शायद हमें देखकर, मोटर से उतरनेवाला करता होगा ।

मेरी पत्नी उस सिनेमा में आयी महिलाओं की पोशाक को देखकर हँस रही थी और वे महिलाएँ मेरी पत्नी को देखकर हँस रही थीं ।

मैं निश्चिन्त हो गया कि सिनेमा शुरू होने के बाद यह सब बन्द हो जायगा । इसलिए उसे लेकर मैदान में भेल खाने निकल गया ।

भेल खाने में काफ़ी समय लग गया । तब मैंने उससे कहा, "अरी, जल्दी कर, सिनेमा उधर शुरू भी हो गया !"

इतना कहकर इराज सिनेमा पहुँचे । गेट कीपर को टिकट दिये । टिकट लेते समय उसने हम दोनों को देखा । उसने निश्चित ही मन में सोचा होगा कि 'लोग सुधर और इरोज सिनेमा का वातावरण बिगड़ा ।'

दोनों भीतर गये । बड़ा ठंडा ठंडा लगा । पत्नी आँचल समेटती बोली, 'ये ठंडा ठंडा क्यों लगता है ?" मुझे जल्दी थी कि किसी तरह सिनेमा देखूँ । हड़बड़ी में कहा, "अरी, मशीन के कारण लगता है ऐसा । चल, जल्दी चल !" दरवाज़े पर टॉर्चवाला हँसते हुए माथे पर हाथ मार रहा है ऐसा आभास हुआ । टिकट दिखाये और हम भीतर घुसे ।

टॉर्चवाले ने सीट दिखायी । हम बैठे और थियेटर की बत्तियाँ जल उठीं, क्योंकि अंग्रेज़ी सिनेमा का इंटरवल जल्दी होता है ।

लोग जाते-आते हमारी ओर अवश्य देखते, जैसे वे कुछ अजूबा देख रहे हों । वैसे भीड़ भी कम थी । हम जिस लाइन में बैठे थे, वह खाली ही थी । बस, हम दोनों ही थे । हमारे सामने एक जोड़ा बैठा था ।

फिर सिनेमा शुरू हुआ । धीरे धीरे फिल्म रेंगने लगी थी । साथ ही, सामने का जोड़ा परदे को छोड़ आपस में रेंगने लगा था । और मेरे आसपास तो कोई भी नहीं था । मैदान खुला था । मैंने पत्नी से कहा, "चार लोगों के साथ उठने-बैठने से काफ़ी-कुछ सीखा जा सकता है ।'

सच तो यह था कि हमारा ध्यान परदे की बजाय उस जोड़े की ओर ही था । इतना ठंडा थियेटर, पर उमस महसूस होने लगी ।

उस जोड़े को देखकर ऐसा लगा कि हम भी ऐसा ही करें । हाथों में हाथ, पैरों में पैर, कंधों पर सिर रखें और दो दुनियाँ एक हो जायें । पर

धत तेर की ! पत्नी का मन ही न मिलता। उसकी एक ही रट—
'चुपचाप बैठिए न !"

वैसे सिनेमा फालतू था। न उसे कुछ समझ पड रहा था और न मुझे ही। अच्छा मैंने जिन शानदार दृश्यों की कल्पना की थी व भी नही थे। और सामने वह जोड़ा ! पत्नी न सीट पर सिर रख दिया। मैं भी सब ओर स निराश होकर नीचे खिसका और सीट पर सिर रखकर सोचन लगा, 'स्साला, यह तो सारा मेल ही बिगड गया ! सिनेमा से चौपाटी, हैंगिंग गार्डन गया होता तो तो !'

"ए भाय उठो। सिनेमा खत्म हो गया !"

इरास सिनेमा का झाड़ूवाला हम दोनों को उठा रहा था।

"अब फालतू इधर उधर मत भटक। भगवान ने तेरी गोद म बच्चा दिया है। घर गृहस्थी की ओर ठीक से ध्यान दे।" बाप न मुझे समझात हुए कहा।

मैं केवल सिर हिला रहा था।

सिफ नन्दी बैल की तरह सिर मत डुला। बाईस साल का अच्छा घोडा हो गया [illegible]। थोडी भी अकल नही आयी।"

लडके पर क्या नाराज होते हो ? अब क्या वह छोटा रह गया है ? आपके जूत उसके पैर मे आन लग है। अब क्या वह अपना बुरा भला नही समझता ?' मा बोली।

'अरी, मालूम होता तो इतना न भटकता। अच्छी सरकारी नौकरी है। अच्छा काम करना, दुकान देखना। यह सब छोड अपनी मनमानी करता रहता है। जिसका खाता है, उसी के खिलाफ चिल्लाता है। क्या कहे ? सरकार को मालूम हुआ तो नौकरी चली जायेगी ! भूखा मरेगा, तब मालूम होगा !"

अजी वो तो ठीक है, पर पत्नी को क्या कहता है, 'ब्राह्मणों की

लड़कियाँ कैसी शान से रहती हैं, तू भी वैसी ही रहा कर। अब इसे क्या कहें? अपनी रीत हम छोड़ दें अब?"

'क्या उस भड़वे की सुनती हो? जैसा जात पाँत को शोभा दे, वैसा ही रहना चाहिए। वह पत्नी को यदि बिगाड़ने के पीछे पड़ेगा, तो मैं अभी ज़िंदा हूँ न?"

इस तरह माँ-बाप बोलते रहते परन्तु मैं उस पर ध्यान न देता। पत्नी को सुधारना चाहिए, यह मन में पूरी तरह तय कर चुका था।

अब मैं एक बच्चे का बाप हो गया था 'एसे में जैसा मैं रहता हूँ वैसा ही मेरा बेटा रहे' ऐसी बाप की इच्छा थी। पर मैं वैसा न रहता।

पत्नी बच्चे को लेकर बम्बई आयी। बच्चा हुआ तब से वह साल-डेढ़ साल मायके जाती और वापस आती। कभी उसे लेने मुरली आता कभी बाप स्वयं जाता। पत्नी को बच्चा हुआ तबसे उसे लगता 'चलो अब मैं माँ बन गयी। लड़कपन खत्म हुआ।

मैं उसे बताता, इस इस तरह रहना चाहिए। वह कहती 'फालतू में इधर उधर की बात न बनाइए। एक बच्चे की माँ हूँ मैं। मुझे क्या अब शोभा देगा?'

अरी अभी तो बस एक बच्चे की माँ हुई और ऐसे कह रही है जैसे गांधारी हो। पढ़ी लिखी औरतों को क्या बच्चे नहीं होते? परन्तु वे तुम्हारी तरह ढीली ढाली नहीं रहती। ऐसे रहती हैं जैसे उन्हें बच्चा हुआ ही नहीं।"

आपको इतनी ही पसन्द हैं वो तो उन्हीं में से किसी एक से शादी की होती। मुझ पगली को क्या अपनाया?"

पर मैं कहता हूँ वैसी रहने से तुम्हारा क्या बिगड़ जायगा? पति को तुम अच्छी लगो ऐसा क्या तुम्हें नहीं लगता?'

'अब क्या इतनी फूहड़ रहती हूँ? अजी सिर्फ ब्लाऊज पहना, बिंदिया की तरह सिन्दूर लगाया तो ससुरजी कितने नाराज़ हुए। साड़ी पहनने की बात पूछो, तो बोले तितलिया की तरह फोर क्या नहीं पहन

लेती ? आपको क्या है ? आप तो हमेशा बाहर रहते हैं, परन्तु मुझे हमेशा उनकी नजरों के सामने रहना पड़ता है।"

इस तरह पत्नी के साथ बातें होतीं, पर मेरी रट एक ही रहती, 'तू सुधर !"

पत्नी के घर से पत्र आया—उसे भेज दो। वैसे वह हर साल आती-जाती थी। उस साल बाप ने मुझे कहा, 'जा, उसे मायके छोड़ आ !"

मन में पत्नी को सुधारने का खयाल तो था ही। जैसा मौका मिलता, उसे समझा रहा था, बता रहा था। जैसे ही बाप ने यह कहा मैंने सोचा, 'डेक्कन क्वीन' से ही ले जाना अच्छा रहेगा। यह पढ़े लिखे, सुधरे-सँवरे लोगों की गाड़ी है। उसे खूब सीखने-समझने को मिलेगा। इसलिए डेक्कन क्वीन की दो सीटें रिज़र्व करा लीं।

सच तो यह था कि रिज़र्वेशन की टिकट कटाना हमारे बाप दादा को मालूम ही नहीं था। जब गाँव जाना होता, तो दस पन्द्रह मिनट पहले स्टेशन पहुँचना, किसी तरह टिकट खरीदना और सामान के पास जगह बनाना—इतना ही उन्हें मालूम था।

उस जगह की इतनी आदत हो गयी थी कि कभी कभी सीट खाली होने के बाद भी हम वहीं बैठे रहते। क्या ? किसी ने उठा दिया तो ? बस यही डर रहता।

डेक्कन पाँच बजे थी। हम चार बजे स्टेशन पहुँचे। पत्नी ने कपड़ों की गठरी बना ली थी। वह गठरी देखकर मैं बोला 'अरी, हम डेक्कन क्वीन से जा रहे हैं अच्छी थैली लो।'

आप भी कमाल करते हैं। घर में थैली नहीं थी, इसीलिए तो गठरी बाँधी।'

समय था, इसलिए बाहर जाकर एक थैली ले आया और उसमें सारा सामान ठूँसा। अच्छा लगा। साथ में भाई था, इसलिए वह कुछ नहीं बोल पायी।

हम गाड़ी में बैठ गये। तकदीर से खिड़की के ही पास जगह मिली।

भाई न विदा दी और गाड़ी चल दी। मैंने पत्नी को पढ़ाना शुरू किया। हमारी सम्पूर्ण लाइन दो लोगों के बीच की बेंचवाली थी। हमारे सामने एक जोड़ा था। वे आपस में बोल रहे थे। वह हँस रही थी। बीच-बीच में वह भी हँसता। पर यह सब उन्हीं दोनों तक सीमित था। मजाल थी कि उसमें से कुछ भी तीसरे को सुनायी दे जाये।

गाड़ी चलते ही मैंने पत्नी को पढ़ाना शुरू किया।

'देख, लोग किस तरह बातें करते हैं। स्त्रियाँ कैसी बातें करती हैं।''

कोई कुछ सुनाये तो लोग जिस तरह हामी भरते हैं, ठीक उसी तरह पत्नी हामी भर रही थी। पर जब हामी भरती, तो आवाज इतनी ऊँची होती कि सारी 'डेक्कन' पीछे मुड़कर देखती। मैंने उसे कहा, "अरी पगली, थोड़ा धीमी आवाज में बोल।"

"फिर आप ही कुछ जोर से बोलिए न।"

अब हो गयी न गड़बड़। सामने का जोड़ा किस तरह हँसता खेलता, चुपचाप सब-कुछ कर रहा था। उसे क्या अड़चन थी ऐसा करने में?

गाड़ी दौड़ रही थी। अच्छा डेक्कन क्वीन बोरीबंदर से छूटी तो सीधे कर्जत। बीच में रुकी ही नहीं। मेरी कोशिश थी कि वह भी कुछ बोले। बीच बीच में मेरा भाषण चलता रहा।

लोग किस तरह बातें करते हैं, उनकी पत्नियाँ किस तरह रहती हैं। उनके कपड़े, उनके बालों की रचना, उनका बोलना—ये सारी बातें मैं पत्नी को समझा रहा था।

गाड़ी अपनी गति से दौड़ रही थी। मैं अपनी पत्नी को पढ़ा सिखा रहा था।

नरल स्टेशन आया। गाड़ी की गति कुछ धीमी हुई। बस पत्नी उठी और बोली, 'थोड़ी देर बच्चे को संभालिए।'' उसके इतना कहने पर सारी डेक्कन क्वीन ने पीछे मुड़कर देखा, क्योंकि उसका बोलना इतनी ऊँची आवाज में था।

'तू कहाँ जा रही है?

पत्नी ने उतनी ही ठोस आवाज में कहा, 'मैं जरा पेशाब करके आती हूँ।'

सारी 'डेक्कन क्वीन' हँसती नज़र आयी।

कर्जत स्टेशन आया। मैंने पत्नी समेत सारा सामान बाहर निकाला। 'डक्कन' गयी। फिर पीछे से आने वाली बस पकड़कर पुणे आया।

इलेक्शन के दिन थे। कोटा से भी सवावाला समाजवादी पार्टी की ओर से खड़े थे। राष्ट्र सेवा दल समाजवादी दल के करीब था। इसलिए मैंने प्रचार हेतु कलापथक तैयार किया। वसंत हेलेकर हमारे राजनैतिक गुरु ही कह लीजिए। उन्होंने पूछा, "सवावाला का प्रचार करना है। बोल, तू तैयार है?" मैं क्यों ना कहने लगा? नाचने की व्यवस्था हो इसके लिए मेरी सारी कोशिश। अब तो मैंने अपने विभाग में ही कलापथक तैयार कर लिया था। पु० ल० देशपांडे का लोकनाट्य नेता पाहिए बिठाया और प्रचार की शुरुआत की।

सारे कोटा में हमारी प्रचार सभाएँ हुईं। इसलिए लोग ऐसा कुछ समझने लगे, जैसे राजनैतिक दल में काम करता हूँ। सच बात तो यह थी कि मुझे नाचने का अवसर मिलता, इसी की खुशी थी। भाषण कभी नहीं दिया।

सभा शुरू होने से पहले चार-पाँच गाने गाने के बाद, भीड़ धीरे-धीरे बढ़ने लगती। फिर उम्मीदवार और दूसरों के भाषण हो जाने के बाद हमारा लोकनाटक शुरू होता। नाटक डेढ़ बजे तक चलता।

मैं प्रचारात्मक गाने अच्छी तरह गा सकता हूँ, यह जानकर उस समय के पोस्ट एंड टेलीग्राफ यूनियन के समाजवादी पार्टी के नेताओं ने मुझे काम दिया। मैं यूनियन की सभाओं में गाने लगा। उद्देश्य एक ही था कि लोगों के सामने आने का मौका मिले।

इसका एक लाभ तो हुआ। पहचान बढ़ती गयी साथ ही मेरा स्तर बढ़ रहा है ऐसा मेरा मन कहने लगा।

मैं राष्ट्रसेवा दल, पी० एस० पी० में आने जाने लगा।

ऐसी ही एक प्रचार-सभा मे दादा कोडके से मुलाकात हुई। और हम मिलते रह।

दादा काडके का जनता कलापथक (नायगाव) पी० एस० पी० का प्रचारात्मक दस्ता था। दादा सेवा दल के कायक्रम मे पेटी बजाने आया करता। मैं उस पथक म काम करता। उनके 'खनखनपुर का राजा' लोक-नाटक म मैं काम करता था।

जहा नाचने का मौका मिलता मैं अवश्य नाचता। मैं गिरगाँव के जनता कलापथक, गिरगाव के राष्ट्र सेवा दल कलापथक, दादा कोडके के साथ, लीलाधर के साथ काम करता था।

सेवा दल का दिल्ली का दौरा तय हुआ। बिन बीज का पेड' और 'नेता चाहिए'--इन दोनो लोकनाटको को लेकर दिल्ली, इदौर भोपाल, ग्वालियर, नागपुर का दौरा था। इस दौरे मे नीलू फूले और मेरी गहरी दोस्ती हुई। वसन्त बापट, लीलाधर मधु, नीलू, मैं, आठवले, भागूजी बैकर, सुधाताई आवाबेन देशपाडे, श्यामा आगाने, दो छोटी लडकिया और वादिक मडली इस दौरे मे थी।

यह दौरा मोटर गाडी से किया गया। कुल बीस दिन का दौरा था। दिल्ली म दो दिन म दो लोकनाटक हुए। पहले दिन के कायक्रम म पडित जवाहरलाल नेहरू आये थे। मध्यातर मे ना० ग० गोरे, ससद-सदस्य, से कलाकारों का परिचय करवाया गया। प० नेहरू ने बडे स्नेह से सबको एक एक पुष्पगुच्छ दिया।

कायक्रम के दौरान फोटो लिये जा रह थे यह बताने की आवश्यकता नही। एक फोटो म प० नेहरू मुझे पुष्पगुच्छ द रहे है। गुच्छ का डठल प्रा० बापट के हाथ म था। पास ही सासद ना० ग० गोरे थे।

दूसरे दिन बिन बीज का पेड' लोकनाटक के लिए प्रसारण मत्री श्री केसकर आये थे। उनके साथ भी एक फाटो खीचा गया।

दिल्ली का कायक्रम सपन्न कर हम वहाँ से चले। हमारी गाडी के ड्राइवर का नाम मुना था। उसका क्लीनर मुहम्मद। दोनो मुसलमान।

वे उसी इलाके के। परन्तु हम पर जो आफत आयी, उस समय यदि वे न होते तो पता नहीं, क्या हो जाता!

झाँसी से बाद सागर आया। रात के नौ बजे थे। हम बापट के एक मित्र के घर गये। दो घंटे रुककर ग्यारह बजे निकले। रास्ते में पुलिस ने गाड़ी रोकी और कहा कि आगे मत जाइए। पर हम नहीं रुक सकते थे क्योंकि नरसिंहपुर में कार्यक्रम था। हम वहाँ से चल पड़े।

रात के दो-तीन बज रहे होंगे। हम सब सोये थे। कुछ ऊँघ रहे थे। ड्राइवर के पास बापट, श्यामा विद्या भाटवडेकर, और सुधाताई।

गाड़ी ने अचानक टर्न लिया। फिर टर्न लिया। उसी समय पत्थरों की वर्षा होने लगी। पीछे से गोलियों की बौछार। सोये ऊँघते लोग झट से जाग गये। "क्या हुआ?" पूछने लगे। ड्राइवर ने डाँटा 'चुप बैठो!'

गाड़ी सत्तर-अस्सी की गति से चल रही थी। सब अपनी मुट्ठियों में जान सँभाले बैठे थे। गाड़ी तड़ाक तड़ाक उछल रही थी। किसी के सिर पर चोट लग रही थी पर बात करने की कोई गुंजाइश नहीं थी। बच्चे रोने लग गये थे।

गाड़ी तेज गति से दौड़ रही थी। शुरू में पीछे से एक गाड़ी का प्रकाश दिखायी दे रहा था, परन्तु बाद में वह भी ओझल हो गया। पर गाड़ी दौड़ रही थी। ड्राइवर ने गति तनिक भी कम नहीं की। कोई दो तीन घंटों में रोशनी दिखायी दी। कोई गाँव आ गया था। वहाँ गाड़ी रुकी और सब सब ने राहत की साँस ली।

बाद में मालूम हुआ कि एक 'एल' आकार के टर्न पर एक ट्रक खड़ा था। अँधेरा घना था। हमारी गाड़ी की रोशनी में पुलिस की पोशाक पहने एक आदमी गाड़ी रोकने की कोशिश कर रहा था, परन्तु मुन्ना हमारा ड्राइवर उसी इलाके का था। उसे डाकुओं की युक्तियाँ मालूम थीं। वह सतर्क था। सम्भल कर बैठा था। वैसे बापट और दूसरे लोग ऊँघ रहे थे। गाड़ी की तनिक भी गति कम न करके वह उस आदमी तक सीधे गाड़ी ले गया। फिर अचानक उसके पास से टर्न लिया। फिर टर्न लिया, और फिर टर्न लेकर गाड़ी तेज गति से आगे भगायी।

मुन्ना पर तारीफ की वर्षा होने लगी। उस दिन के कार्यक्रम में बापट

ने इस बात का विशेष उल्लेख करके मुन्ना और उसके साथी का सम्मान किया और इनाम दिया।

मुझे लगा, यदि सचमुच उसका इरादा सफल हो जाता तो आज हम जीवित बचते भी या नहीं ? हमारी छोड़ दीजिए, पर लड़कियां ? उन्हें अवश्य उठा ले जाते। बापट के पास की हजारों की रकम गयी होती। मैंने मज़ाक में सुधाताई से कहा, "सुधाताई, यदि तुम्हें और श्यामा को वे ले गये होते और दस साल के बाद कलापथक का दौरा इसी इलाके में होता तो तुम पुतलीबाई की तरह घोड़े पर सवार आती और चिल्लाकर कहती—ठहरो !"

बाकी दौरा शानदार रहा। वसन्त बापट ने दौरे के दरम्यान दिल्ली, आगरा आदि स्थान दिखाये। सिर्फ दिखाये ही नहीं, उनकी जानकारी भी दी। फतेहपुर सीकरी की जानकारी कुछ इस ढंग से दी कि उन दिनों के सारे दृश्य साकार हो उठे। दौरे के समय बड़े लोगों के निमन्त्रण आते। हम सब जाते। श्री प्रभाकर पाध्ये उन दिनों दिल्ली में थे। उन्होंने हमें बुलाया। हम गये। उन्होंने हमें पार्टी दी। एक टेबल पर सारी खान-पीने की वस्तुएँ रखी थीं। साथ ही प्लेटें और चम्मच भी रखे थे। जिसे जो चाहिए वह ले लेता। उस पार्टी को 'बुफे पार्टी' या ऐसा ही कुछ कहते हैं। उस पार्टी में कलापथक के अलावा दूसरे बड़े बड़े लोग भी आये थे।

सबने जिस तरह खाना लिया, उसी तरह हमने भी लिया। मैं, नीलू, मधु कदम एक कोने में खा रहे थे। मुझे और नीलू को दो पकवान बहुत अच्छे लगे। इसलिए हम गपागप खा रहे थे। भरभुक्खों की तरह हमें खाते देखकर मधु बोला, 'ऐ, इस तरह भूखे लोगों सा क्या खा रहे हो ?'

"अरे खाने के लिए रखा है। बस, खा रहे हैं।' नीलू बोला।

"खाने के लिए रखा है, इसलिए मन में आया उतना ही नहीं खाना चाहिए। देखो औरों को ! कैसे थोड़ा थोड़ा लेकर खा रहे हैं ! कुछ लोगों ने तो थोड़ा-थोड़ा खाकर बाकी ऐसे ही छोड़ दिया है।" मधु ऐसे जतला

रहा था जैसे उसे इस प्रकार की पूरी जानकारी है।

"क्या मतलब ? सारा लेकर, थोड़ा खाकर, बाकी झूठा छोड़ने का रिवाज होता है क्या इस पार्टी का ?" मैंने अनाड़ीपन से पूछा।

'ऐसा नहीं है। ये सारे पदार्थ हमने खूब खाये हैं। इनमें भी अच्छे अच्छे खाये हैं। इसलिए इसे क्या खाना ? इस तरह जो थोड़ा खाकर, बचा हुआ छोड़ देते हैं उन्हें ग्रेट और बड़ी सोसायटी का समझा जाता है! क्यों मधु, ठीक है न ?' नीलू बीच में ही टपक पड़ा।

मधु हमारे बीच बमोरकर रुकने लगा ? जहाँ वापस थे वहीं चला गया। हम दोनों अपनी पसन्द की चीज पर जुटे थे। एक जोड़े ने यह देख लिया। उन्होंने नाक सिकुड़ाकर 'ईडियट' कहा। यह हम सुनायी भी दिया। परन्तु कमलाबाई (पाच्य) प्रसन्न थी। उसके चेहरे पर खुशी झलक रही थी क्योंकि उनकी रसोई को विशेष पसन्द किया गया था।

कहीं भी कोई समारोह हो तो वहाँ जो भी नेता हो उसके साथ अपना फोटो खिंचे इस तरह की कोशिश सभी करते हैं। उसमें भी यदि मंत्री रहा तो मत पूछिए! फोटोवाले को विशेष तौर पर कहकर, उसे लालच देकर फोटो खिंचवाते हैं। और बाद में उसे भुनाते हैं।

पंडित नेहरू, भारत के प्रधानमंत्री। मेरे दादा की भाषा में राजा! ऐसे जगत प्रसिद्ध व्यक्ति के साथ मेरा फ़ोटो! वह फोटो दादा को दिखलाया तो उसने सामने के बेट को आवाज दी और कहा, 'ए शिरप्या तेरी तो! तू सिर्फ जेड० पी० या आइ० पी० के साथ फोटो खिंचवाया और सारे गाँव को दिखलाया। ये देख, देश के राजा के साथ राम्या का फोटू!'

बाबूतात्या वह फोटो लेकर सारा गाँव घूम गया। मुझे बड़ा प्यार करता। मेरे किसी भी काम में उसे गर्व होता। बेटा दिल्ली देखकर आया, यह बात कुछ इस तरह वह बताता जैसे फॉरेन हो आया हो।

दौरा समाप्त हुआ। मैंने पन्द्रह दिन की छुट्टी ली थी, परन्तु छुट्टियाँ ज्यादा हो गयी थी, इसलिए सहमता सहमता अफसर के सामने खड़ा

हुआ। उन्होंने मेरी ओर देखा। माथे पर बल पड़ गये। फिर टेबल पर अपने काम में व्यस्त हो गये।

"ओवरसियर साहब, अँऽऽ, मैंऽऽ आया हूँ!"

'रुको थोड़ा।" ओवरशर साहब बोले।

सच तो यह था कि दिल्ली के दौरे के फोटो मैं साथ लाया था। सोचा साहब को दिखाऊँ। प्रशंसा पाऊँ, 'देखिए, आपका एक पोस्टमैन सीधे दिल्ली हो आया। उसने वहां देश के प्रधानमंत्री के साथ फोटो खिंचवाया।' पर कुछ नहीं, यहां की बात ही कुछ अजीब थी।

साहब काम पूरा करके मेरी ओर देखते बोले, 'क्यों रे! कितने दिन की छुट्टी थी और कब आया?"

'ये फोटो देखिए हमने दिल्ली में तहलका मचा दिया!" मैंने फोटो आगे बढ़ाते कहा।

"फोटो गया चूल्हे में! तूने छुट्टी कितने दिन की ली थी?" साहब फोटो अपने हाथ में लेते चिल्लाए।

"उसका ऐसा हुआ कि हमने आते समय ग्वालियर, भोपाल, इन्दौर जैसी जगहों पर कार्यक्रम किये। अजी साहब, रास्ते में मानसिंह डाकू ने रोका था, पर !"

मैं बातें हाँक रहा था, पर साहब फोटो देखने में मशगूल थे। मुझे अच्छा लगा। चलो, साहब तो खुश हो गये। मैंने जोर से कहा, "देखिए साहब इसी कारण मुझे ज्यादा छुट्टी लेनी पड़ी।"

"ये सब मुझे मत बता। बड़े साहब से बोल!" इतना कहकर वे फोटो हाथ में लेकर उठ खड़े हुए "चलो बड़े साहब के पास!"

हमारा मोर्चा साहब की ओर बढ़ा। विभाग के सारे लोग देख रहे थे। मेरा दयनीय चेहरा देखकर कुछ हँस रहे थे कुछ लोगों को बुरा लग रहा था।

असिस्टेंट पी० पी० एम० के सामने हम खड़े थे। यह हमारे विभाग के डिलिवरी डिपार्टमेंट का प्रधान व्यक्ति! उसके टेबल के चारों ओर कुछ क्लर्कों कुछ पोस्टमैनों की काफी भीड़ थी। हमारा साहब पारसी। वैसे मन से नरम, दिलदार। उसके हाथ में इस समय और भी फोटो

थे।

'साला, कुलकर्णी, तू तो मिनिस्टर के बिलकुल पास खड़ा है!" साहब फोटो देखकर बोले।

बाद में मालूम हुआ कि डा० का० पाटिल जब सेंट्रल मिनिस्टर थे, तब एक बार डाक विभाग को भेंट दी थी। उस समय जो फोटो खींचे गये थे, वे फोटो और जिनको जिनको उनसे पास खड़े रहने का चांस मिला था, वे सब साहब को अपना बड़प्पन दिखा रहे थे। उनके फोटो का कार्यक्रम खत्म हुआ। वे गये। साहब ने हमारी ओर देखकर पूछा, "यस मिस्टर, क्यूं छे?"

"साहब, ये फोटो देखिए!" ओवरसीयर मेरा फोटो आगे बढ़ाते बोले।

'साला, तू बी उस मिनिस्टर के साथ फोटो निकाला?' साहब फोटो अपने हाथ में लेते बोले।

"साहब, फोटो मेरे नहीं हैं। यह अपना पोस्टमैन है, दिल्ली गया था, उसके फोटो हैं।"

साहब ने एक बार मेरी ओर देखा। इसी जल्दी में मैंने उन्हें नमस्कार कर दिया। वे फिर फोटो की ओर देखने लगे। वैसे साहब थोड़ा बहुत पहचानते थे।

"अरे, मिस्टर मलकर मिस्टर कुलकर्णी तमे बच्चा अहियां आव नी (तुम दोनों एकदम यहां आओ)।" साहब फोटो देखते-देखते बोल पड़े।

वे दोनों दौड़ते आये। वे जैसे ही पास आये साहब फोटो दिखाते बोले, "तुमी, साला, खाली मिनिस्टर के साथ फोटो निकालते और सबको दिखाते। ये पोस्टमैन का साला प्राइमिनिस्टर के साथ फोटो है!"

मेरी सचमुच तारीफ हो रही थी। परन्तु मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा था। बस एक ही बात दिखती कि साहब फाइल पर खबर लेगा। मैंने ओवरसीयर को धीरे से आँखों-ही-आँखों में कह डाला, 'इतना संभाल लीजिए।'

'तो तू साहब को बता!' ओवरसीयर बोले।

"क्या हुआ?" साहब ने पूछा।

पंद्रह दिन की छुट्टी ली। अब आ रहा है।" ओवरसीयर ने बताया।

"अरे, जाने दे। प्राइमिनिस्टर से पहचानवाला आदमी है, साला। तेरी मेरी कम्प्लेंट करेगा, तो मुश्किल हो जायगी।"

इतना कहकर साहब ऐसे हँसने लगे ज्यों बहुत बड़ी बात की हो। साहब ज्या ही हँसने लगे, तभी टेबल के चारों ओर खड़े लोग भी हँसने लगे। मैं भी हँसने लगा।

कोई भी सरकारी फरमान 'दीर्घकालीन' नहीं होता। विभाग भूल जाता है। जनता भूल जाती है। हम भूल जाते हैं। परन्तु फरमान निकलने के बाद कुछ दिन फरमान के अनुसार काम करना पड़ता है। उसी के परिणाम-स्वरूप मुझे दूसरी लाइन पर काम करना पड़ा।

एक बिल्डिंग में मेरी और कुत्ते की जुगलबंदी हुई।

बेल दबायी। कुत्ते के भूकने की आवाज आयी। वैसे मैंने कुत्ते नामक प्राणी को रास्तों पर और गाँव में देखा है। कई बार उसे पत्थर मारा है। ऐसे में मैं उस भूकते कुत्ते से भला क्यों डरता?

दरवाजा खोला। उस आदमी के हाथ में पत्र रखा। लेनेवाले ने पत्र उलट पलट कर देखा। "पत्र दरी में क्या आया?" उसने पूछा। मैंने भी वैसा ही उत्तर दे दिया। परन्तु वह कुत्ता यह सब सुन रहा था। मेरी अकड़ देखकर वह भूकने लगा।

'टामी, कायलेन्स!' उस आदमी ने कुत्ते को रोका।

परन्तु टॉमी चढ़ाई करने की मुद्रा में था। मैं भागने की तैयारी करने लगा। जैसे ही मैं भागने लगा, टॉमी मेरे पीछे और उसके पीछे 'टामी, टॉमी, कम बैक!' कहता हुआ उसका मालिक। मैं जीने की सीढ़ियों को एक बनाता हुआ भाग रहा था, तभी टॉमी उछला और मैं 'बाप रे! बचाओ!' कहता हुआ धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ा।

पन्द्रह दिन घर पर! तीन इंजेक्शन पेट में! पर एक लाभ हुआ, जिसका कुत्ता था उसका मालिक था पारसी। मैं इस तरह बेहाल हुआ, इसलिए उसने सौ रुपये मुझे दिये।

हम पोस्टमैन लोग 'लाइन' करते समय जहाँ भी जगह होती, उस दरार म मे पत्र डाल दते । कुछ के दरवाजे के सामने बॉक्स होते हैं, कुछ पत्र डालन क लिए थोडी सी दरार बना देते हैं, इन ब्लॉक वाले लोगो क दरवाजे हमेशा बन्द !

इन बडे लोगो की 'लाइन' स मध्यम श्रेणी और गरीबो की 'लाइन' अच्छी । अन्ना भोसले सावत की इतनी चिट्ठी तो पहुँचा दीजिए ' इतना कहने म सामने 'ना' नही कहता । परन्तु ब्लॉक वालो के पास यह सब नही चलता । उन्ही के घर का आदमी यदि नीचे मिला तो लगता है, चलो तीसरी मजिल चढने की तकलीफ बची । पर वो क्या कहता जानते है ?

पोस्टमन ये हमारी बीवी का खत है, उन्ही को दे देना ।'

दूसरा कहता ' आ तो मारा छोकरीना छे, एनेज आपजो हाँ ।'

ऐसी म लाइन ! दूसरी बात नौ की डिलिवरी का पत्र यदि बारह की डिलिवरी म मिला तो तुरन्त शिकायत 'पत्र देरी स क्यो मिला ?' परन्तु अपनी मध्यम गरीब लाइन म सात तारीख का पत्र दस तारीख को क्यो मिला यह कभी नही पूछेंगे । उलटे पत्र देने पर नमस्कार ही करेंगे ।

यदि कोई ज्यादा ही तकलीफ देने लगे तो हम भी छँटे हुए ! उसे ठीक तरह ठडा कर देते । जो तकलीफ देता उसका ध्यान रखते । पोस्ट ऑफिस म सादन के अनुसार पत्र सार्टिंग करते समय उसका पत्र आया, तो देखते कि ठप्पा किस डिलिवरी का है । परन्तु कभी कभी बहुत काम होने के कारण पोस्ट का ठप्पा नही लगाया जाता । ठप्पा लगाने की जो मशीन है, उससे वह फिसल जाता है । तब ठप्पा लगाने म पहले वह पत्र हम अपने बग म रख देते । पन्द्रह दिनो बाद मजे म उस दिन की डिलिवरी का ठप्पा लगाकर सलाम करके, उस साहब को पत्र देते हैं । वह भी खुश होता है । उसे लगता है जो शिकायत की, उसका कुछ तो लाभ हुआ !

पर पत्र खोलता है । पढता है पत्र मे तारीख सात और पत्र मिलता

},

है बीस तारीख को ! ठप्पा देखता है। पर सब सही है ! अब वो क्या करेगा ? यह हमारी चालाकी !

पोस्टमैन की खास कमाई दीवाली, ईद जैसे त्योहारों के समय ! उस 'लाइन' में रहने वालों के हिसाब से इनाम मिलता है।

कोलाबा खुसरुबाग इलाके में मैं काम करता था। यह पारसी लोगों की कॉलोनी। एक ही जात, सारे घर समान ! चार मंजिल के मकान ! नीचे-ऊपर जाने के लिए लिफ्ट नहीं ! हरेक का एकाध पत्र होता ही। यहां रहनेवाले पढ़े लिखे। कानून की नस जानने वाले ! इस डिलिवरी का पत्र उस डिलिवरी में नहीं चलता। इस इलाके में आनेवाला तंग आ जाता। कब दूसरा इलाका मिलेगा, इसकी राह देखता। इसलिए मैंने इस इलाके से तबादले के लिए 'ओवरसियर' को पकड़ा। वो बोला, "गुरु, इस बार पटेटी (पारसी लोगों का बड़ा त्योहार) कमाकर फिर तेरा तबादला कर दूंगा।"

मैंने सोचा, इतने दिन इस इलाके में रहा, थोड़े दिनों में क्या बिगड़ जायेगा ? साथ ही पारसी, मन से उदार ! पटेटी खूब मिलेगी, यह सोचा था। वह मिली भी, पर उसमें भी एक चालाकी दिखी। वाह, भई, वाह !

मैं पटेटी का इनाम जमा कर रहा था। मैं और मेरा जोड़ीदार सुबह से घूम रहे थे। ऐसे समय सुबह शाम का लगाकर, बेल बजाकर, नमस्कार करके पत्र हाथ में रखता था।

उस पारसी के घर की 'बेल' दबायी। वह तीसरी मंजिल पर था। "कौण छे ?" भीतर से आवाज़ आयी।

"पोस्टमैन !"

"शूं काम छे ?" (क्या काम है ?)

"साहेबजी, पटेटी।" मैंने पत्र लेकर नमस्कार किया।

"तमे केटला जण छो ?" (तुम कितने लोग हो ?)

"आमी चार जणा हैं।" (हम चार लोग हैं।)

"यो, वी० पी०, मनीआडरवाला, तारवाला नहीं आया

"साहब, वे अलग हैं।"



तो तमे बच्चा मलीने आवजो। शाला, पाछनथी खटखट नही होना।'
(उन सबको लेकर आओ।)

स्साला, हो गया न गडबड ? अब बाकी लोगों को कहा से पकड़कर लाऊँ ? मैंने दिमाग लडाया, दूसरे इलाके के पोस्टमनों को तैयार किया। वे साले, चायपानी लिये बिना तैयार ही न होते थे। जब सवा रुपया खर्च किया तब तैयार हुए।

दूसरे दिन हमारे पाँच लोगों का जत्था तीसरी मंजिल पर गया।

"कोण छे ?"

पोस्टमैन, साब !'

दरवाजा खुला पत्र दिये। सबने नमस्कार किया।

तम बच्चा मलीने आव्या ने ?' (सब लोग आये हो न ?')

"जी हाँ यह वी० पी०, यह मनीआर्डरवाला, यह तारवाला। मैं आडमरी डिलिवरीवाला।'

"तो शाला बच्चा आवी गया। सारूँ थयु। जरा वेट हूँ। (तो तुम सब लोग आ ही गये ! जरा रुको !)

साहब भीतर गया। सोचा, चलो मेहनत बेकार नही गयी।

"अरे, शामा नमारी पासे छुट्टा छे के ?" (अरे तुम्हारे पास खुले रुपये हैं ?)

"नही, साब !"

ऐसे समय ना कहने पर साहब लोगों के हाथ म जो होता है, यह दे देते हैं यह हम मालूम था। इसलिए 'ना' कहा।

साहब बोला, ' छुट्टा नथी ? तो एम करो, हाँजे चार वाग्या आवजो।" (खुला नही। तो ऐसा करो, तुम लोग चार बजे आओ !) इतना कहकर दरवाजा बन्द कर दिया। चलो वापस नीचे ! वे दोनो फिर आने को तैयार नहीं थे। दो बार तकलीफ हुई। फिर एक रुपया खर्च किया। चार बजे फिर चारों तीसरी मंजिल पर पहुँचे।

कोण छे ?'

पोस्टमैन !"

दरवाजा खुला।

"तमे केटला छो ?" (तुम कितने हो ?)

'हम चार लोग ।" साहब भीतर गया और एक बन्द लिफाफा ले आया।

"आ ल्यो, वधाने आजा।" (ये सँभालो अपना नेग !)

सबने सलाम किया। दरवाजा बन्द। बन्द लिफाफा पोस्टमैन को देने वाला यह पहला आदमी।

लिफाफा खोला। उसमें सिर्फ एक रुपया था!

कालबादेवी के पोस्ट आफिस का साहब तबादले पर जी० पी० ओ० में आया। ये तो बहुत ही सख्त। वैसे उनका रोबदाब था। वो आनेवाला है, यह सुनकर ही लोग काँप उठे थे। ये बाबा, कब कहाँ छापा मारेगा, कोई अंदाज न होता। कभी भी किसी भी विभाग में अचानक पहुँच जाता और सबको परेशानी में डाल देता।

एक दिन हमारे विभाग के सामने सुबह साढ़े दस पर खड़ा था। मेरे जैसे रोज देरी से आनेवाले, दरवाजे पर साक्षात पी० पी० एम० को देखकर घबरा उठे। महाशय ने महीने भर में सारा जी० पी० ओ० सीधा कर दिया। जो देरी से आते, उनके सामने लाल निशान! तीन बार ऐसा होने पर एक कैजुअल कट! कितनों को सस्पेंड, कइयों को अमुक अमुक का स्पष्टीकरण दो, ऐसा नोटिस! कामगारों को चारों ओर यही साहब दिखता।

मैं सेवादल के कलापथक में तो काम करता ही था, साथ ही, बीच बीच में मैलेवाडी के साहित्य संघ में (तब यह शुरू था), मराठी के नाटक देखने जाता रहता। इन साहब को भी नाटक देखने का शौक था।

एक बार ऐसा हुआ कि मैंने साहित्य संघ में नाटक देखने जाने के लिए साढ़े बारह बजे सात नम्बर की ट्राम पकड़ी। ठाकुरद्वार से साहब भी ट्राम में चढ़े और संयोग कहिए मैं जिस सीट पर बैठा था, वहीं आकर बैठ गये।

मैं उन्हें पहचानता था पर वे क्योंकर पहचानते ? पाँच हजार कामगारों के बॉस थे वह। मैं जरा सहम गया, फिर सँभला। नमस्कार किया। उन्होंने सिर हिलाया। हँसे। किस विभाग का ? कुछ इस तरह का सवाल उनके चेहरे पर दिखा।

फिर मैंने पूरी पहचान बतायी। स्वयं के बारे में भी कुछ जानकारी देनी चाहिए। इसलिए, कथानयन में काम करता हूँ विभाग में सत्यनारायण की पूजा के समय होने वाले नाटक में काम करता हूँ, यह सारा कुछ बताया। साहब विभाग की साहबी छोड़कर खुले मन से बातें कर रहे थे।

ट्राम में पहचान हुई और एक दिन हमेशा की तरह साहब का छापा पड़ा। मैं पकड़ा गया। ट्राम की पहचानवाला नमस्कार किया। पर सारी पहचान भूलकर 'कितने बजे हैं ? ड्यूटी का टाइम क्या ? इस तरह पूछ कर अच्छी खासी चेतावनी दे दी।

राष्ट्र सेवा दल के 'किसी का किसी से बनता नहीं' नामक नाटक का मंचन साहित्य संघ में था। मैं चार पास लेकर डरते डरते साहब के केबिन में गया। नमस्कार करके साहब के हाथों में चार पास रख दिये। सरसरी निगाह मुझ पर डाली फिर पास की ओर देखा और पल भर रुककर उन्होंने पूछा तुम नाटक में काम करते हो ?"

हाँ ' मैंने कहा।

"अच्छा है आऊँगा साहब बोले।

मुझे बड़ी खुशी हुई। चलो, साहब को खुश करने का अच्छा मौका आया। उस लोकनाटक में मैं राजा की भूमिका कर रहा था। कभी-कभी प्रा० वसंत बापट करते। वास्तव में, वह भूमिका उन्हीं की थी। परन्तु, उन्हें जब समय न होता तो मैं करता। परन्तु ऐसा मौका एकाध बार ही आता।

जिस दिन नाटक था, उस दिन मैं सात बजे थियेटर गया। पहुँचते ही सौदागर हगरे ने बताया कि आज राजा का काम बापट करने वाले हैं। वैसे और कभी यह हो जाता तो मुझे बुरा न लगता। पर आज हमारे साहब आनेवाले हैं। उन्हें बताया है कि मैं काम करने वाला हूँ। खबर सुनकर लगा जैसे मुझ पर आसमान गिर पड़ा हो। मैंने सौदागर को

बताया, लीलाधर ने बापट को बताया। परन्तु बात बनी नहीं।

सवा आठ बजे साहब सपरिवार आ गये। मैं स्वागत के लिए विशेष रूप से तैयार था।

"अरे, तुम्हें मेकअप नहीं करना है ?" साहब घड़ी की ओर देखते हुए बोले।

"मेरा काम काफी बाद में रहता है।" मैंने हँसते हुए कहा।

फिर साहब ने पास वाली सीट पर बिठाया। उनके आसपास डाक्टर मल्लिक, गो० नी० दाडेकर, ना० ग० गोरे, एस० एम० जोशी आदि मंडली बैठी थी।

नाटक शुरू हुआ। नाटक में कुल दो बार मेरी इंट्री थी। वह भी सिर्फ खटिया उठाने के लिए।

नाटक खत्म हुआ। मेरे बाहर निकलने से पहले साहब ही भीतर आये। स्टेज पर बड़े बड़े लोग थे। सारे नाटक की प्रशंसा चल रही थी। मैं कोने में चुपचाप खड़ा था।

मैंने बापट का परिचय साहब से करा दिया। बापट बोले, "मैं जो काम करता हूँ, अर्थात जो क्रिया, वह काम आपका यह पोस्टमैन करता है। वह भी ए वन।"

इस वाक्य के कारण मेरा धीरज बँधा, नहीं तो मेरी कितनी फजीहत हुई होती।

वैसे 'किसी का किसी से बनता नहीं' लोकनाटक मेरे साथ काफी दिनों तक लगा रहा। पुणे के 'आकाशवाणी' ने होली के दिन यह प्रोग्राम रखने की सोची। व्यंकटेश माडगूलकर रेडियो में थे। उन्होंने पूरी पहल की। मुख्य काम नागेश जोशी इंदिरा चिटणीस का था। लीला गांधी आठवले जैसे बड़े बड़े लोग थे। लीलाधर को उसके छंद और प्रारम्भ के गीत गाने के लिए बम्बई से बुलाया गया।

लीलाधर, मैं, मधु कदम, बेंकर—हम लोग गये। लीलाधर, मधु कदम को तारयाबाई के काम मिले। मुझे उसमें दो वाक्य का काम मिला।

मदा' की भूमिका थी यह। प्रोग्राम गोखले हॉल में। हॉल खचाखच भरा पड़ा था। यह कार्यक्रम उसी समय रेडियो पर सुनाया जा रहा था। मेरा काम छोड़कर सारा नाटक शानदार रहा। परंतु मेरा काम जब आया, तब मुझे मिले दो वाक्य मैंने कुछ इस तरह भटकते हुए कहे कि पड़ोस का एक बड़ा आदमी बोल पड़ा, 'इसे मसाकार विसन बना दिया ?''

संयुक्त महाराष्ट्र का आंदोलन शुरू हुआ। मराठी आदमी का अपना सवाल था। मैं भला चुप कैसे बैठ पाता ? हड़बड़ा उठा 'संयुक्त महाराष्ट्र होना ही चाहिए।' इस तरह की गर्जना करने लगा। अब सामान्य आदमियों के इस तरह तैयार हो जाने के बाद स्वयं को शाहीर (वीर गीत गाने वाले) कहलवाने वाले शांत कैसे बैठ सकते थे ? सब शाहीर अपना-अपना ग्रुप तैयार करके प्रचार में लगे थे।

शाहीर आत्माराम पाटील का 'संयुक्त महाराष्ट्र उग रहा है, मेरे सरकार, मुर्गे शोक से डाँवें रखो'' गीत चारों ओर फैल चुका था। स्व० शाहीर अमर शेख इसमें सबसे आगे थे।

शाहीर लीलाधर हेगड़े ने एक ग्रुप तैयार किया था। उसमें मैं, लीलाधर, दत्त ताठे, नीलू फूले, बापू देशमुख, भाऊजी बैंकर का ग्रुप बना। वैसे हम अपनी शक्ति के अनुसार प्रचार कर रहे थे। जहाँ भी सम्भव होता, वहाँ लीलाधर कार्यक्रम ठोक देता। फिर हमने वाड़ा जव्हार इलाकों का दौरा तय किया।

आज नाटक के दौरों में सारी सुख सुविधाएँ उपलब्ध हैं—तैयार स्टेज, मेकअप करना, स्टेज पर जाना। परन्तु उस समय सारी यात्रा वाहनों से। कई बार कई मील पैदल चलना होता। खाने पीने की फजीहत। हमारे कार्यक्रम गाँवों देहातों में ! अच्छा, संयुक्त महाराष्ट्र समिति से सारे दल एक हुए। फिर भी अपनी सीटें, जीती गयी सीटें अपने ही पास रहें, इसलिए वहाँ के कार्यकर्ता यह देख रहे थे कि अपना प्रभाव किस तरह पड़ेगा। अपनी अपनी कोशिशें कर रहे थे। इसलिए कुछ स्थानों पर हमारे लोग होने के बाद भी हमारी बड़ी बुरी हालत हुई।

कार्यक्रम दिन में तीन बार—सुबह, शाम, रात। हमारा कार्यक्रम डेढ़ दो घंटा चलता। वहीं चबूतरा या खलिहान या छोटा-सा टीला

दिखा कि उस पर चढ़कर ढोलक, झाँझ, मजीरा आदि बजाना शुरू। आवाज सुनकर यहाँ वहा से लोग जुट जाते। लोग एकत्रित होने के बाद गाना पावाडा (वीर गान) और सयुक्त महाराष्ट्र का फास (तमाशा) प्रस्तुत करते।

सडक पर जिस प्रकार कोई मजमेवाले या तावीज बेचने वालो का शागिद भीड इकट्ठी करने के लिए पहले ताश या जादू के खेल दिखाता है, और भीड जमा होने के बाद मुख्य आदमी अपना कायक्रम शुरू करता है, बस ही हमारे इस कायक्रम की स्थिति होती।

सुबह शाम लाइट की आवश्यकता न होती। परन्तु रात मे मशाल जलाकर हम कायक्रम करते।

एक बार तो कायक्रम पूरा करके अब सोने कहा जायें, यह समस्या उपस्थित हुई। ठड काफी थी। कपडे भी इने गिने। वैसे लीलाधर ने जानकारी दी थी कि वे लोग कट्टर विरोधी हैं।

'आपको ठहरने दिया गया तो हम निकाल बाहर करेंगे।' ऐसा कहकर हमारे करीबी लोग हम टाल रहे थे। भोजन के भी बुरे हाल थे। पर सायें कहा? अत मे एक ने एक बाडे मे जगह दी, पर एक शत पर कि 'सुबह उजाला होते ही यहा से चले जायें।'

मैंने तो चार दिनो से स्नान नही किया था, कपडे नही बदले थे। इस कारण मुझमे इतना परिवतन हो गया कि हर कोई यही समझता कि आदिवासी उम्मीदवार मैं ही हूँ। उनकी गलती नही थी। मैं वैसा लग ही रहा था।

अब हम 'नाइट' लेकर काम करते है। पर पहले नाटक लोकप्रिय होने तक बडी लगन से काम करते थे। उस समय किसी प्रकार का लालच नही था। न पैसे का और न ही नाम का। पर काम नेकी और लगन से करते।

हमारा कायक्रम कुछ इस प्रकार का होता—शाहीर महाराष्ट्र के बारे म अपनी भूमिका स्पष्ट करता (लीलाधर हेगडे)। फिर उसे विरोध करनेवाला (मैं) स्टेज पर आता। शाहीर अपनी भूमिका प्रस्तुत करता। विरोधी अपनी भूमिका रखता। यह सारा कुछ गद्य मे, कुछ पद्य म चलता।

कोई विरोधी नेता जो कुछ भी बोलता, वह सारा उस दिन के कार्यक्रम में शामिल किया जाता। इसलिए इस कार्यक्रम का बहुत प्रचार होता। वैसे यह कार्यक्रम मूल रूप से (गाना छोड़कर) एक घंटे का ही होता। पर धीरे धीरे दो घंटे तक पहुँच गया। क्योंकि यह जमने लगा। एक नमूना—

शाहीर संयुक्त महाराष्ट्र उग रहा है मेरे सरकार ! मुर्गे नीचे से ढाँके रखो !
विरोधी अरे ! नहीं बनेगा यह नहीं बनेगा !
शाहीर बीच में कौन बोला ?
विरोधी मैं बोला !
शाहीर आइए, नमस्कार ! आप कौन ?

इतना प्रश्न पूछने पर, विरोधी अपना नाम बताता और विरोध के कारण बताता। फिर शाहीर वह सब गलत साबित कर देता। इस तरह जुगलबंदी चलती और दोनों तू-तू मैं मैं पर उतर आते।

"जनता हमारे पीछे है।" विरोधी कहता।

"जनता अवश्य आपके पीछे है—कौन इंकार करता है ? पर आप जरा पीछे मुड़कर तो देखिए ! आप देखेंगे कि जनता जूते लिये खड़ी है !"

शाहीर चोट करता। फिर निर्णय जनता पर सौंप दिया जाता। दोनों नारे लगाते। जिसके नारे को प्रचंड समर्थन मिलता वह जीतता। फिर हारने वाला उसके अनुसार प्रचार करता।

एक का नारा बम्बई सहित संयुक्त महाराष्ट्र होना ही चाहिए !

दूसरे का नारा द्विभाषिकों की विजय हो !

मैं विरोधी था। कभी कभी जानबूझकर दर्शकों में से 'बन्द करो ! बन्द करो !!' चिल्लाता हुआ स्टेज पर जाता। उस समय बड़ा मजा आता। परन्तु एक स्थान पर मुझे सचमुच का विरोधी समझकर लोगों ने इस कदर हाथ दिखाये कि दो तीन दिन बदन दुखता रहा।

सच तो यह था कि अभिनेता बनने के लिए मैं काफी प्रयत्नशील था। इसी बीच संयुक्त महाराष्ट्र का आन्दोलन शुरू हुआ था और मेरी इच्छा पूरी हुई।

मैं नौकरी कर रहा था। बाप ने भागीदार से लेकर दूकान मुझे सौंप दी। अब हमारे घर पर जनसंख्या बढ़ गयी थी। मेरे दो बच्चे थे। भाई की शादी हुई। उसे दूकान में रखा। एक बहन की शादी की।

बाप को दमे की तकलीफ थी। अब वह गली में न बैठता। दूकान में बैठता था। जापानी कुर्सियों का युग आ गया था। मैंने चन्द्रकांत कावतकर और एडलिर नाईक से उधार पैसे लिये। तेरह सौ में चार कुर्सियाँ लाया पर आज वही कुर्सी तेरह सौ की एक।

नौकरी करते, कलापथक व दादा कोंडके के साथ नाच करते दूकान चला रहा था। परन्तु बाप को पसन्द न था। उसको लगता जिस धन्धे में न फायदा, न नुकसान वह धंधा करना क्या? क्योंकि मुझे वहीं से पैसे न मिलते। उसका एक ही कहना था—कलाकार बनना अर्थात भिखारी के लक्षण हैं। कौन सा कलाकार ऊपर उठ पाया है?

मैं कलापथक के कार्यक्रम से घर लौटता तब कार्यक्रम का सारा नशा उतर जाता, सारी प्रशंसा भूल जाती—बाप का डर लगता। उस दमा होने के कारण हम जिस बिल्डिंग में रहते थे, उसके सामने वह सोता। पर वह लेटकर न सो सकता, बैठकर सोता, क्योंकि लेटा कि दमे का उबाल आता। इसलिए वह बैठे-बैठे ही सोता।

वैसे उसकी नींद बड़ी जागृत थी। मैं कितने ही धीमे कदमों से बिल्डिंग में घुसूँ, उसे खबर लग जाती। फिर अनाप-शनाप गाली देता। आसपास वाले जाग जाते।

यह हमेशा की बात थी। मुझे और बिल्डिंग को इसकी आदत हो गयी थी। फिर भी मन हमेशा सहमा-सहमा रहता।

एक बार दादा कोठके और गिरकर मास्टर रात मे बारह् बजे मुझे ढूढते हुए आये। भाई कायशम मिला था और सुबह ही रवाना होना था। यह खबर पहुँचाने वे दोनो आये थे।

मैं दूकान क सामने सोया था। बाप बिल्डिग के सामने सोया था। वे दोनो घर क सामने आय। सारा फुटपाथ खचाखच भरा था। व आपस मे बात रहे थे 'यही घर है क्या ?' सोनेवाला म स एक बीडी पी रहा था। उसने पहचान लिया कि वे दोना किमी को ढूढ रह हैं।

कौन का चाहिए ? उसने एक से पूछा।

राम नगरकर कहाँ रहता है ? ' दादा ने जानकारी चाही।

"राम नगरकर यहाँ कोई नही है। उसने बताया।

दादा मुश्किल मे पड गये। स्वय को सभाला। सोचा।

'पोस्ट आफिस म काम करनेवाला रामचन्द्र कहाँ रहता है ?" दादा फिर पूछन लगा।

'हाँ, हाँ, ऐसा क्या नही कहते कि पोस्टवाला रामभाऊ चाहिए! उधर देखिए उसका बाप सोया है, उसे ही पूछिए।" उसने कहा।

बाप बैठा था। य आदमी बता रहा है कि सोया है! दादा को हँसी आ गयी। फिर उन्होने टार्च की रोशनी डालकर पुकारा, "बाबा! ओ बाऽबा!' पर बाबा माय है, यह मालूम होने पर उनकी बात सही लगी।

'बाबा ओ बाबा!' गिरकर मास्टर जरा जोर से पुकार उठे। मेरा बाप उठ गया। सिर पर चादर थी। वह खिसकाकर देखा कि कौन है। फिर सो गया। परन्तु पुकार फिर कानो मे गूजने लगी तो पूछा, "क्या चाहिए ? '

"राम कहाँ है ?" दादा ने पूछा।

वह अपनी माँ लाने गया है। इतना कहकर बाप फिर सो गया।

बाप के जवाब स वे दोनो भौचक रह गये। जाग रह उस व्यक्ति ने सब सुन लिया। जैस कुछ याद आ गया हो उसे— 'आप ऐसा कीजिए, उसकी दूकान के सामने देख लीजिए।'

दादा न उसे मन ही मन एक गाली ठोक दी ससाले, पहले ही क्यों नही बता दिया ? यह सुनना तो न पडता!' फिर जहाँ मैं सोया था,

उधर आये और मुझे उठाया ।

दादा मेरे पैर पकडते बोला, "धन्य है तू कि ऐसे बाप के घर पैदा हुआ !"

उम्र बढ रही थी। घर की जिम्मेदारियां बढ रही थी। कुछ करने की बात मन मे उफनती रहती। कोई नया काम शुरू करूँ तो सेवादल के मित्र साथ देंगे। ऐसे में क्या करूँ—सोचने लगा। मैं तलाश मे था कि कही दूकान खोलने की व्यवस्था हो जाये। पूछताछ कर रहा था। दूकान चल गयी, तो अपनी कदर होगी, बाप बेटे के बारे मे अच्छे उदगार निकालेगा। लडका सिर्फ नाचता नही, उसका ध्यान घर की ओर भी है—ऐसा वह कह सकेगा।। परन्तु संयोग न बन पाता। पुडलिक नाईक, चन्द्रकान्त कायतकर, अनन्त सालुके, नन्दा तिरोडकर—ये सेवा दल के स्नेही लोग ! वैसे मेरे खास मित्र।

ये सिर्फ बाल बनवाने ही न आते बल्कि किसी भी समस्या के लिए 'ना' न कहते, इतना प्रेम था। उन्हे लगता, बेचारा काम दूकान, घर की जिम्मेदारी संभालकर सब करता है। हम इसके लिए कुछ करना चाहिए।

संयोग से गिरगाव मे झावबा राममंदिर के पास 'कोलवा हेअर कटिंग सलून' चलाने के लिए लिया। करार पांच वर्ष का था। चार हजार डिपाजिट। हर माह सवा सौ किराया।

यह दूकान इस तरह सजायी कि बस देखते रहिए ! सिर्फ सजायी ही नही, सारे गिरगाव मे पहला एयर कडीशन सलून बनाया। सारा खर्च बारह हजार। पर यह सारा भार मित्रों पर था।

वैसे यह दूकान अच्छे इलाके मे थी। बिलकुल नाके के पास। सामने ही भाई जीवनजी लेन मे समाजवादियो का प्रमुख कार्यालय। इसी इलाके मे सेवादल मित्र मंडल। ऐसे मे दूकान शुरू करने के बाद ग्राहको की कभी कमी नही रही।

दूकान सजकर तैयार हुई। *उसका उदघाटन श्री एस० एम० जोशी* के करकमलो से सम्पन्न होना तय हुआ। उस समय संयुक्त महाराष्ट्र का

आन्दोलन जारी पर था। एस० एम० उसमें अगुआ थे। नहीं, एस० एम० अर्थात संयुक्त महाराष्ट्र, कुछ इस तरह का समीकरण बन गया था।

उनके द्वारा दूकान का उद्घाटन करने का तय हुआ और मैंने उनसे मुलाकात की। अण्णा ऐसी ऐसी बात है, आयेंगे?" ऐसा पूछा। अण्णा बोले, 'आऊँगा भाई।"

मैंने यह खबर बाप को बतायी। बाप एकदम खुश। उसने तो यह जानकारी बड़यो को बढ़ा चढ़ाकर बतायी।

वह दिन आ धमका। दूकान सुबह ही खोल ली थी। अण्णा बाल कटवाकर जायें, सिर्फ यह इच्छा थी। अण्णा आनेवाले हैं, इसलिए बाप दूल्हे की तरह सज-सँवरकर दूकान में आया।

मैं डॉक्टर मडलिक के घर से अण्णा को टैक्सी में ले आया। एस० एम० जोशी आ रहे हैं यह खबर दावानल-सी फैल गयी। अण्णा ने दूकान में कदम रखा। उन्हें देखने के लिए अपार भीड़।

अण्णा दूकान में आये। दरवाज़ा बन्द किया। दूकान का सामने वाला हिस्सा काँच का था। अण्णा भीतर आये, फिर भी बाहर से लोग काँच में से देख रहे थे। कमोबेश काँच से टकरा रहे थे। मेरा बाप चिल्लाया। सामने आकर कहने लगा, "ए भड़वो, पीछे सरको! क्या देख रहे हो? काँच फूट जायेंगे न! हटो पीछे, वे क्या देखने की चीज़ हैं? उन्हें क्या सोना लगा है?

सौभाग्य से अण्णा ने यह सब नहीं सुना।

अण्णा के बाल काटे शैम्पू लगाया, फिर बाप से उनका परिचय कराया। अण्णा ने हाथ जोड़कर नमस्कार किया। परन्तु मेरे बाप ने साहब की तरह हाथ आगे बढ़ा दिया। अण्णा ने हाथ मिलाया। बाप ने हाथ अच्छी तरह दबाकर रखा। मिनट-आधा मिनट छोड़ा ही नहीं। और एस० एम० जोशी की तबीयत थी नब्बे पौंड की, बाप डेढ़ सौ पौंड का। अण्णा के हाथ का क्या हुआ होगा, यह तो अण्णा ही जानें।

"अपुन ने एस० एम० जोशी से हाथ मिलाया, बातें की। इतना ही नहीं, फोटो खिंचवाया।' यह बात वह सबको सुनाता।

एक समय की बात है, शाम के चार बजे होंगे। बाप चाय पीकर गैलरी मे पान सुपारी खा रहा था। इतने मे, तुकारामबुवा अपने घर से बाहर निकले। मेरे बाप को देखकर पूछा, "बिठोबा सेठ, भाषण सुनने आयेंगे ?"

"कहाँ ?"

"शिवाजी पार्क मे एस० एम० जोशी बोलनेवाले है।"

एस० एम० जोशी का नाम सुनते ही बाप बोला, "कौन एस० एम० जोशी। हूँह ! उनका भाषण क्या सुनना ?"

"क्या मतलब ?" तुकारामबुवा कुछ चौंक गये।

"अरे एस० एम० जोशी से मैंने हाथ मिलाया है। साथ मे फोटो भी खिचाया है। पास बैठकर बातचीत की है। ऐसे मे अब उनका भाषण, वह भी दूर बैठकर सुनने मे क्या रखा है ?"

इसी तरह की मेरे बाप की एक और बात ! एक समय की बात है, श्री शामराव पटवर्धन सेवादल प्रमुख थे, वह दूकान मे बाल बनवाने आये। मैं, मेरा बाप—हम बाहर बैठे थे। उन्हे देखते ही मैं उठ खडा हुआ। अदब से नमस्कार किया। बाप से परिचय करवाया कि ये महाराष्ट्र सेवादल के प्रमुख हैं।

जिस सेवादल मे अपना लडका जाता है, उस सेवादल के प्रमुख को अपनी दूकान म देखकर बाप को बडी खुशी हुई। उसने आग्रहपूर्वक चाय पिलायी और कहा, "स्नेह रखिए, लडके का ध्यान रखिएगा।"

कुर्सी खाली होते ही मैंने शामराव को बाल काटने के लिए बुलाया।। मैं फिर बाप के पास आकर बैठ गया। फिर बाप के साथ शामराव की बातें शुरू की।

शामराव पटवर्धन क्रांति वीर हैं। 1942 मे वे भूमिगत थे। उन्होंने जेजुरी का खडोबा लूटा। सारा सोना लूटा। वह सोना एक लडकी को पत्नी के रूप म साथ लेकर उसे पहनाया और बम्बई आये। सोना बेचकर क्रांति के लिए पैसा जमा किया—इस तरह शामराव के गुणों का बखान कर रहा था। हमारा कुलदेवता खडोबा ! वह इस आदमी ने लूट लिया ! यह आदमी अपने बेटे की पहचान का ! बाप असमजस मे था कि क्या करे ! बाप सोचता रहा।

शामराव बाल बनवाकर बाहर आये। बाप को नमस्कार किया। परन्तु बाप ने कुछ इस तरह मुंह बिचकाया कि शामराव देखते रह गये। उन्हें कुछ समझ में नहीं आया। थोड़ी देर पहले यही आदमी आग्रहपूर्वक चाय पिला रहा था अब इसे क्या हो गया? मैंने उनके साथ चार कदम जाकर सब बता दिया। वे खिलखिलाकर हँस पड़े।

गिरगाव में दूकान खोली तो उसका बड़ा फायदा हुआ। सेवादल के, पार्टी के कार्यकर्ताओं के लिए यह पास पड़ता। वे दूकान में आने लगे। सांसद मधु दंडवते शिवाजीराव पाटिल, बबन डिसोजा वसंत हलेकर, पुंडलिक नाइक चन्द्रकान्त कावनकर अनन्त सोलुंके, नारायण नावडे, प्रा० सदानन्द वर्दे प्रा० वसंत बापट—ये सारे लोग महीने में एकाध बार आने लगे। कुछ कुछ लोग गप्पें मारने हो विशेष रूप से आने लगे। सेवा दल के पार्टी के जो फुल-टाइम कार्यकर्ता थे और जो दूकान में आते, उनके बाल और दाढ़ी बनाने के पैसे मैं न लेता। दूकान में यह बात सबको बता दी थी।

एक बार लीलाधर हेगड़े बाल बनवाने आये। शाम का समय होगा। बाल बनाये। मुझसे कहा, 'चलो, मार्केट तक हो आयें।' अब लीलाधर कुछ कहता तो मैं 'ना' न कहता।

उनकी बहन मैजेस्टिक सिनेमा की बगल वाली गली में मार्वे व्यायाम स्कूल के पास रहती थी। हम उधर पहुँचे। उनके घर सत्य नारायण की पूजा थी।

हमने नमस्कार किया। प्रसाद लिया। थोड़ी देर बैठने के बाद चाय लायी गयी। हमारी बगल में लीलाधर का भाजा बैठा था। चाय पीते पीते बोला मामा, कैसे कैसे लोग होते है!"

सुनकर लीलाधर ने पूछा, 'किसके बारे में बोल रहे हो?'

वह बोला, 'अरे झावबा राममंदिर के पास एक एयर कंडीशन सैलून

खुला है। उसका मालिक एक दारूवाला (हाथ भट्टीवाला)। दारू म खूब कमा लिया। अब इस धंधे म घुसा है और मजे की बात यह है कि वह दादा लोगो के बाल मुफ्त म काट देता है।"

उसकी इस बात पर मैं लीलाधर की ओर और लीलाधर मेरी ओर मुंह फाड़े देख रहे थे।

गिरगाव की दूकान व्यवस्थित रूप से चल निकली। घर-गृहस्थी कुछ सुधर गयी। बाप खुश हुआ। पर मैं खुश न था। मेरी बड़ी इच्छा थी कि मैं कलाकार बनूं। कोशिश जारी थी। अच्छे नाटक देखता जा जा अपने फायदे का था लेता रहता, यह मेरी आदत बन गयी।

एक बार अखबार म विज्ञापन आया—

'सिनेमा नाटक का अभिनय शास्त्रीय पद्धति स सिखाया जायगा। मिलें श्रीमती स्नेहलता प्रधान नीलकमल पेडर रोड बम्बई।

इस विज्ञापन को पढ़ते ही मन म निश्चय कर लिया कि इसम भाग लेंगे। इसलिए एक दिन सुबह ग्यारह बजे उस महिला स मिलने नील कमल-लाक म पहुँच गया। वहाँ गया तो सही पर ड्रेस पोस्टमन की थी।

पोस्टमन की ड्रेस पहनकर दूकान के कई काम किये हैं। हम छोटे दूकानदार हैं यह बात सही है पर व्यवहार और नियमितता का हमसे कोई मेल नहीं। इसलिए हम हमेशा कठिनाई म। इनकिट्स बिल, म्यूनिसपलिटी के काम शॉप एक्ट की नियमितता—सब कहिनायी। सिर पर आते ही भागदौड़। इसके पैर पकड़ उसके पैर पकड़। बिलकुल नत मस्तक। पोस्टमैन के बारे म समाज म कुछ अच्छी भावनाएँ हैं। पोस्ट मैन अर्थात गरीब प्राणी। मैं गरीब दिखूं मेरा काम हो इस कल्पना म मैं पोस्टमन की ड्रेस पहनता।

स्नेहप्रभाबाई प्रधान के घर जाते समय मैंने जान-बूझकर यह ड्रेस पहनी। बेल दबायी। किसी ने झरोखे म मुझे देखा और दरवाज़ा खोला गया। बहनजी के देखते ही कैसे बोलना है कैसे बताना है यह सब कुछ मैंने मन म तय कर लिया था। दरवाज़ा खुलते ही मैं तैयार हो गया।

पर दरवाज़े पर बहनजी की महरी थी।

कौन मँगता है ?" मेरी ओर देखकर उसने पूछा।

'बहनजी हैं ?' मैंने पूछा।

"कौन है, बेअरा ?" भीतर से बहनजी की आवाज़ आयी।

"पोस्टमैन है " महरी ने जवाब दिया।

'अन्दर बुलाओ ! ' बाई ने कहा।

मैं सहमते सहमते भीतर गया। प्रधान बाई भीतर से आयी। बगल म अंग्रेज़ी बिल्ली। मुझे देखकर उन्हें बहुत आश्चय नहीं हुआ होगा, पर मुझे हुआ क्योंकि मैं उन्हें देखने के लिए उत्सुक था। बाई को परदे पर कई भूमिकाओं मे देख चुका था परन्तु मन म यदि किसी भूमिका ने छाप छोडी तो वह नाटक था— रानी का बाग।"

वे आयीं। मैंने नमस्कार किया। बिल्ली पर हाथ फिराती, मेरी ओर देखकर अनदेखा करती हुई कुर्सी पर बैठी और बोली, "पोस्टमन, क्या लाया ? वी० पी० पार्सल या मनीआडर ?"

हो गयी न मुश्किल ! मेरी ड्रेस देखकर बाई को लगा, पोस्टमैन का ही काम होगा !

"नहीं अर्थात डाक के काम से नहीं आया। आपने जो विज्ञापन दिया था, उस पढकर आया हूँ।' मैंने बड़े अदब से अपने आने का कारण बताया।

मेरे आने का कारण सुनकर बाई एकदम चुप ! मेरी ओर देखती रह गयी। हाथ की बिल्ली कब छूट गयी, उन्हें भी नहीं मालूम। मेरी ओर देखकर कहा, "उस कुर्सी पर बैठो !

इस एक वाक्य से मैं उस बाई तक पहुँच गया। मन मे आया कि मैं अंग्रेज़ी बिल्ली बन जाऊँ और बाई की गोद मे दुबककर कहूँ, बाई, मुझे कुछ सिखाइए न !

बेअरा चाय लाओ ! चाय लेंगे न ?

मुझे कुछ भी बोलना नहीं सूझ रहा था।

अरे बैठो कोई सकोच मत करो !" बाई फिर बोली।

मैं कुर्सी पर बैठ गया। चाय आयी। पी।

'किस पोस्ट आफिस में हो ?"

"जी० पी० ओ० । डिलिवरी डिपार्टमेंट।"

"तुम्हें कुल पगार कितनी है ?"

"कुल एक सौ चालीस रुपये।"

मेरी तनख्वाह का आकड़ा सुनकर बाई क्षण भर चुप रही।

"तुम्हारी इतनी पगार ! मेरी फीस तुम्हें पोसायेगी ?"

'पर आपकी फीस कितनी है ?"

"ट्यू फीस एक सौ पचास रुपये, और प्रवेश फीस।"

फीस का आंकड़ा और मेरी पगार का आकड़ा, दोनो एक दूसरे के सामने ताल ठोककर खड़े हो गये। ये कैसे जमेगा ? मैंने विचार किया। जमेगा नहीं मैंने सोच लिया।

"आऊँगा फिर !" मैंने विदा के स्वर में नमस्कार किया।

'क्यों रे, जा रहा है ?" बाई चकित होती बोली।

इसलिए पगार एक सौ चालीस फीस एक सौ पचास ! कैसे जमेगा ?" मैंने अपनी व्यथा कह डाली।

बाई हँसी। हँसते हँसते कहा, "तू बैठ तो सही !"

मैं बैठा।

वे बोली, "तुझे सीखना है न ? तो तू कितनी फीस दे सकेगा ?'

बाई का सवाल सुनकर मैं अवाक रह गया। क्या उत्तर दूं, समझ न पड़ता। मैं चुप था।

"अरे बोल भी। तेरी इच्छा है न सीखने की ? फिर बता न कि मैं इतनी फीस दे सकूँगा।"

फिर भी मैं चुप।

' कि बाई मुफ्त सिखाएँगी, यह सोचकर आया था ?'

ऐसी बात नहीं है। परंतु मुझे लगा, पंद्रह-बीस रुपये होंग।' मैंने अनजान में कह दिया।

बाई कुछ देर चुप रही। गहरे कहीं सोच रही थी। हँसती हुई बोली, 'पंद्रह रुपये देगा न ? फिर आ जा !"

कितनी खुशी हुई थी, क्या बताऊँ ! बाई ने मेरा पता लिखा। क्लास

कहां और कितने बजे लगेगी, इसकी जानकारी दी। मैंने बड़े उत्साह से बाई से विदा ली।

जब, बाई ने प्रेस का फरेंस बुलायी, तब क्लास शुरू करने का उद्देश्य, क्लास में आये विद्यार्थियों की जानकारी दी, साथ ही इसका भी विशेष रूप से उल्लेख किया कि मेरे क्लास में एक पोस्टमैन आया है, इसका मुझे गर्व है।

फिर मैं बाई की अभिनय की क्लास में जाने लगा। क्लास का समय सात से नौ। हफ्ते में तीन दिन। क्लास का स्थान था—विट्ठलभाई पटेल रोड, कांग्रेस हाउस के पास गोखले हाईस्कूल।

केन्द्र सरकार का सिनेमा इंस्टीट्यूट पुणे में। परन्तु वहां सीखने के लिए कितने महाराष्ट्रीयन हैं? गिनती के। वैसे ही बाई के क्लास की हालत हुई। मराठी लड़के तीन-चार! बाकी सब पंजाबी सिंधी, गुजराती। क्लास में कुल सत्तर अस्सी लड़के। उनमें से पचीस-तीस लड़कियां। फिर क्या था—मजे ही मजे थे। अच्छा, ये सारे लड़के टांय टांय अंग्रेजी बोलते। मेरी मुश्किल। फिर भी मैंने कुछ जोड़ लिया। लड़के मुझसे अंग्रेजी में बोलते। वैसे मैं थोड़ा बहुत समझ लेता पर अपना उत्तर मराठी में या टूटी फूटी हिन्दी में देता।

क्लास का पहला दिन मुझे अब भी अच्छी तरह याद है। बाई की सूचनानुसार सभी लड़के शाम को सात बजे हाथों में कापियाँ लेकर हाजिर रहते। बाई आयीं, सब उठ खड़े हुए। 'सिट डाउन!' बाई बोलीं। सब बैठ गये। सबकी ओर एक मुसकान फेंकी। पर, मेरी ओर ऐसे देखा कि तू आया खुशी हुई। कम से कम मुझे ऐसा लगा।

बाई ने अंग्रेजी में क्लास शुरू की। सबकी पहचान। क्लास खोलने का उद्देश्य आदि आदि।

बाई बता रही थीं। लड़के लिख रहे थे। मैं भी लिख रहा था। नहीं, लिखने का दिखावा कर रहा था।

'बाई, मुझे अंग्रेजी नहीं आती'—जोर से चिल्लाने की इच्छा हुई। पर आसपास खूबसूरत लड़कियाँ! फलतू भद्द नहीं होनी चाहिए!

इस तरह क्लास के दिन शुरू हुए।

बाई बताती, हम सब लिखते। बीच म वे पूछती, 'समझ म आया ?' यह सब अंग्रेजी मे।

सब कहते "यस।"

मैं चुप ही रहता। कभी अचानक ही मुझसे मराठी म पूछ लेती "तुम्हे समझ म आया ?"

अब मैं क्यो कर 'ना' कहता ?

पहला हफ्ता लिखने मे निकल गया। फिर बाई ने यह बताना शुरू किया कि अभिनय क्या चीज है।

"मान लीजिए, सुबह के ग्यारह बजे हैं। रिमझिम, या कहिए मूसलाधार बारिश हो रही है। आप एक इमारत म खडे हैं। आपको कही जाने की जल्दी है। आपके पास छाता नही है। आप टैक्सी को आवाज देते हैं। टैक्सी आती है। आप दौडते दौडते जाते हैं और टैक्सी म बैठते हैं।"

यह सब अपन जीवन की बात। कभी नही देखी हुई। पर बाई ने सबका अभिनय के लिए कहा। पर क्या बताऊँ ? लडके लडकियो ने जो-जो किया, उस पर हँसें या रोयें ? सब बनावटीपन। उसम मैं भी था ही। पर बाई न स्वय करके दिखाया। कितना जीवन्त। कितना सहज। अपन तो, भई, मान गये बाई को। ऐसी कितनी ही बातें बाई बताती। हमारी ओर स करवाती। प्रत्यक्ष करके दिखाती।

सीखने की बडी इच्छा थी, पर क्लास छोडनी पडी। छोडने के कारण थे—एक तो अंग्रेजी न आती थी और दूसरे घरेलू अडचनें।

मैंने अनायास ही क्लास छोड दी।

अब कोई भी बात बताकर क्या छोडी जाये। फिर छोडने का क्या मजा ?

यह सही है कि मैंने क्लास छोड दी । अब स्नेहलताबाई को मिलने की क्या जरूरत ? पर जब चीनी आक्रमण हुआ तब हमने चीनी आक्रमण का 'फार्स' तैयार किया । उसमें मैं, शाहीर दादा कोंडके, नीलू फुले काम करते थे । शाहीर की भूमिका में नाना, मैं उनकी विरोधी भूमिका में । शाहीर अपने गीतों में यह सब बताता है कि ये कम्युनिस्ट कैसे हैं उनके लाल चीन से क्या ताल्लुकात हैं ये लोग देश को किस तरह नरक में बदलना चाहते हैं । मैं कम्युनिस्ट के रूप में आता हूँ और उनका सामना करता हूँ।

श्री बालासाहब ठाकरे के मार्मिक साप्ताहिक की सालगिरह पर हमारा कार्यक्रम हुआ । यह समारोह बालमोहन विद्यामंदिर के सभागृह में था । समारोह में बड़े बड़े लोग पधारे थे । प्रारम्भ में कुछ अन्य कार्यक्रम हुए । अन्त में हमारा कार्यक्रम । हमारा यह कार्यक्रम डेढ़ घंटा चलता । कार्यक्रम शुरू हुआ । मेरी एंट्री देर से थी । मैंने एंट्री ली । काम क्रम जमने लगा । लोग हँस रहे थे । जब कार्यक्रम चल रहा था तो मैंने सभागृह में एक सरसरी निगाह दौड़ायी थी । पहली ही लाइन में स्नेहप्रभा प्रधानबाई बैठी थी । मन में हिचकिचाया पर कार्यक्रम की रंगानी में कोई बाधा नहीं आयी । उलटे कार्यक्रम अपेक्षा से अधिक अच्छा हुआ ।

कार्यक्रम खत्म हुआ । हम ग्रीन रूम में सामान सहेज रहे थे । बड़े लोग मिलने आ रहे थे । स्नेहप्रभा प्रधान आयीं । मैंने नमस्कार करते हुए कहा, 'बाई, आपका क्लास छोड़ना पड़ा जम नहीं पाया ।'

अरे मूर्ख, तुझे क्या सिखाना ?" लाड़ में चपत लगाती वे बोलीं ।

एक सच्चा पोस्टमैन किस तरह ईमानदारी से काम करता है, नौकर रहते हुए रात के स्कूल में जाकर पढ़ता है पोस्टमैन की परीक्षा देता है और पोस्टमैन बनता है । उसकी पत्नी है एक बच्चा है और बाप । उनके साथ वह किस तरह प्रेम से रहता है पत्नी से बेहद प्यार करता है बच्चे के अध्ययन की ओर ध्यान देता है । बाप को किस तरह रामायण पढ़कर सुनाता है फिर नाइट स्कूल में जाता है । दिन भर विभाग की नौकरी ईमानदारी से करता है, आदि आदि । इस कहानी पर एक डाक्युमेंटरी

फिल्म बनने वाली थी और इस डॉक्युमेंटरी के लिए चुनाव हुआ—मुझ जैसे कामचोर आदमी का !

डाक विभाग ने इस तरह की डॉक्युमेंटरी बनाने का तय किया। दिल्ली से विशेष आदेश आये। फिल्म्स डिवीजन ने यह जिम्मेदारी श्री गोविन्द सरैया को सौंपी। सरैया ने तुरन्त काम शुरू कर दिया।

सरैया ने बम्बई के प्रमुख डिलिवरी पोस्ट ऑफिस, अर्थात दादर, गिरगाँव, माडवी, कालबादवी और फोर्ट जी० पी० ओ० में एक अधिकृत पत्र भेजा कि 'पोस्टमैन का काम करते हुए जिन जिनको विशेष अनुभव प्राप्त हुए हों, वे लिखकर भेजें।'

ऐसा नोटिस हमारे यहाँ भी लगा। नोटिस लगा पर यदि पत्र भी पत्र लिखना हो तो कितनी गलतियाँ होंगी। फिर अनुभव लिखना एक अलग बात थी। वे क्या बनाते कि कैसा काम है !

डॉक्युमेंटरी के लिए नोटिस लगे दो महीने हो गये। किसी भी पोस्ट आफिस में किसी भी पोस्टमैन ने अपना अनुभव नहीं लिखा। फिर गोविन्द सरैया साहब स्वयं पोस्ट आफिसों में जाकर पोस्टमैनों से मिलकर बातें करके जानकारी इकट्ठी करने लगे।

वे हमारे विभाग में भी आये। हमारे साथ गप्पें कीं। हम बातें तो कर रहे थे पर सच में देखा जाये तो हँसी मजाक और बताते समय बढ़ा चढ़ाकर कर बता रहे थे। बड़ी मात्रा में मैं सबसे आगे। मेरा फालतूपन देखकर वे मेरी ओर मुड़े—"पोस्टमैन तुम्हारा शुभ नाम क्या है ?"

मैंने अपना नाम बताया

"आपकी उमर कितनी ?" सरैया ने खुशी से पूछा।

"होगी चौबीस पचीस ।"

"कितने साल से विभाग में काम करते हो ?"

"सात-आठ साल हुए होंगे।"

इस तरह वे पूछ रहे थे। मैं बता रहा था। वे लिखते जाते। आसपास खड़े पोस्टमैन बंधु इस तरह देख रहे थे, ज्यों कह रहे हों, 'मुए को हमेशा हँसी-मजाक ही सूझता है, है न ?'

मैं घबराया। लगा, फालतू बातें की मैंने, अब यह साहब को जाकर

क्योंकि आठ दिन पहले ही एक चेक के सिलसिले मे वह पकडा गया था। वैसे वह मेरी पहचान का था, दोस्ती भी थी, कई बार मैं उसकी 'बीट' (ड्यूटी) देखता। कही उसने मुझे तो नही फँसा डाला ? मैं चकरा गया।

दूसरे दिन ओवरशर फिर घर मे हाजिर। मैं डर गया। उसी के साथ विभाग मे गया। यह खबर सारे पोस्टमैनो को मालूम हो गयी थी। सारा विभाग सशकित नजरो से देखने लगा। विभाग के साहब, हेड-ओवरशर भी तैयार थे। साहब ने बडे साहब को फोन किया तो जवाब मिला, "आइए!"

मैं बीच मे और बाकी सब मेरे दोनो ओर—इस तरह का मोर्चा, साहब की ओर बढा। 'अब यह मरे!' ऐसा सोचकर विभाग के लोगो ने नि श्वास छोडा।

हमारा बडा साहब जी० पी० ओ० मे ही रहा करता था। बिलकुल टॉप फ्लोर पर। स्पेशल जगह। हम चारो उनके घर गये। बेल दबायी। दरवाजा खुला। हम भीतर गये। नौकर ने हमे बैठने को कहा। मेरी छाती धडक रही थी।

इतने मे साहब आये। वे प्रसन्न थे। आते ही सबको नमस्ते किया। विशेष आश्चर्य की बात यह रही कि आते ही उन्होने सबके लिए चाय बनाने को कहा। हम सब एक-दूसरे की ओर ताक रहे थे।

विभाग के साहब ने "नगरकर को लाया हूँ!" ऐसी सूचना दी। परन्तु बडे साहब ने जो सुनाया, उसे सुनकर मेरे समेत सब चित्त हो गये। मुह फाडे सुन रहे थे। उन्होंने बताया, 'अपने विभाग की ओर से जो एक डॉक्युमेंटरी निकल रही है, उसमे हमारे जी० पी० ओ० की ओर से श्री नगरकर का चुनाव श्री सरैया ने किया है। मैंने अपनी सह-मति दे दी है। इस खुशी को जाहिर करने के लिए मैंने आपको घर पर बुलाया है।'

चाय पीकर हम सब नमस्कार करके बाहर निकले। विभाग के साहब ने और हेड-ओवरशर ने प्रेमपूर्वक बधाई दी। उस बधाई के पीछे एक और भाव था, 'हम जो सोचते हैं बाबा, तू उसमे से नही है। वे

भाग गये। मैं और आवरदार विभाग की ओर बढ़े। सवा आठ बजे होंगे। साढ़े आठ की डिलिवरी। मैंने अपने ओवरदार से कहा, 'आवरदार साहब, चलिए चाय लें।"

अब मुझे क्या काम निकालना है ?" उसने मज़ाक में कहा।

"यह खुशी की चाय है, चलिए!"

मैं उसे घसीटता हुआ होटल ले गया। नाश्ता किया। साढ़े आठ बजे विभाग में पहुँचे। सारे पोस्टमैन बीट पर निकल चुके थे। आवरदार मेरी ओर ऐसे देख रहे थे, मानो कह रहे हों 'बीट टालने के लिए तूने यह चालाकी की ?'

'श्री राम विट्ठल नगरकर पोस्टमैन, डिलीवरी, डिपार्टमेंट, जी० पी० ओ० का डाक विभाग की ओर से निकलने वाली डॉक्यूमेंटरी के लिए चुनाव हुआ है। उन्हें जब जब उधर जाना हो, तब-तब बिना किसी कठिनाई के मुक्त किया जाय।" इस तरह का ऑर्डर जारी हुआ। यह जी० पी० ओ० के सभी विभाग अर्थात पी० पी० ओ० के मातहत सारे असिस्टेंटों को दिया गया।

सूचना मिलते ही मैं डेस के साथ फिल्म्स डिवीज़न पैडर रोड गया। सरैया वहाँ थे। नमस्कार हुआ। मेरा स्टिल फोटो खींचा गया।

सचमुच मेरे लिए सब नया था। फिल्म बनती थी यह सही था, पर सब मूक था। सरैया ने सारा कुछ विस्तार से समझा दिया, धीरज बँधाया और काम की शुरुआत हुई।

स्टूडियो में चार दिन शूटिंग हुई। चाय, दोपहर का भोजन मुझे वहाँ मिल रहा था। डिलाईल रोड में पत्र वितरण की शूटिंग हुई। आयन हाई स्कूल में नाइट स्कूल की शूटिंग हुई। गोरेगाँव और कालानी में एक डाकबँगला था वहाँ भी शूटिंग थी। हम वहाँ मोटर से गये। दो मोटरें, एक स्टेशन-वैगन, एक लारी। मैं, सरैया साहब कैमरा

मैन, दो महिलाएँ, और पुराने समय का एक अभिनेता साथ थे।

हमारी मोटर मे तीन महिलाएँ थी—एक बुढिया, एक सत्रह अठारह साल की, एक बीस बाईस की। यह महिला मेरा पत्नी का रोल करती।

मैं पिक्चर का हीरो, इसलिए मैं अपने-आपको कुछ ज्यादा ही समझ बैठा। मुझे बहुत जानकारी है, ऐसी कुछ बातें मैं उनके साथ करता।

हम उस डाकबंगले मे पहुँचे। सीन का हिस्सा कुछ इस तरह था—पोस्टमैन एक रजिस्टर लाता है। वह बेल बजाता है। नौकर आता है। पोस्टमैन को देखकर मालिक को आवाज देता है। फिर मालिक आता है रजिस्टर देखता है। वह पत्नी को आवाज देता है। उसके हाथ मे रजिस्टर देता है। वह देखती है कि रजिस्टर उसकी बेटी का है। वह बाथरूम मे। उसके आने तक पोस्टमैन रुकता है। वह आती है। "रजिस्टर वापस भेजिए, वह कहती है। पोस्टमन वापस चला जाता है। यह सारा दिखाने का उद्देश्य यह था कि पोस्टमैन का कितना समय बेकार चला जाता है। अन्त मे रजिस्टर वापस भेजते हैं। यह सब बातें बडी मजेदार थी।

लॉरी से लाइट का सारा सामान लाया गया था। लाइट लगायी जा रही थी। सरैया मुझे और अन्य कलाकारों को समझा रहे थे। कैमरा किस तरह एडजस्ट करना चाहिए, यह कैमरामैन देख रहा था और लाइट वाले को सूचनाएं दे रहा था।

सब कुछ तैयार था। शूटिंग का काम शुरू हुआ। शॉट पर शॉट लिये जा रहे थे। लंच का समय हुआ। हम सब कॉलोनी की कटीन म गये।

लाइट वाली मडली के लोग अपना अपना खाना लाये थे। डायरेक्टर, कैमरामैन, अभिनेता अभिनेत्रियाँ कटीन के स्पेशल रूम मे बठे, मैं भी उन्ही के साथ बैठा। यह बात उन अभिनेत्रियो को अच्छी नही लगी। उनके चेहरो मे यह स्पष्ट हो रहा था, पर मुझे कहाँ से समझ म आती यह बात? मैं तो हीरो था न!

मुझे कैसे भगायें, यह उनके सामने बडा सवाल था। वैसे अनजाने मे उन्होने मुझे सकेत भी किये, पर मैं तो अपनी ही धुन म था।

"क्यूँ, राम मोहन, घर स कुछ लाया नही?" कमरामैन ने पूछा।

"नहीं लाया। क्यू?" मैं बोला।

"नहीं लाया, तो यहाँ खाना नहीं देते," कैमरामैन ने कहा।

फिर भी मैं हँसता रहा। मुझे समझना चाहिए था न, कि वे मुझे जाने का संकेत दे रहे हैं। उलटे मुझे लगा कि वे बड़े प्यार और अपनेपन से पूछ रहे हैं।

मैं वहाँ समस्या था, इसलिए उन्होंने खाने का ऑर्डर नहीं दिया। जो डिब्बे वाले थे, उनमें से एक मुझे बुला रहा था। परन्तु मैं उधर अनदेखा कर रहा था।

उस आदमी और कैमरामैन के बीच कुछ इशारे हुए। मुझे इसका भी भान नहीं था। अन्त में कैमरामैन बोला, "राम साब, वह आदमी आपसे कुछ कहना चाहता है, जाइए।"

मैं उधर गया। उसके पास जाने पर उसने पूछा, "आप खाना खाने कहाँ बैठे हैं?"

वह, उधर बैठा हूँ।"

"वहाँ पाँच रुपये थाली है।" उसने कहा।

"होगी। मुझे कहाँ देना है?"

फिल्म्स डिवीजन इस तरह पैसे नहीं देता।"

'फिर व कैसे बैठे हैं?"

वे अपना खुद देंगे।"

'अरे बाप रे!'

"इसीलिए कहता हूँ, आप हमारी ही लाइन में बैठिए! अच्छा रहेगा। आपको शोभा भी देगा!"

मैं अब कुछ समझा। एक राइस की प्लेट मँगवायी और खाने लगा। मैंने खाते समय उनकी ओर देखा। वे अभिनेत्रियाँ मेरी ओर देखकर खिलखिला रही थीं। मैं बाहर भगाये आदमी-सा उनकी ओर देख रहा था।

बाद में मैंने डायरेक्टर श्री मरैया साहब का कलापथक के कार्यक्रम दिखाये। उद्देश्य यह था कि कभी न कभी आगे वह काम दें और सेवा-

दल के कार्यक्रम की शूटिंग हो।

जी० पी० ओ० मे शूटिंग हुई। उस समय सारा जी० पी० ओ० शूटिंग देखने आया। बड़े साहब भी। अब बताइए, मेरा भाव कितना बढ़ गया होगा! अच्छा, मैं भी ऐसे अभिनय कर रहा था, जैसे कोई मंजा हुआ कलाकार कर रहा हो।

फिल्म का आकर्षण सबको होता है। मेरी शूटिंग देखकर कुछ बोले—

"तू तो अब हिन्दी पिक्चर के लिए ट्राई कर!"

"ये फुक्कड नौकरी छोड दे और वही लाइन पकड!"

"अरे, वह क्यो करने लगा? ये डॉक्युमेंटरी देखकर प्रोड्यूसरो की, इसके घर के सामने लाइन लग जायेगी, देखते रहिए।"

इस तरह मुझ पर प्रेम की वर्षा हो रही थी।

कुल पन्द्रह दिन शूटिंग चली। मैंने इसी बहाने और दस दिन मजे कर लिये, बाद म जी० पी० ओ० मे काम पर गया। फिर भी नही बताया कि शूटिंग खत्म हो गयी है। सबको यही पता था कि पिक्चर बनने म छह महीने तो लग ही जाते हैं। मैंने वही वातावरण कायम रखा। डॉक्युमेंटरी व पिक्चर का अतर उन्हें क्या मालूम?

सरैया ने मुझे बता रखा था कि पासिंग शॉट के लिए मैं तुम्हें फोन करूँगा। उनका फोन आता था और मैं जाता था।

उसी दौरान लीलाधर हेगडे ने खानदेश मे कलापथक का कार्यक्रम तय किया। शूटिंग के नाम पर मैंने वह पूरा कर डाला। कारण बड़े साहब का ऑर्डर था—'शूटिंग के लिए जाने दो।'

घर का भी कोई काम होता तो शूटिंग के नाम पर छुट्टी मार लेता। इस तरह उसका लाभ ले रहा था। मौज कर रहा था। उलटे विभाग को बताता, "बडी तकलीफ होती है शूटिंग मे।"

ऐसे म कभी पुणे स नीलू फूले आता और कहता, "ए राम, आज छुट्टी मारो न !"

मैं कहता "मैं काम पर गया कि तु पोस्ट आफिस म फान कर— मैं बताऊँ वैसा ।"

मैं पोस्ट आफिस म काम पर जाता । पत्र लेकर सार्टिंग कर रहा होता । आठ बजते ही सोचता, स्साला, अब तक फोन कैसे नहीं आया ? इतने म विभाग म फोन आ जाता ।

हलो, हलो ! डिलिवरी डिपाटमट ! मैं फ़िल्म्स डिवीजन से बोल रहा हूँ । हाँ, वे नगरकर पोस्टमैन है क्या ? उन्ह तुरन्त भेज दीजिए । कपडे वग सहित, उनकी शूटिंग है ।"

फिर साहब, ओवरसर को कहते । ओवरसर मेरे पास आते—"अरे मुए, वह काम छोड । तुझे शूटिंग के लिए बुलाया है ।"

'मैं नहीं जाऊँगा । बहुत तकलीफ होती है ।"

'वो मुझे मत बता । साहब से बोल ।"

फिर हम साहब के सामने । ओवरसर कहता, "साहब, यह 'ना' कहता है ।'

'अरे साला, ऐसा मत कर । वह अपने सरकार का काम है ।"

'साहब मैं जाता हूँ । पर सुबह से, सीधे शाम तक रगडते हैं, वह भी धूप म ।'

ओवरसर इस एक और छुट्टी द देना, बस !"

फिर मैं बाहर आता । बाहर नीलू फूले मेरी राह देखता खडा रहता ।

इस तरह शूटिंग के नाम पर मुझे छुट्टी मिलती रहती और कलापथक के कायक्रम ठीक ढग स चलत रहते ।

सवादल कलापथक के कारण हमारा मित्र परिवार बढता गया । कुछ जिगरी दोस्त भी बने । मैं उनके घर जाता वे मेरे घर आते । जब मैं उनके घर जाता, तब उनका ब्लाक दो या तीन कमरों का होना । वे पढे-

लिखे लोग ! उनके घर पर वैसी छाप होती। लोहे का पलग, स्टील की आलमारी, खाने की टेबल, रसोई का स्टड ! मन म आता, स्साला, अपने नसीब मे यह सब कब आयेगा ?

पुडलिक नाईक गिरगाव की दूकान मे आता तो मेरे घर आता। यूँ ही गप्पें मारते मारते मुझे लगता, मैं कितना दुर्भाग्यशाली हू ! एक ही कमरा उसी म सब-कुछ। एक बार मैंने कहा भी था। तब उसने कहा, "फालतू बात मत करो ! डाक विभाग की नोकरी, दो दूकानें ! इतना सब होते हुए भी अच्छे मकान के लिए कोशिश क्यो नही करते ?"

नाईक सच बोला था। उसकी बात मन मे उतर गयी। उस दिशा मे बात आगे बढने लगी। मेरे पास दो दूकानें थी, यह बात सही थी, पर गिरगाँव की दूकान की आय मेरे हिस्से कम आती। जिन्होने उसमे पैसे लगाये थे, उनके लौटाना आवश्यक था। वैसे, मैं लौटा भी रहा था। छह साल दूकान चलायी। मेरा लाभ कम ही था। पर जिन्होंने पैसे लगाये थे, उनको भरपूर हिस्सा दिया। इसीलिए यह विश्वास मेरे काम आया।

सेवादल और समाजवादी पार्टी के कुछ कार्यकर्ताओ ने विलेपार्ले मे एक सोसायटी बनायी। उसमे कुछ मेम्बरो की आवश्यकता है, यह खबर मुझे लगी। बबन डिसोजा बाल बनवाने आये। मैं उनके पीछे पड गया। किसी तरह मेरा नम्बर लगा। मुझे बडी खुशी हुई।

नवसमाज कोआपरेटिव हाउसिंग सोसायटी नेहरू रोड, विले पार्ले। ए' टाइप, 'बी टाइप। मैंने 'बी टाइप मे नम्बर लगाया। डबल रूम, संडास बाथरूम सहित। सोसायटी का मेम्बर तो बन गया परन्तु पैसे कहा से लाऊँ ? कुल साढे बारह हजार रुपये। पहले हजार बाद म डेढ-डेढ हजार की दो किश्तें। बाकी के साढे आठ किराये के रूप मे देने थे।

अब आप कहेगे वाह ! कितना सस्ता ब्लॉक मिल गया !

अहो इतने पैसे हमारे जैसे कहाँ स लायें ? सन् 1955 56 की बात है। फिर भी उस समय चन्द्रकान्त वावतकर तथा पुडलिक नाईक ने सभाल लिया।

किसी तरह हमने पहली किश्त भरी। कुछ रिश्तेदार हमे ऐसे लगे जैसे हमने कोई बँगला ले रखा हो ! जो लोग मुझे अच्छा

मेरी प्रशंसा करने लगे। कुछ लोग उँगली भी उठाते। कोई कहता 'हाथी ले तो लिया, पर पालने की अक्ल है क्या?' दूसरा कहता, आदमी को उतना ही खाना चाहिए जितना पचा सके।'

इधर सोसायटी आकार ले रही थी। सोसायटी कहते ही कई झंझटें सामने आ खड़ी होती हैं। परन्तु हमारी सोसायटी में वैसा कुछ नहीं था। उसमें साथ अच्छे लोग थे। ये सारे लोग विशेष ध्यान देकर मेहनत कर रहे थे। इसीलिए डेढ़ साल में सोसायटी की तीन बिल्डिगें खड़ी हो सकी। अच्छी बातों के लिए सचमुच अच्छे लोगों की आवश्यकता पड़ती है।

मैं बीच-बीच में उधर जाता। किस बिल्डिंग में जगह मिलेगी इसका अंदाज लगाता।

ब्लॉक लिया पर बाप को यह पसंद नहीं आया। उसका कहना था "ये कैसे जमेगा? हमारा धंधा सुबह सात से रात आठ बजे तक, और तुम्हारी पोस्ट की ड्यूटी। फालतू में ऐसा न हो—मैं ढो ढोकर मरूँ और तू आने जाने में परेशान हो।"

'रहने दीजिए एक तो स्वयं कुछ करेंगे नहीं दूसरा कुछ कर रहा है तो उसे करने भी नहीं देते।' माँ ने मेरा पक्ष मजबूत किया।

सोसायटी का पत्र आया—'पैसे भरें और ब्लॉक ले लें।' वह पत्र पाकर लगा—जैसे एस० एस० सी० पास या हिन्दी की परीक्षा का सर्टिफिकेट मढ़वाकर रखते हैं मैं इस पत्र को इसी तरह फ्रेम करवा कर रखूं।

पैसे भरे। ब्लॉक देख आया। तल माले (ग्राउंड फ्लोर) पर ही था। सोचा बाप को दमा है। अच्छा हुआ। अच्छा मुहूर्त देखकर हम पाले जाने की तैयारी में लग गये। खाने की टेबल, चार कुर्सियां एक लोहे की कॉट लेकर हम सब निकले। यू ही कोई अपने पर उँगली न उठाये यही लगता था।

हमारे आने से पहले सारे ब्लॉक भर चुके थे। अंत में आने वाले हम ही थे। हमें आने में विलम्ब क्यों हुआ, क्या बताएँ? बाप इसी शर्त पर आने को तैयार हुआ कि पुराना कमरा नहीं छोड़ेंगे। एक ट्रंक लाया। सारा सामान भरा। सच तो यह था कि सब-कुछ एक कोने में ही समा

गया। सब लोग ट्रक मे बैठ गये और हम पार्ले जाने के लिए रवाना हुए।

ट्रक मे सामान रखते समय आसपास के सब लोग जिज्ञासा से देख रहे थे। उन्हें बुरा भी लग रहा था। इतने दिन का साथ अब छूटने वाला था। हम कुछ इस तरह जा रहे थे, जैसे परदेस जा रहे हों। कब अपना घर देखेंगे, ऐसी जिज्ञासा माँ और पत्नी के मन मे भी थी, क्योंकि उन्हें मैं उधर कभी नही ले गया था।

वह दिन लोगों की छुट्टी का दिन था। सारे ब्लॉक वाले लोग घर मे ही थे। ट्रक जैसे ही सोसायटी मे घुसा, वैसे ही सारे लोग 'कौन आया, कौन आया?' कहते हुए बाहर देखने निकल पड़े।

मेरे हिस्से का ब्लॉक खाली था। जिसे मालूम नही था, वह दूसरे से पूछता, "यहाँ कौन आने वाला है?"

"कोई नगरकर है।" जिन्हें जानकारी थी बता देते।

अच्छा, मेरा नाम कुछ इतना वजनदार लगता कि सुनने वाला सोचता, कोई बड़ा आदमी होगा, पर प्रत्यक्ष देखने मे ऐसा लगता कि यह दारू का धन्धा करने वाला होगा। हँसिए नही, सच बताता हूँ ऐसा घटा है।

ट्रक रुका। हमने सामान नीचे उतारा। हमारा सामान उतारने के बाद निश्चय ही किसी ने कहा होगा कि तलेगाँव म उतरने वाले लोग विलेपार्ले मे कैसे उतर गये?

हमारा सामान ही कुछ इस तरह का था—बर्तन के दो बोरे, गुदड़ी के दो बिस्तर, तीन लोहे के ट्रक, चार डिब्बे और सिर्फ एक कॉट। टेबल-कुर्सियाँ ही ऐसी थी, जो सारे सामान म अलग दिखती।

एक तो हमारा ऐसा सामान, दूसरे हम सबकी पोशाक देखकर उन लोगों ने निश्चय ही कहा होगा कि ये आये हुए लोग पिछड़े इलाके के लोग होंगे, क्योंकि मेरा बाप धोती, कमीज, काला जाकीट साफा पहने था। माँ की नौ गजी साड़ी, खण की चोली, माथे पर आड़ा सिंदूर। पत्नी व बहन भी ऐसी ही। चोली की जगह ब्लाऊज था, बस इतना ही अंतर।

हम जैसे ही ब्लॉक म घुसे, वैसे ही माँ और पत्नी मकान देखकर

बोली अरी, अरी ! कितनी अच्छी खुली जगह है !" फिर वे सारे ब्लाक में घूमें। बस ये तो दो ही कमरे, पर उस देखकर उन्हें कितनी खुशी हुई ! और सबसे ज्यादा खुशी तो बाथरूम देखकर हुई। वहाँ नल और उसम पानी !

हमारा ब्लाक का जीवन शुरू हुआ। और जो जो मजेदार बातें घटीं, कुछ न पूछिए !

दूधवाला आया। मुफ्त दूध देता बोला, 'बाबूजी, दूध का पैसा मत दीजिए लेकिन हमसे ही दूध लीजिये ! पैसे चाहे महीने भर बाद दे दीजियेगा।'

वैसे ही दुकानदार आया। वह भी यही कहने लगा। यह देखकर माँ क्या बोली अरी इस इलाके के लोग बड़े अच्छे मालूम होते हैं। पैसे की झंझट नहीं। वहाँ तो कोटा का वह दूधवाला, वह दूकानदार ! मुझे एक पैसे का उधार न देते।

दूसरे ब्लाक के पति पत्नी सब नौकरीवाले। कुछ ब्लाक में नहीं भी होंगे, पर अधिकांश दस बजे जाकर छह तक वापस आनेवाले थे। तब तक ब्लॉक महरी के अधिकार में होता। कुछ महरियों की मेरी माँ और पत्नी से खूब पटने लगी। चौथी बिल्डिंग का काम चल रहा था। उसकी बालू, मिट्टी हमारे ब्लाक के सामने पड़ी होती। उस बालू पर माँ और महरियाँ गप्पें लड़ाती रहतीं।

हम सब लोगों को तो यह मालूम ही न पड़ता कि विलेपार्ले में सूरज कब निकलता है और कब डूबता है।

एक बार ऐसे ही एक रात मैं साढ़े नौ बजे घर आया। खाना खाते समय पत्नी बोली अजी आज एक औरत आयी थी। घंटी बजी। मैंने देखा ... दरवाजा खोला। उसके हाथों में थैलियाँ थीं। मैंने पूछा कौन चाहिए? तब वह बोली 'मालकिन है?' मैंने कहा 'मैं ही

मालकिन हूँ।' फिर उसने मुझे नीचे से ऊपर तक निहारा और झटके से निकल गयी।"

मैं बैठ गया चुपचाप। सोचने लगा, कौन होगा? परन्तु बात दूसरे दिन सामने आयी। हमारे ब्लाक के ऊपर वाले ब्लाक में मालवण के श्री श्याम कावरकर की ससुराल थी। वे सेवादल वाले थे। इसलिए मिलन गया। तब मालूम हुआ, सौंदर्य-प्रसाधन बेचने वाली कोई महिला आयी थी। पत्नी ने कहा, 'मैं मालकिन, तब उसे आश्चर्य हुआ। सोचा, महरी का और ब्लॉक के मालिक का कोई 'लफड़ा' है। यह सोचकर वह एक झटके में ऊपर बढ़ गयी।

वैसे सारी सोसायटी में मालूम नहीं था कि ये सेवादल में काम करता है। वे एक दूसरे से कहते, "कोई घाटी के लगते हैं।"

"पता नहीं, ऐसे लोगों को सोसायटी में जगह क्यों दी?"

दो पैसे हाथ लगे कि इन्हें लगता है कि वे किसी के भी साथ बैठ सकते हैं।"

'घर की महिलाएँ देखी? अपनी महरियाँ उनसे अच्छी रहती हैं, इतनी डर्टी हैं।'

ऐसा कहकर लोग मुँह बिचकाते रहते। इसकी तकलीफ़ हम पुरुषों को न होती। हम तो सुबह ही गायब। ये सारा घर की स्त्रियों को सुनना पड़ता।

सबके साथ घुलने मिलने के लिहाज से और प्रेम बढ़ाने के उद्देश्य से मैं किसी भी कार्यक्रम में अपने घर के लोगों के साथ भाग लेता पर तु अपेक्षित व्यवहार न मिलता। मैंने मन में कहा, 'बेटा, मैं जो सामाजिक काम करता हूँ वह यदि तुम लोगों को मालूम हो गया तब कहोगे कि अरे वाह! इतना बड़ा आदमी है।' पर वैसा मौका ही हाथ न आता।

राष्ट्र सेवादल हर वर्ष कैलेंडर निकालता है। उसकी बिक्री करनी

करते हैं। सोसायटी मे कैलेंडर बेचने के लिए मैं कैलेंडर का गठठा लाया और पत्नी से बोला, "मुझे समय नही है। सुबह की ड्यूटी है। तू सबके घर जाकर ऐसा बताना कि यह कैलेंडर आठ आने का एक है और कहना, यह पैसा सेवादल के लिए जाता है। उसमे से रचनात्मक काम किया जाता है।'

सेवादल की बैठक मे कोई ऐसा बोला था इसलिए वैसा बताया। कैलेंडर दिये पन्द्रह दिन हो गये थे। घर मे एक भी कैलेंडर न दिखता। लगा, पत्नी ने सारे कैलेंडर खपा दिये। चलो, अच्छा हुआ। अब इस सोसायटी को मालूम होगा कि मैं क्या काम करता हूँ। एक दिन पूछा—' क्यो री सारे कैलेंडर खप गये ?"

' अजी कम पड गये। कुछ लोगो ने दो-दो लिये।"

' अरे वाह ! अच्छा हुआ। अच्छा, पसो का क्या हुआ ?"

अजी मैंने शुरू मे ही उसका मूल्य बताया। सारे हँसने लग कहने लगे नगरकरवाई कुछ पोस्टमैन हमारी पहचान के हैं। वे हर वर्ष कैलेंडर डायरी मुफ्त लाकर देते हैं और आप हैं कि पैसे माँग रही हैं ?' "

मेरी सामाजिक सवा मेरे गले पड गयी।

माँ का मन न लगता। वहाँ तो उसकी सहेलियाँ—भागू आक्का, लिंगू आक्का सह आक्का बडे आराम से गप्पें लडाती रहती थी पर यहाँ कोई न था। यहाँ शाम को वह बच्चा को लेकर नेहरू रोड जाती। ए पानी पूरी वाले ! ए भेल वाले ! इस तरह खुले मन स पुकारती। भेल वाला आता। फिर वह बीच सडक पर आराम से भेल खाती। यही समय सोसायटी के ब्लॉक वालो का घर लौटने का होता। यह सब देखकर कुछ लोग मुझस कहते मिस्टर नगरकर, अपने घर के लोगो को बताइए ! रास्ते पर क्या गदी चीजें खाते रहते हैं।'

फिर एक दिन मैंने माँ के पास अपना रोना रोया। वह सोझती हुई बोली उन लोगो की तारीफ करने की कोई जरूरत नही। दो महीन हो गय यहाँ आए हुए पर एक भी बोतल है क्या डाक्टर की ?

नहीं तो, वहाँ तुम्हारे पढ़े-लिखे लोगों को देखो, उनकी बोतल होती ही थी, हमेशा डाक्टर की।"

सोसायटी म हमारा रहन-सहन सबसे अलग था। बाप कभी बम्बई, तो कभी पार्ले। जब पार्ले में होता, तब बम्बई की ही तरह तम्बाकू खाकर खिडकी से, दरवाजे से पिचकारी मारता। माँ, पत्नी सुबह शाम हाथ में मिस्सी (भुनी तम्बाकू) लेकर घिसती रहती। जहाँ जगह मिलती, थूकती। इसके कारण लोग घृणा करेंगे, इसका विचार न करती। ब्लॉक म खाना बनाने का स्टड बना था, उसे छोडकर आराम से पालथी मारकर खाना नीचे बनाती। कहीं भी कीलें ठोककर कपडे टाँग देती। एक कमरा था, तब तो दिक्कत थी ही। अब दो कमरे थे, तब भी मुश्किल। ठीक ढग से रहना मालूम ही नहीं था। फिर दूसरे ब्लॉक वाले क्यों न नाक बिचकाते ?

सोसायटी मे इस तरह दिन बीत रहे थे। सेवादल के 'महाराष्ट्र दर्शन' का कार्यक्रम शुरू था। ऐसे ही एक दौरे से हम मोटर से वापस आये। मैं विलेपार्ले में उतरा। मेरे साथ मनोहर जोशी। मैं घर आया। माँ, बहन रसोईघर म थी। रात से मेरी तबीयत ठीक न थी। मेरा पेट बिगड गया था। पर मैंने किसी को नहीं बताया। सिर चकरा रहा था। 'माँ, मैं सोता हूँ' कहकर मैं खटिया पर लेटा, तो सो ही गया। सुबह साढे सात आठ का समय। रविवार का दिन। माँ को लगता, लडका रात-भर जागा है। अब सोया है तो सोने दो।

'महाराष्ट्र दर्शन' म सौ० प्रमिला दडवते काम कर रही थी। वे जब दौरे पर जाती तब अपने लडके को हमारी सोसायटी मे बबन डिसोजा के पास रखती। नगरकर वाला आये, अर्थात माँ भी आयी ही होगी, इस विचार से उदय मेरे पास आया। पर वह मेरी स्थिति देखकर चिल्लाया, "देखो, नगरकर काका को क्या हो गया!'

घर से सब दौड़े । मुझे देखा, तो बेहोशी में मेरे मुँह से झाग निकल रहा था । गरदन टेढ़ी आँखें सफेद, घर में रोना धोना मच गया ।

तकदीर से वह रविवार का दिन था । सब घर में थे । ववन डिसोजा ने प्रा० सदानन्द वर्दे को तुरन्त फोन किया । प्रा० वर्दे, प्रा० वसन्त वापट, लीलाधर हेगडे—य सारे लोग आये । आते समय वर्दे डा० अवसरे को लेते आये । डॉ० वसन्त अवसरे ने मुझे बारीकी से जाँचा और बताया, यह केस बहुत सीरियस हो गया है । घर में सारे लोग दहाड़ मारकर रोने लगे । डा० अवसरे मोटर से नानावटी हास्पिटल गये और वहाँ से प्रमुख डॉ० कोठारी को ले आये । मुझे इंजेक्शन दिया गया । अम्बुलेंस आयी और मेरी रवानगी नानावटी अस्पताल में हुई । रात के आठ बजे मैं होश में आया । तब जाकर सबके जान में जान आयी ।

सुबह नौ बजे से सारे बड़े लोग मेरे लिए इस कदर भाग-दौड़ कर रहे हैं यह सोसायटी के लोगों ने देखा और नगरकर के घर के बारे में सबमें अचानक प्रेम उमड़ पड़ा ।

दस दिन नानावटी अस्पताल में रहकर ग्यारहवें दिन घर लौटा । बाद में, महीने भर डॉ० शहा की दवाई चलनी रही । डाक्टर शहा का दवाखाना हमारी सोसायटी के सामने गुजराती सोसायटी में था । दवाई लाने कभी-कभी मैं जाया करता कभी-कभी माँ, पत्नी या बहन भी जाती ।

मैं पूरी तरह अच्छा हो गया और डा० शहा का बिल देने दवाखाने में गया । दवाखाने में कोई नहीं था । शहा अकेले थे । मैंने नमस्कार किया और अपने आने का कारण बताया । मेरे बिल का हिसाब करते-करते डॉ० शहा बोले 'मिस्टर नगरकर एक बात पूछूं के ?''

मैंने कहा 'पूछिए भी ! '

आप देख रहे हैं घर में महरी की बड़ी कमी है । तुमी साला तीन-तीन महरी रखना है । मुझे एक दे नी !'' डॉक्टर बोला ।

डाक्टर साहब, वे तीन हैं—अर्थात एक माँ एक पत्नी और एक बहन ! मैंने जवाब दिया ।

"आई एम वेरी सॉरी।" डॉक्टर भौंचक रह गया।
मेरी बीमारी देखकर माँ बाप को लगा कि यह ब्लॉक हम रास नहीं
आयेगा। इसे छोड़ना चाहिए। इस तरह जिस ब्लॉक मे बड़े रौब के साथ
हम आये, उसे बहुत चुपचाप छोड़ दिया। हम गये, यह बात सासायटी
को बहुत दिना बाद पता चली।

'बिन बीज का पेड़ लोकनाटक का दौरा, सवादल की ओर स खानदश
म शुरू हुआ। यह लगातार तीन महीने तक चला। बस मुझे छुट्टिया की
कमी नहीं थी। जयपुर म शूटिंग है कहकर निकलता। साहब का आडर
था ही कि शूटिंग के लिए कभी भी छोड़ दें।
इस दौरे मे लीलाधर मैं नीलू चन्दू वोराटे जमदाड़े पाटील, बापू
देशमुख, केकर, सुधा ताई, लीला, शैला प्रधान आदि की टीम थी।
बीच-बीच म कलाकार बदलते रहत। जो जितने दिन द सकते हैं
नसे उतन दिन लिये जायें और उसी हिसाब से लीलाधर न व्यवस्था
ी थी।
खानदेश, नासिक फिर नगर और औरगाबाद—य जिले चुने गये
खानदश म दसरथ पाटील, नासिक मे परोट गुरुजी, नगर म मामा
े, मराठवाड़ा म बापू कालदाते आदि अगुवा थे।

ार दाडाई गाँव म लोकनाटक का कायक्रम था। कायक्रम बन्त
उस कायक्रम को देखकर कुछ लोग हमारे पास आये, 'हमका आपका
तय करना है।'
'स गाँव म ?" दसरथ पाटील ने पूछा।
ारे गाँव—निमगाँव मे।"
-सा कायक्रम चाहिए ?" दसरथ पाटील ने अगला सवाल
ातलब ? आपक पास दूसरा कायक्रम भी है ?"

'हाँ। 'नेता चाहिए', 'किसी का किसी से बनता नहीं' और जो अभी हुआ यह।"

"इसमें से अच्छा और गाँव के लायक कौन-सा है ?"

'आप 'नेता चाहिए' लीजिए एकदम बेस्ट !"

अन्त में पारिश्रमिक तय हुआ। पाँच दिन बाद हम निमगाँव गये।

सेवादल के कथापथक के बारे में लोगों में आदर भाव था। उनका व्यवहार, रहन-सहन—सब अनुशासनबद्ध। अच्छा, हमको कभी लॉज की आवश्यकता न पड़ती। किसी और बात का शौक भी नहीं। इसलिए हमें हर गाँव में आदर मिलता। हमारी आवश्यकताएँ भी कम ही थीं।

रात के लोकनाटक में हम राजा-मन्त्री रहते और सुबह सिर पर गठरी लेकर एस० टी० स्टैंड की ओर जाते दिखायी देते। पिछली रात का कार्यक्रम देखने वाले कहते, "वह गठरी ढोने वाला रात का राजा बना था। परन्तु हमें इसकी कभी शर्म नहीं आयी।

हम ग्यारह बजे निमगाँव पहुँचे। निमगाँव देहात ही था। हमारा स्वागत स्वयं पंचों ने किया। ठहरने के लिए एक बड़ी हवेलीनुमा जगह। भोजन चाय पान की बरसात थी। कलापथक में तीन सुन्दर, पढ़ी लिखी लड़कियाँ भी थीं। ऐसे में हम जहाँ ठहरे थे, वहाँ गाँव के कुछ मनचले चक्कर लगाते। यह अनुभव सर्वत्र का था। इसलिए यह हमें कुछ विशेष न खलता। हम भी घूमते। पर उद्देश्य अलग होता।

नेता चाहिए' में कौन क्या रोल करेगा, यह तय हुआ। उसकी एक साधारण रिहर्सल के प्रारम्भ में गौरगान, फिर कुछ गाने और तब लोकनाटक शुरू होता।

स्टेज पर परदे हम ही बाँधते। गाँव वालों से आवश्यक स्टेज हम बनवा लेते। इस बात में कोई तकलीफ़ न हो, इसलिए हम जहाँ कार्यक्रम होता, वहाँ जल्दी पहुँच जाते।

रात के साढ़े नौ बजे हमारा कार्यक्रम शुरू हुआ। वैसे, कार्यक्रम के लिए कोई टिकट न था। ऐसे में सारा गाँव पिल पड़ा। आबाल वृद्ध, महिलाएँ युवतियाँ—सब आये। स्टेज के पीछे गाँव के कार्यकर्ता हमारे लिए खट रहे थे। हमें जो लगता वे ला देते। चाय पानी की खास

व्यवस्था की गयी थी।

पहन शोय गान, फिर कुछ और गाने और तब मध्यातर के बाद 'नेता चाहिए' लोकनाटक शुरू हुआ।

'बिन बीज का पेड' व किसी का किसी से बनता नहीं' लोकनाटकों म प्रारम्भ स ही महिलाओ के काम हैं नाच गाना है, पर नेता चाहिए' म ऐसा कुछ नही, बिलकुल अत म मॅडम आती हैं।

लोकनाटक शुरु हुआ। थोडा समय बीता। लोग फुसफुसाने लगे, 'अजी बाई आने दीजिए बाई।' कुछ चिल्लाने लगे। कार्यकर्ता फुसर फुसर करने लगे। हम कुछ नही समझ पा रहे थे। लीलाधर की इस लोक-नाटक म प्रमुख भूमिका थी—बीमार की। लोगो को हँसाने के लिए बडा प्रयत्नशील था वह। पर लोग न हँसते।

अजी, कल के लोकनाटक म बाई कैसी नाची थी? वैसा नाच इस लोकनाटक म नही है?" कार्यकर्ता पूछने लगे।

लीलाधर की समझ म सारी बात आ गयी। उसने नाटक रोका। लोगो स निवेदन किया, 'इस लोकनाटक म बाई है, पर देर से। पर रगत म कोई कमी है क्या? परन्तु लोग सुनने को तैयार नही थे। अत म सुधाताई नौ गजी साडी पहनकर पैरो म घुघरु बाधकर बिन बीज का पेड' के दो गाने गाकर नाची। तब कही पब्लिक को सतोप हुआ।

ये दो नाच गाने हो जाने के बाद फिर लोकनाटक की शुरुआत हुई। नाटक अपनी गति स रेंगता जा रहा था। पर लोग धीरे धीरे खिसक रहे थे। काम मे लगे कार्यकर्ता तो चाय के बतनो समेत गायब। पानी पीने की गिलास तक नही छोडा।

किसी तरह कार्यक्रम समाप्त हुआ। सामान समेटकर हम अपनी जगह पहुँचे। देखा तो मकान पर बडा सा ताला। रसाला! अब सोयें कहाँ? सब ओर देखा। पर सारा गाँव ज्यो हमसे रूठ गया हो। सामान लेकर सीधे एम॰ टी॰ स्टड पहुँचे और वहाँ भरी ठड मे रात काटी। सुबह की बस पकडकर वह गाँव छोड दिया।

इसी तरह का, पर कुछ अलग तरह का अनुभव धोत्रा के मले हुआ।

घोत्रा गाँव औरंगाबाद से कुछ मील की दूरी पर है। वैसे उस गाँव मे पार्टी का यूनिट जोरदार है। घोत्रा की 'जात्रा' भी जोरदार—तीन दिन चलती है। हजारो लोग इस जात्रा' मे आते हैं। इसलिए इस इलाके के हमारे नेता श्री बापू साहेब कालदाते ने इस मेले म तीनो दिन तीन लोकनाटक रखे—वे भी टिकट लगाकर। किसी नौटकी की तरह तंबू ताना। अच्छा स्टेज तैयार किया।

इस समय हमने उसी इलाके की एक स्टेशन बैगन तय की थी। इस लिए हमारी यात्रा ठीक रही। पहला कार्यक्रम औरंगाबाद म हुआ। हाउस फुल रहा। मराठवाडा के सम्पादक आनंतराव और उनके सहयोगियो की मदद थी, तब हाउसफुल नही होगा, तो क्या होगा? हाउसफुल देखकर हम खुश हुए, चलो शुरुआत तो अच्छी हुई!

उसके बाद का कार्यक्रम घोत्रे गाँव म। दोपहर म हमारी गाडी घोत्रे गाव पहुँची। जहाँ मेला लगा था, वही से गाँव म आने का रास्ता था। ऐसे म गाडी के चारो ओर भीड जमा हो गयी—"ए, गाँव म 'गम्मत' आयी गम्मत आयी!' हम कुछ समझ नही पाये। बाद म मालूम हुआ इधर तमाशा नौटकी की टीम को 'गम्मत' कहते हैं।

स्साला नाचनेवालियाँ नहा दिख रही हैं!" भीड म स एक बोला।

अरे है है! पर सिर्फ दो ही दिखें।" उसका साथी बोला।

गाडी धीरे धीरे जब आग बढ़ रही थी तब मैं मेले का मजा ल रहा था। टूरिंग टॉकीज आयी थी। एक ओर दत्तोबा तारे तुकाराम खेडकर और इसी इलाके का धोंडू कोंडू—ये बडे तमाशगीर अपन डेरे डाल हुए थे। उनके डेरो क सामने हमारी औकात शेर के सामने बकरी की-सी थी। पर हमारी उम्मीद जोरदार! उसम भी मेले का हाउसफुल! ऐसे म तीन दिन धूम धडाका करना है, इसलिए सबने कमर कस ली। गाँव मे गये। पार्टीवाले, सेवादल हमारे स्वागत मे तैयार! चाय-पान हुआ। थोडा आराम किया और सात आठ के करीब जहा कार्यक्रम था, वहाँ आये।

मेला कोलाहल म डूबा हुआ था। टूरिंग टॉकीजवाले चिल्ला रहे थे, 'चलिए! चलिए!! राम-वनवास देखिए!'

तो दूसरा कहता "चलिए! चलिए!! सती सावित्री देखिए!"

इधर हम स्टेज पर परदे बाँध रहे थे। इतने में, 'टान् ऽऽ टॉन् ऽऽ टॉन्-टॉन् टान'—ढोलकी की आवाज़ आयी। पहाड़ी आवाज़ में कोई गा रहा था और उतनी ही तेज़ी से ताल पर कोई संगत दे रहा था। हमने परदे बाँधे। साढ़े आठ बजे होंगे। अभी एक घंटा और बचा था। हमें बताया गया कि कार्यक्रम का विज्ञापन कीजिए। मेले में चारों ओर भोंपू गरज रहे थे। हमारा भी शुरू हुआ—

चलिए चलिए चलिए! महाराष्ट्र में प्रसिद्ध, ग्यारह कलापथक का लोकनाटक 'बिन बीज का पेड़' देखिए!
सुप्रसिद्ध लेखक व्यंकटेश माडगूलकर!
संगीत वसन्त पवार!
चलिए चलिए चलिए! आइए और जी भर कर हँसिए! नहीं आएँगे तो पछताएँगे!
इसमें काम करनेवाले कलाकार हैं नृत्य [illegible]—[illegible] नृत्यांगना—रेखा दहवते!
चलिए चलिए चलिए! यह मौका न गँवाइए! [illegible] में मन फँसाइए!
महाराष्ट्र के 'लॉरेल-हार्डी' नीलू फूले और राम नगरकर!
निपुण ढोलकी वादक बापू देशमुख!
चलिए चलिए-चलिए! महिलाओं और बच्चों के भी देखने योग्य लोकनाटक, 'बिन बीज का पेड़'!

पहला गाना पूरा हुआ। दूसरे की शुरुआत हुई, पर लोग न बढ़े। गाने खत्म हुए, राष्ट्रीय गीत शुरू हुआ, फिर भी लोग वहीं खड़े रहे। किसी तरह राष्ट्रीय गीत खत्म हुआ। इसके बाद इन्टरवल! चाय-पान चालू था। तभी लीलाधर, बापूसाहब, और स्थानीय कार्यकर्ताओं की किसी बात पर गम्भीर चर्चा चल रही थी। उनका कहना था, 'कम-से-कम स्थानीय लोगों को आने में क्या तकलीफ थी? अच्छा भला है ऐसे में हाउसफुल होना ही, यह सोचकर टिकटें नहीं बेचीं।'

मैंने स्टेज से थोड़ा झांक कर, बगल में कपड़े के घेरे की ओर देखा। परन्तु तब भी कोई खास भीड़ नहीं थी। अतः यह तय हुआ कि अब नाटक शुरू किया जाये। यदि लोग आयें तो ठीक, अन्यथा कपड़े का घेरा उठा दिया जाय। आज नाटक मुफ्त दिखाया जाये, तो कल नाटक जोरदार होगा। ढोलकी की ठुमकन के साथ लोकनाट्य शुरू हुआ। लोकनाटक का प्रारम्भिक गीत समाप्त हुआ। कृष्ण और विदूषक का संवाद हुआ। गवलियां आयीं, नाचकर चली गयीं पर पब्लिक आने को तैयार ही नहीं थी। अन्ततः कपड़े का घेरा उठा दिया गया। सोचा था, भीड़ पिल पड़ेगी, पर कहां? लोग सिर्फ झांककर देखते, थोड़ी देर रुकते और आगे बढ़ जाते।

वैसे हमारा तीन साढ़े तीन घंटे का कार्यक्रम था, पर पता नहीं कैसे ढाई-तीन घंटों में ही खत्म हो गया। हमारा कार्यक्रम खत्म हुआ, तब दत्तोबा साथ का लोकनाटक शुरू हुआ।

सब सामान इकट्ठा किया गाड़ी में भरा। खाना-पीना हुआ और गाड़ी घाणा गांव छोड़कर चल दी।

दौरे में था तभी वसन्त बापट का पत्र आया, एक मई को संयुक्त महाराष्ट्र बन रहा है। इस उपलक्ष्य में 'महाराष्ट्र दर्शन' का नृत्यमय कार्यक्रम करना है। इसलिए आप जल्दी लौट आइए।"

उन दिनों पु० ल० देशपांडे दिल्ली आकाशवाणी में थे। ऐसे मंगल अवसर पर कुछ कार्यक्रम हो, इसलिए उन्होंने कार्यक्रमों की रूपरेखा तैयार

थी। बापट उसे तुरन्त अमल में लाये और हमें पत्र लिखे। हम वापस बम्बई आ गये।

घर में बाप को दमे ने परेशान कर दिया, इसलिए माँ, बाप, बहन शकुन्तला—ये सब कुछ दिनों के लिए गाँव गये। घर में मैं, पत्नी, बच्चे, भाई, उसकी पत्नी—इतने लोग रह गये।

'महाराष्ट्र दर्शन' की पूर्व-तैयारी चल रही थी। लगातार तीन महीने चौदा के नेशनल कॉलेज के रंगमंच पर हमारा अभ्यास चला। 'महाराष्ट्र दर्शन' की योजना वसन्त बापट ने बनायी थी, उसका संगीत स्वर्गीय राम वडावकरने दिया था। और नृत्य-निर्देशन सुधा मर्दे, प्रमिला दंडवते, सुधा ठक्कर, शामबेन देशपांडे की ओर से था।

पूर्वाभिनय हुआ। हम सब कुल मिलाकर पचहत्तर लोग थे। राजधानी एक्सप्रेस—डिलक्स का एयर-कंडीशन गाड़ी का स्पेशल डिब्बा। ऐसी शानदार गाड़ी में यात्रा करने का मेरा पहला अवसर था। कुछ कलाकारों को छोड़कर बाकी सब नये थे परन्तु रिहर्सल के समय पहचान हो गयी थी। वैसे इसमें मेरा काम बहुत कम था। दो पंक्तियों का राष्ट्रीय-गान, मछुआरों के 'नाच' के साथ नाचना और पूरे समूह गीत में भाग लेना, इतना ही मेरा काम था। पर बाकी भागदौड़ के भी काम थे। शरीर से तगड़ा होने के कारण, भाऊ कदम के साथ था, परन्तु मैं चतुर था। काम से फुरसत हँसी मजाक करता गप्पें लड़ाता, कौन-क्या गलती करता है उसकी मीमिक्री करता। इसके कारण सबके बीच फेमस! सारी लड़कियाँ 'राम काका' कहकर जमा हो जाती।

स्टेज पर काम करनेवाला एक ग्रुप (लड़कों का) और बाकी सारा एक ग्रुप। पर सब लड़के-लड़कियाँ 'ची घाट राम काका' कहकर चिल्लाते। तब बापट कहते, "आइए बारीकराव!" उस ग्रुप में वे मुझे अपने पसन्द के नाम से पुकारते।

बाम्बे सेंट्रल पर हम विदा देने, सबके रिश्तेदार आये थे। हमारे रिश्तेदार और घर के लोग 'मामू की बकरियाँ' घराना है, ऐसा कहते। ऐसे में ये कैसे क्या आते? प्लेटफॉर्म हमारे ही लोगों से खचाखच भरा था।

विदा देने आये लोगों के चेहरों पर ऐसा भाव था जैसे संयुक्त महा-राष्ट्र का मंगल-कलश हम ही लेकर आ रहे हों।

गाड़ी चल दी। सबने गाड़ी से बाहर झाँका। प्लेटफॉर्म पर सभी लोग हाथ में रूमाल लिये हिला रहे थे। विदा दे रहे थे। मन में आया, स्साला, कितनी बार सोचा, स्टेशन पर दूर जानेवाले अपने लोगों को रूमाल हिला-कर विदा क्या देते हैं? इसका क्या अर्थ लगाया जाये? शायद हाथ से रूमाल ज्यादा हिलता है। हाथ की तकलीफ बचती होगी।

गाड़ी दौड़ रही थी। अब हम सब मस्ती में आ गये। सभी ने गाना शुरू कर दिया। सेवादल के गाने समाप्त हुए।

फिर लोकगीत, फिर सिनेमा के गीत। अंत में, समुद्र का उतार-चढ़ाव जिस तरह धीरे धीरे कम होने लगता है, वैसे ही गाने की आवाजें भी कम होने लगी। लोग चुप बैठने लगे। फिर कोई अत्याक्षरी तो कोई एक दूसरे से पहेलियाँ पूछने लगे। इस दौर में वृन्दावन दंडवते के साथ मेरी दोस्ती अच्छी जम गयी। मेरी स्पष्टता उसे अच्छी लगी।

सुबह ग्यारह बजे, 'दिल्ली आयी, दिल्ली!' चिल्लाने लगे। मैं चकित हो गया। अरे, हमें सांगली भी जाना हो तो हम मनमाड पैसेंजर दस बजे पकड़ते हैं। गाड़ी डोलते डोलते रात नौ बजे पहुँचती है। लेट हुई तो मत पूछिए!

'महाराष्ट्र भवन' में हम सबकी ठहरने की व्यवस्था की गयी थी। दिल्ली के दोनों कार्यक्रमों में केन्द्रीय मंत्री आये। पहले कार्यक्रम में तो राष्ट्रपति जी भी आये थे। दोनों कार्यक्रम सफल हों, इसके लिए श्री पु० ल० देशपांडे विशेष रूप से प्रयत्नशील रहे।

दिल्ली का दौरा पूरा हुआ तो तुरंत बम्बई में कार्यक्रम शुरू हुए। दिल्ली के कार्यक्रम के कारण इस कार्यक्रम का काफी प्रचार हो चुका था। इसलिए बम्बई के कार्यक्रम हाउसफुल गये। धोबी तलाव के रंगभवन में

तत्कालीन मुख्यमंत्री यशवंतराव चह्वाण आये। कार्यक्रम के मध्यान्तर में उनका भाषण हुआ। उन्होंने कहा, "इस कार्यक्रम को लेकर, बापट को चाहिए कि महाराष्ट्र-भर में घूमें। अन्य राज्यों में भी दिखलाएँ। इतना अच्छा कार्यक्रम है!"

मुख्यमंत्री खुश! उनकी प्रतिक्रिया जानकर वसन्त बापट तुरन्त बोले "घूमने को कहते हैं, हम अवश्य घूमेंगे। परन्तु घूमने के लिए ट्रांसपोर्ट का जो खर्च पड़ना है, उसकी व्यवस्था किये बिना घूमने में कोई दम नहीं है।"

श्री यशवंतरावजी ने मुख्यमंत्री फंड से गाड़ी खरीदने के लिए दस हजार रुपये दिये। तुरन्त गाड़ी बुक की गयी। खीरा कम्पनी की ओर से उसकी बॉडी बनवायी गयी। अन्त में उस गाड़ी का उद्घाटन मुख्यमंत्री करें, इसलिए हम उनके बँगले पर गये।

मुख्यमंत्री ने नारियल फोड़कर गाड़ी का उद्घाटन किया। फोटो खींचा गया। उस फोटो में मैं घुसा, यह बताने की आवश्यकता तो है ही नहीं, परन्तु गाड़ी, बापट, खीरा कम्पनी के प्रमुख, एस० एम० जोशी और मुख्यमंत्री का एक विशेष फोटो खिंचवाया गया। वह फोटो बड़ा बनवाकर गाड़ी में लगवाया गया। उसके कई लाभ हुए। आर० टी० ओ० वाले ने रोका कि दिखा फोटो। कहीं कुछ गड़बड़ी हुई कि दिखा फोटो। इस तरह फोटो का उपयोग हो रहा था।

गोवा जब स्वतन्त्र हुआ था, तब स्वर्गीय दयानन्द बांदोडकर ने इस कार्यक्रम के दो बार मंचन किये। पहली बार पणजी में दूसरी बार मडगाँव में। कार्यक्रम के बाद हम बेलगाँव निकले। चलते समय बापट ने सख्त हिदायत दी थी 'कोई भी दारू की बोतलें न ले चले। नाके पर झड़ती (तलाशी) होनी है।'

सेवादल के लड़के, 'दारू पीना छोड़ दो, तुम हिन्दुस्तानी भाई' इस तरह का गाना गाकर प्रचार कर रहे थे। तब वे इस फन्दे में क्या पड़ने लगे? पर बाकी की चीजें खूब खरीदीं—कपड़ा, सत्ता, कहीं न कुछ तो

यहीं से शुरू।

गोवा स्वतंत्र हुए दो महीने भी नहीं हुए होंगे। इस दौर में बापट ने सारा गोवा दिखलाया। फिर बेलगाँव के लिए रवाना हुए।

जहाँ सीमा समाप्त होती है, उस चेक-नाके पर जब गाड़ी पहुँची, तो हमें रोका गया। "चलिए सब बैग बाहर निकालिए!" बापट ने ऑर्डर दिया। सभी सेवादल के लड़के फटाफट बैग खोलते जाते। पुलिसवाले चेक करते जाते। परन्तु म्युजिशियन मंडली के चेहरों का रंग उड़ गया था। वे बैग लेकर गाड़ी के बाहर नहीं आ रहे थे। ये ध्यान में आते ही, उन्होंने सोचा अब आफ़त सिर पर आयगी? थोड़ा सोच विचार किया। संयोग से उस चेक-नाके का मुख्य इंस्पेक्टर मराठी था। "चलिए, हमारी गाड़ी तो देखिए!" ऐसा कहकर उन्हें गाड़ी में लाया गया।

वे साहब गाड़ी को देखते ही, 'वाह, बिलकुल लक्जरी टाइप है! सुंदर!" कहते हुए, जहाँ फोटो लगा था, वहाँ आये। मुख्यमंत्री का फोटो देखते ही साहब एकदम चित्त! गाड़ी से नीचे उतरते ही चेक करनेवाले पुलिसवालों से बोले, "अरे चेक करना बन्द करो! गाड़ी सरकारी सेवा-दल की है, दिखता नहीं! अच्छा बापट साहब, आई एम वेरी सॉरी! पहले ही बताया होता तो यह चेक न हुआ होता।"

धीरे से कानों में कहा "प्लीज, ऊपर मत बताइएगा!" गाड़ी चली। बापट ने और घबराये लोगों ने मुक्ति की साँस ली।

पर 'सरकारी सेवादल' शब्द का रहस्य न खुलने पाया। लीलाधर ने बताया, कांग्रेस सेवादल व राष्ट्र सेवादल का अंतर या तो वह समझ नहीं पाया या उसे मालूम नहीं होगा। इसे वह भी क्या करे?"

माँ भरे कपाल से बाप के साथ गयी थी और सूना कपाल लेकर वापस आयी।

बाप के गुण गाती माँ हमेशा रोती रहती।

'चाचा का भाग्य! किसी को न लगता कि बम्बई जाकर दो दुकानें खड़ी करेगा, धूमधाम से लड़के की शादी करेगा। किस तरह सब

अर्थात खूब पढ़ा लिखा ! उस और उसकी माँ को शकू पसन्द आयी। बाप के मरने के महीने भर के भीतर शकू की सगाई हो गयी।

हमारे रिश्तेदार हम पर फिदा थे। उन्हें लगा, अच्छा रिश्ता मिला है। चार दूकानों वाले ! वैसे, हमारी दो ही दूकानें थी। बाद में दो हमारे भागीदारों ने स्वयं खोली। हमारा उन दूकानों से कोई सम्बन्ध नहीं था। पर बाप सबको बताता था, 'हमारी चार दूकानें हैं। चार भागीदार !"

मैं फिर कलापथक के कार्यक्रमों में जाने लगा। इसी बीच भारत पर चीनी आक्रमण हुआ। सारा देश सुलग उठा। इंसानियत के दुश्मनों से युद्ध अपना गुरू ! जीतेंगे या मर जायेंगे।' इस तरह के गाने गूँजने लगे। दादा कोइके ने तुरन्त एक गीत तैयार किया—

हिमालय के शिखरों से झाँक रहा—
कौन झाँक रहा ? झाँकता यह लाल चीनी !
मुल्क हमारा निगलना चाहे, बैठा बगुला साधु सा।
इसे मसल दे उठ खड़ा हो, चल रे मर्दा !
इसे कुचल दे, उठ खड़ा हो, चल रे मर्दा !
सुस्त बैठकर नहीं चलेगा, नहीं चलेगा !

तय हुआ कि संयुक्त महाराष्ट्र के फार्स की शैली पर इसे पेश करना होगा। एक शाहीर और एक उसका विरोध करनेवाला। तुरन्त रिहर्सल प्रारम्भ हुई। जनता कलापथक का स्थान था, नायगांव शेटे मार्केट में समाजवादी पार्टी का कार्यालय।

प्रचार काय ज़ोरों से शुरू था। बम्बई में अनेक स्थानों पर कार्यक्रम होने लगे। उसका अच्छा असर जमा। इसी बीच माँ बीमार पड़ी। उसे मालूताई पंडित (बापट की बहन) एम० डी० को दिखाया। उन्होंने बताया किडनी की तकलीफ है देखभाल कीजिए !" और दवाइयाँ लिख दी। मैं नौकरी दूकान और रात के कार्यक्रमों में व्यस्त था। शकू की शादी की तारीख पास आ रही थी। मैं सोच में पड़ गया।

एक दिन कार्यक्रम पूरा करके घर आया तो माँ अस्पताल में पहुँचा दी गयी थी। लोगों ने मुझे गालियाँ दीं, "घर का बिलकुल ध्यान नहीं है।"

'गादी यदि चली गयी, तो घर का क्या होगा?"

इस तरह लोग बोलने लगे।

'छोटा होने से नकटा होना अच्छा!' ऐसा कहा जाता है।

पर मुझे लगता है, बच्चा और करेला, लोगों की नजर में एक सा होता है। वह चाहे जितना करे, पर उसे लोग कहते ही रहते हैं। वैसे लोगों को दूसरों के घरों में झाँकने की आदत भी होती है। भला मेरी माँ बीमार हो और मुझे चिन्ता न हो! डॉ० मडलिक, डॉ० मालूताई पंडित को दिखाया। अब अगर उसने अपनी देखभाल खुद नहीं की तो इसमें मैं क्या करता?

माँ को सेंट जॉर्ज हास्पिटल में पहुँचाया गया था। अपनी पहचान के बल पर मैं उसे सार्वजनिक वार्ड से स्पेशल रूम में ले गया। कुछ दिनों तक तो माँ हिलती डुलती और बातें भी करती रही, पर बाद में वह लोगों को पहचान तक न पाती। डॉक्टर ने कहा, 'अपना एक आदमी रात में यहाँ रखिए।"

हम बोरीबन्दर स्टेशन के सामने बाजार गेट में रहते थे। उसी में लगा सेंट जॉर्ज हास्पिटल! अब सामने कुछ नयी बिल्डिंगें हो गयी हैं, पर उस समय एक ही बड़ी बिल्डिंग थी। आसपास घनी झाड़ियाँ। वहाँ डॉक्टर और नर्सों के निवास थे। दिन में ठीक, पर रात में बड़ा डर लगता। आदमी यदि जगह बदल दे तो वह जल्दी सो नहीं पाता। और फिर यह अस्पताल और अपना आदमी बीमार! कैसे नींद आती? रात-बेरात बीमार लोग कराहते। कोई नींद में कुछ कहता, कोई दर्द से चिल्ला उठता। इसी बीच इंजन की तेज सीटी भी बजती। कभी कभी यह सब इस तरह गडमड हो जाता कि अच्छे-अच्छे घबरा उठते। ऐसी जगह रात-भर रहने के लिए मुझे छोड़कर और कौन जाता? कार्यक्रम होने पर, कार्यक्रम करके मैं अस्पताल जाता।

किसी ने बताया कि अमुक-अमुक डॉक्टर अपनी जात वाला है। मुझे सहारा लगा। ढूँढते ढूँढते उससे जा मिला। नमस्कार किया। आने का

कारण बताया। मुझे लगा, उसे यह सुनकर खुशी होगी। पर उसके माथे पर बल पड़ गये।

वह साथ आया। माँ को जाँचा। माँ के डाक्टर से मिला। आपस में कुछ बातचीत हुई। फिर वे दोनों माँ के पास आये। फिर जाँचा, पेन पेपर पर लिखा। वैसे उसने मेहनत की, पर जाते समय मुझे बोला, "नगरकर, आपके डॉक्टर को जो बताना था, वह बता दिया। सब ठीक हो जायेगा। (एक ओर ले जाकर) कृपया, मैं आपका जाने वाला हूँ यह किसी को मत बताइएगा! मेरा मतलब है, कुछ नीची दृष्टि से देखते हैं, इसलिए!"

ऐसा कहकर वह निकल गया। मैं उसे देखता रह गया।

डाक्टर नरवणे के 'समर्थ व्यायाम मन्दिर' के सामने हमारा कार्यक्रम था। कार्यक्रम खूब जमा। उस कार्यक्रम में डॉक्टर आये थे। साथ ही, समाज कल्याण विभाग की प्रमुख महिला अधिकारी भी थीं। वे कार्यक्रम देखकर बेहद खुश हुईं। मुझे बधाई देती बोलीं 'वाह, बड़ा शानदार काम करते हैं!'

बगल में नादा था। कहता क्या है 'इसकी माँ सीरियस है, इसलिए आधा ध्यान उधर लगा है। नहीं तो इससे भी शानदार काम करता है।'

'किस हॉस्पिटल में?' उन्होंने उत्सुकतावश पूछा।

मैंने सारी जानकारी दी। फिर उन्होंने बताया कि अमुक स्थान पर सुबह आठ नौ बजे आइए। फिर हम दोनों मिलकर हास्पिटल चलेंगे।

उनके बताये अनुसार मैं सुबह हाजिर हो गया। उन्होंने अपनी मोटर निकाली और हम अस्पताल आये। उनके पूछताछ करते ही चारों ओर भगदड़ मच गयी। डीन को फोन किया गया। डीन भागते आये। सारे डाक्टर जमा हुए।

वे पूछ रही थीं और डीन जानकारी दे रहे थे। माँ का केस पेपर मँगवाया गया और बारीकी से जाँचा गया। फिर सारा मोर्चा माँ की ओर मुड़ा और माँ की बारीकी के साथ जाँच होने लगी।

वे महिला अधिकारी जब आयीं और भगदड़ मची, तो डाक्टरों की

कुछ पूछा तो सिर्फ उसकी ओर देखती रहती, परन्तु आँखो में हलचल न होती।

उस महिला के वैसा बताते ही मैंने कलेजे पर पत्थर रख लिया। मा की ओर देखकर तो जितना रो सकता था, रो लिया। लेकिन उस महिला की बतायी बात और किसी को नहा बतायी। लोग चार से छह में बीच मिलने आते थे। मैंने गाँव के सभी रिश्तेदारों को पत्र भेज दिये थे। बाबूतात्या, बाधुल, तलेगाँव और जवला की मौसियाँ और उनके पति आये। मा का भाई भी आया।

ताडदेव का कार्यक्रम कर आया। माँ की तबीयत अब अधिक खराब हो चली थी। छोटा भाई और बाबूतात्या मेरे आने तक रुके रह। रात का एक बज रहा होगा। छोटे भाई को घर भेजा और बाबूतात्या वही रुका। सुबह डॉक्टरो ने कहा, आज आप रुकिए।" तब मैंने बाबूतात्या को घर भेजा और मैं मा के पास रुका। मा का अन्त समय आ पहुँचा है, यह मैंने जान लिया था। इसीलिए मैं चारपाई की ओर जाता रहता और मा को देखता रहता। लगता जिस तरह सिनेमा नाटको मे आदमी मरते समय अपनी अन्तिम इच्छा बताकर मरता है वैसा ही कुछ घटेगा। मेरी मा मुझसे कहेगी, 'मेरा सिर गोद म रख ले। तू बडा है। अच्छी तरह घर सभालना, दादू की शादी ठीक से करना छोटे भाई को खूब प्यार करना।' परन्तु वैसा भी नही हुआ। मैंने मा स पूछा "मा तुझे कुछ कहना है? पर माँ कुछ कुछ न बोलती। मैंने दो चार बार पूछा। पर वह बोलती ही नही थी। मैंन उसको हिलाया बोल न।'

इतना कहते ही नस चिल्लायी, "आपको कुछ समझ है या नही? पता है, कल स वह बेहोश हैं? बाहर बैठिये।

अतत दोपहर ढाई बजे माँ चली गयी। सुबह से ही मन अस्थिर था। ... की तरह दोपहर का मुझे छाटने कोई नही आया था। नस ने

समाचार दिया। जो होना था, वह हुआ ही। आखें पोछी और माँ के गुज़रने की खबर देने घर की ओर निकला।

उधर पट मे चूहे कूद रहे थे। घर जाते समय मैंने सोचा, अब चारो ओर खबर जायेगी। सब आयेंगे, लाश घर ले जायेंगे, फिर आग ले जायेंगे। अर्थात खाने की बात ।

मैं होटल म घुसा। भयकर भूख लगी थी। पेट भर खाना खाया और रोते रोते निकला, "मेरी माँ मर गयी, होऽ ।"

मैं जब घर पहुँचा, सब लोग खाना खाकर सो गये थे। कोई घर म, कोई गैलरी म। मेरे समाचार देते ही रोना धोना शुरू हो गया। बाबू-राव दूकान की ओर गया। दोनो दूकानें बद हुई।

बाबूराव मोरे हमारा भागीदार। यह आदमी इन कामो म हमेशा आगे। उसने तुरत सारे सूत्र अपने हाथ म ले लिये। हमारी जाति म कोई मरा कि पहली खबर मोरे को। मोरे बाबा दौड पडना। अच्छा, जानकारी भी सारी। पास निकालना, अतिम सस्कार का सारा सामान लाने लोगो को भेजना, सबको खबर भेजने मे वह बडा निपुण।

हॉस्पिटल स लाश घर लायी गयी। सब दहाड मारकर रोन लगे। मौसियाँ सिर पटक पटककर माथा रगड रगडकर रो रही थी माँ के गुणो का याद कर रही थी। मैं गैलरी म सवेदनहीन बैठा था। मुझे जितना रोना था, चार दिन रो लिया था। अब मेरी आँखो म आँसू नही थे।

कोई मौसी धीरे से बोली, 'मुए की आँख म पानी भी नही।'

मोरे अपनी जल्दी म था। 'चलिए, स्नान कराइए। अहो गणपत-राव, लोग आ गये न? यशवतराव फोटोवाले को सदेशा दिया न? सामान लाने किसे भेजा? अब तक क्यो नही आया?'—इस तरह फटाफट बोले जा रहा था। उसके आदेशानुसार लोग भाग दौड कर रहे थे।

माँ को स्नान कराकर, नयी साडी पहनाकर नीचे लाया गया। फोटो-वाला आया था। दो लोगों ने माँ को कुर्सी पर बैठाया। उसके पीछे मौसियाँ और उनके पति खड़े हुए। फोटो मे समाने की सबम हडबडी

थी। हम माँ के पैरों के पास बैठाया गया। एक बार फोटोवाले ने सरसरी निगाह घुमायी और फोटो खींचने के लिए तैयार हो गया। "रेडी प्लीज, हाँ, वगरर ! रेडी प्लीज !" ऐसा कहकर उसने फोटो खींचा। अच्छा हुआ उसकी अंग्रेजी किसी की समझ में नहीं आयी।

भजन मंडली आयी थी। वह गा रही थी। लाश बाँसों की तिकटी पर बाँध दी गयी। मेरे हाथों में मटकी थमायी गयी। जैसे ही लाश उठायी गयी, सब दहाड़ मारकर फूट पड़े, "छोड़के जा रही है ? इसी के लिए हम बुलाया था क्या ?"

भजन मंडली आगे आगे। उसके पीछे मैं मटकी थामे और मेरे पीछे माँ की लाश। उसके पीछे लोग। इस तरह शव यात्रा सोनापुर की ओर चली। किसी ने मुझे थामा हुआ था। काफी देर बाद मैंने उसकी ओर देखा तो वह ताड़देव का सीनियर शिंदे था। शव यात्रा धोबीतलाव, चिरा-बाजार की ओर से जा रही थी। मुझे थामे शिंदे ने कहा, "कल के कार्यक्रम पर ताड़देव के लोग बहुत खुश हैं। तुम्हारा काम बड़ा शानदार था ! '

मैं चुप। क्या कहना !

'अब फिर कार्यक्रम कब है ?"

मैंने मन में कहा 'पगले ! क्या यही पूछने का वक्त है ?'

चिता को अग्नि देने के बाद जब हम सब घर की ओर वापस लौटे तो उस समय रात के साढ़े ग्यारह बज चुके थे। घर आने तक बारह बज गये। हम देखते ही घर के लोग फिर दहाड़ मारकर रोने लगे।

घर में रोना धोना शुरू था। बाबूराव मोरे ने आसपास के सारे रिश्तेदारों को 'कड़वा और मीठा' किया। अर्थात जिसके घर में मौत हुई हो उसके घर चूल्हा नहीं जलता। ऐसे में सारे लोग सभी ओर से थोड़ा-थोड़ा भोजन लाकर घर के लोगों को खिलाते हैं। इसी को 'कड़वा और मीठा करना' कहते हैं।

जब वैसा भोजन आया, घर में मौसियाँ हमारे लोग, भाई-बहन,

पत्नी, लडके—सब रो रहे थे। मैं गैलरी मे घुटना मे सिर गडाये चुपचाप बैठा था। बाबतात्या और मोरे कहने लगे, "अब चुप रहिए! उसका कुछ बुरा नही हुआ। दो दो निवाले खा लीजिए!"

बहुत देर आग्रह करने के बाद सबने वह 'कडवा कौर' खाने की शुरुआत की। वे खा रहे थे। मैं गैलरी म बैठा था।

'कडवा कौर' खाते-खाते किसी मौसी के ध्यान म आया कि रामचद्र भूखा ही है। वह बोली, "अरे, बचे, रामचद्र को भी भोजन के लिए बुलाओ!"

घर के लोग और 'कडवा' भोजन की मात्रा कुछ इस तरह थी कि हरेक क हिस्से चार चार निवाले भी न आते। यह सब उस बडी मौसी के ध्यान म आया तो वह कहती है, "अरी उसकी माँ चली गयी, उसे भला भूख लगेगी?"

मैंने मन म सोचा दोपहर को यदि मैंने न खा लिया होता तो मेरा क्या हाल हुआ होता?

मा के गुजर जाने का समाचार सारी मित्र मडली को, सेवादल कलापथक आदि के लोगा को मालूम हो गया। सब मिलने आये। भाऊसाहब रानडे, वसत बापट, लीलाधर हेगडे, दादा कोडके सुधाताई वर्दे, प्रमिला दडवते, गिरकर मास्टर—ये सब आ रहे थे और धीरज बँधा रहे थे।

दसवें दिन घर के सब लोग, रिश्तेदार और जाति बिरादरी के लोग, सोनापुर श्मशान की धमशाला मे गय। वहा मेरा और मेरे भाई का सिर मूडा गया, स्नान हुआ, फिर पडित ने पूजा की। भात तैयार किया गया। उस पर दही, घी की धार डाली गयी और कौवो के खाने के लिए छोटे से चबूतर पर रख दिया गया।

हमार पहले किसी ब्राह्मण का दसवा हो चुका था। उसका भात वहाँ रखा था। उस कौवे ने झट स खा लिया। गपागप खाकर वह जाने लगा, पर हमारे श्राद्ध के भात को कौवे ने न छुआ। यह देखकर लाग कहने लगे, 'गोदी के प्राण अभी भी मँडरा रहे हैं।"

एक मौसी बोली, "कहो न, शकू की शादी धूमधाम से करूँगा।"

मैंने वैसा कहा।

'तुम्हारे मायके के लोगों को नहीं भूलूगा।" दूसरी ने सुनाया।

मैंने वैसा भी कहा, पर कौवा था कि आने को तैयार ही नहीं था।

"गोदी के मन मे जाने क्या खटक रहा है, कुछ समझ नहीं पड़ता।" कोई और बोला।

"बाबा रामचद्रा, मैं घर को, भाई बहन को खूब मन से प्यार करूँगा, ऐसा कह!" एक और आवाज आयी।

मैंने वैसा भी कहा।

लोग जो कहते जा रहे थे, मैं वही करता जा रहा था। पर कौवा हमारा भात छूने तक को तैयार नहीं था। कौवा आता और ब्राह्मण का निवाला खाकर चला जाता। हमारे निवाले की ओर गलती से भी न देखता। वैसे पास पास ही रखा था, पर बेकार। वह देखने तक को तैयार न था।

बाबूतात्या यह सब देख रहे थे। सारी बात उनके ध्यान में आ गयी। ब्राह्मण का निवाला सुगंधित चावल का। उस पर दूध दही और असली घी री धार! हमारा निवाला मोटे चावल का उस पर चालू दूध दही और डालडा घी की धार—यह अतर था। कौवे का धधा तो रोज का था। अच्छे और खराब का अतर तो उसे मालूम होगा ही। अच्छा दिखने के बाद खराब की ओर क्योंकर फटकने लगा? तब बाबूतात्या ने उस ब्राह्मण के भात को दूसरी ओर सरका दिया। यह करने से पहले उन्होंने ठीक से देख लिया था, कि उनकी ओर का कोई आदमी है तो नहीं! पर व लोग कब के जा चुके थे।

उस भात को अलग छिपाकर रखने के बाद कौवा आया। एक झडप मारी। पर खाया हुआ भात न दिखता। एक राउड लिया। वापस गया, फिर आया। इस तरह दो तीन चक्कर लगाये, पर खाया हुआ भात न दिखा। तब वहीं जाकर उसने हमारे भात को चोंच लगायी।

सारे लोग बाबूतात्या का मुह ताकने लगे। पर वह हँसने हँसाने का समय नहीं था, इसलिए बाबूतात्या नहीं हँसे।

"रामचंद्रय्या, तेरही कैसी करोगे ?" बाबूराव मोरे ने मुझसे पूछा।

"बाबूराव, क्या तेरही करें ? क्यों फालतू में खर्च में डाल रहे हैं ? बस, चार कंधे देनेवाले बुला लें, उन्हें ही भोजन करा दें।" बाबूतात्या ने मेरी ओर से कहा।

"साहुलकर ये गाँव नहीं है। गाँव होता, तो शायद छूटता भी नहीं। रीति रिवाज वगैरा कुछ मानते हैं या नहीं ? कोटा में हम भागीदार कितने रुवाब से रहते हैं, सारे रीति रिवाज मानते हैं। बम्बई के नाई कहते भी हैं, कि कोई भी काम कोटा के नाईं ही करें। वह परम्परा आप तोड़ने चले हैं ?"

इस तरह बाबूतात्या और मोरे के बीच माँ की तेरही को लेकर विवाद चल रहा था। बाबूतात्या की बात मौसिया-चाचाओं को नहीं रुची। मोरे से कहा, "मोरे, वह बाबूराव बेकार आदमी है, उसके मुँह मत लगिए। दसवें पर क्या कुछ हुआ, आपने देखा ही है। ऐसे में गोंदी का यह संस्कार अच्छा कीजिए। उसकी आत्मा को शांति मिलेगी।"

मेरी ओर से सिर्फ मेरा चाचा बाबूतात्या था, बाकी सारे खिलाफ। कैसे खींचतान जो थी, वह मोरे ने साफ कर दी। मुझे एक ओर ले जाकर कहा, "ऐसा कौन सा खर्च लगने वाला है ? वाडी (भगत कार्यालय) का पचास रुपये, बाकी प्रति व्यक्ति दो रुपये। लोगों में जो आयेगा यह डेढ़ सौ दो सौ के करीब होगा। अर्थात तुमको सिर्फ सौ डेढ़ सौ खर्च पड़ेगा। इसके लिए बिरादरी की बदनामी लोगे ?"

मैं घेरे में फँस गया था। क्या कहूँ, क्या न कहूँ ? कुछ समझ में न पड़ता। काफी बातें होने लगीं। तब मैंने, जैसा सब कह रहे थे, वैसा ही तय कर डाला।

मैंने जैसे ही अपनी सहमति दर्शायी, बाबूतात्या ने बड़े उत्साह से सब-कुछ किया। बाजार की नारायण वाडी ली। [illegible] रसोई के सूत्र अपने हाथों में लिये। गुजराती रसोइया लाया। लड्डू के बजाय केले परोसना तय किया। सादा भात, मसाला भात, बैंगन आलू की सब्जी, बूँदी के लड्डू—इस तरह का भोजन तय किया। जो दाह-यात्रा में आये थे उन्हें और बिरादरी [illegible] निमंत्रण दिया।

कोई तीन साढ़े तीन सौ लोग आये। दो सौ रुपये समवेदना-स्वरूप मिले।

माँ को गये एक महीना हो गया। घर के मेहमान लोग मेरे खर्च पर अपने गाँव लौटने लगे थे। अब घर खाली हो रहा था। अंत में घर के सदस्यों के अलावा सब चले गये। मैं काम पर जाने लगा। नियमित काम धंधा संभालने लगा।

माँ जब बीमार थी तब चाल की उसकी प्रिय सहेली भागूआक्का गाँव गयी थी। दो-तीन महीने बाद लौटी। उसकी माँ से खूब पटती थी। एक दूसरे के सुख दुख में वे सहभागी होतीं। वैसी ही चिगूआक्का थी। पर चिगूआक्का यहीं थी। भागूआक्का गाँव गयी थी।

मैं काम से लौटकर दोपहर में घर आया। ड्यूटी खत्म हो गयी थी। खाना खाया और दूकान पर चला गया। चार पाँच बजे के करीब वापस घर लौटा। हमारा कमरा दूसरी मंजिल पर। पहली मंजिल पर आ— तब चिगूआक्का और भागूआक्का बातें कर रही थीं। हँसने की आवाज भी आयी। भागूआक्का हँसमुख। उसकी हँसने की आवाज से मैंने पहचान लिया कि वह गाँव से आयी है।

दूसरी मंजिल पर आया। मेरी और भागूआक्का की जैसे ही आँखें चार हुईं वैसे ही वह उठी और गले मिलकर रोने लगी, 'रामचंद्रया मेरी गोदी मुझे छोड़कर चली गयी रे।'

मैं भी रोने लगा। चिगूआक्का हमें समझाने लगी। भागूआक्का फिर भी न रुकी। रोते रोते कहने लगी, 'गोदी मेरे दिल का टुकड़ा थी। कोई भी बात कभी छिपायी नहीं। हैं हैं कुछ भी हो मुझे जरूर बताती। मैं बदनसीब इसी समय गयी। कैसे सूझी मुझे गाँव जाने की? रामचंद्रया, वह बीमार थी। मैं गाँव निकली तो उससे मिली। उसने कहा मुझे उधार चालीस रुपये दे दे। मैंने दे दिये। वापस कब लौटाओगी, पूछने पर कहती थी कि अरी मैं यदि इस बीमारी में मर गयी तो मेरा रामचंद्रया एक एक रुपिया वापस कर देगा ऐसी मेरी गोदी। हे ईश्वर तू उसे कैसे उठा

ले गया ? हैं हैं हैं !"

मैंने जो कुछ समझना चाहिए था, समझ लिया। मन मे सोचा, 'ये चालीस रुपये तो देने ही पड़ेंगे !'

भागूआक्का जोर से रोन लगी, तब मैंने कहा, "भागूआक्का मा का वचन मैं पूरा करूँगा, रो मत !"

'अरे, तू तो दया ही। गोदी ऐसे ही थोडी बोलती थी। पैसो का क्या है, वे तो मिलेंगे ही, पर मेरी गोदी मुझे कहाँ मिलेगी ?"

ऐसा कहकर भागूआक्का फिर सिसकने लगी।

मां को गये एक महीना हो गया। इसी माह शकू की शादी होनी थी। नही तो, फिर तीन साल को टलती। मां के सामने सगाई हो चुकी थी। पर बेचारी की तकदीर मे बेटी की शादी देखना नही था।

शकू सबसे छोटी बहन। सबकी प्यारी। छठवी तक पढी। पढा-लिखा पति भी पाया। जोडी अच्छी जमेगी, मन कह रहा था। ब्लॉक के पैसे आये थे। उसका अच्छा उपयोग करने का मन था। परन्तु बीच म ही माँ की बीमारी और उसके गुजर जाने मे सब गडबड हो गया। अब शकू की शादी ठीक से करने की बात तय की और कामो मे जुट गया।

बाबूतात्या मेरी मदद के लिए था ही। मुहूत निकाला। शादी गाव मे ही करने की बात तय हुई। निमन्त्रण पत्रिका छपवायी और सबको भेजी।

मैंने लीलाधर से पूछा, "सेवादल की गाडी दोग ?' वह मान गया।

गाडी के ड्राइवर पाचाल से दोस्ती थी। ऐसे मे वह भी तैयार हो गया। विभाग मे दोस्त गजानन तावडे का वड करी रोड पर था। उसे बताया कि गाडी है, शिरडी ट्रिप भी हो जायेगी और दो दिन मेरे गाव मे बहन की शादी म रहना। वह मान गया। पुणे के दोस्त सयाजी लहाने के पास से लाइट के लिए जेनरटर भी ले लिया।

शादी के लिए, बम्बई से हम सेवादल की गाडी से चले। साथ मे बैंडवाले थे। शिरडी से हमारी गाडी सायल आयी। सारा गाव आँखें

फाड़कर देखता रहा। फिर गाड़ी लेकर पुणे आया। वहाँ से जेनरेटर, नीलूभाऊ, उसके गाँव के लोग और पुणे के ससुरालवाले रिश्तेदार सभी को गाड़ी में खचाखच भरकर सारुल लाया। साथ ही, विवाह सम्पन्न होते ही, गाँव को और बरातियों को कलापथक का कार्यक्रम दिखाने के लिए, पुणे का युनिट ले आया था। सारा साज मन के अनुसार जम गया।

शादी का दिन आ धमका। माँ के मायके के लोग आये थे। वैसे, हमारे बरातियों पर दुख की छाया थी। एक माह पहले माँ मरी थी। पर शादी होनी ही थी इसलिए कुछ खास उत्साह नहीं था। फिर भी मैंने इतनी तैयारी की, कि कोई फालतू यह न कह पाये कि माँ-बाप के बाद लड़का बेकार निकला।

लोग क्या कहेंगे, इस बोझ के नीचे जो दबे चले जाते हैं, उनमें से एक मैं भी था।

शादी के वक्त दूल्हा सज-सँवरकर घोड़े पर सवार होकर आया। दिन ढल रहा था। वैसे शाम नहीं हुई थी। फिर भी मैंने जेनरेटर चालू करके आवश्यकता न होने के बावजूद बत्तियाँ जला दीं।

बड़ी धूमधाम में विवाह सम्पन्न हुआ। अब तक रात उतर आयी थी। इतने में जेनरेटर खराब हो गया और सारी बत्तियाँ गुल! चारों ओर चीख चिल्लाहट, भाग दौड़ मच गयी पर जेनरेटर ठीक न हुआ। ये मशीन जात इतनी जिद्दी कि इसके सामने औरतों-बच्चों की जिद्द भी फीकी पड़ जाये! तब पाचाल ने गाड़ी की लाईट जलायी और आगे का कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उसी लाइट में भोजन हुआ हालाँकि साथ में मशालें भी थीं।

बाद में, किसी तरह जेनरेटर ठीक हुआ। गाँव में सबको पता चल गया था कि कलापथक का कार्यक्रम है। इसलिए स्कूल के खुले मैदान में कार्यक्रम रखा गया और हम उसकी तैयारी में लगे।

सारा काम निपटाकर बाराती-मेहमान साढ़े ग्यारह बारह के करीब कार्यक्रम के स्थल पर आये। लोग जब बैठ गये, तो मैंने नीलूभाऊ से कार्यक्रम शुरू करने को कहा। ढोलकी पर थाप पड़ी। इतने में सयाजी लहाने पुणे से खास गाड़ी लेकर हाज़िर! हमने सोचा, शादी के लिए आया

होगा। पर वह आया था जेनरेटर लेने, वह भी जल्दी मे, क्योकि पुणे मे प्रचड स्फोट हुआ था और सारी लाइट गुल थी। इसलिए जेनरेटर की बहुत आवश्यकता थी। किसी तरह कार्यक्रम निबटाना पडा और जेनरेटर भिजवा दिया।

दूसरे दिन सभी लोग अपने-अपने घर लौटने लगे। कुल मिलाकर, शादी निबटानी थी इसलिए सब कुछ किसी तरह खिच रहा था। मन से कोई उत्साही नही था। यह बात दूल्हे के मेहमानो को मालूम हुई। दुखद घटना पता चल गयी थी। दूल्हे की ओर के लोग कह रहे थे कि पारुबाई (दूल्हे की माँ) ने अपने इकलौते बेटे का रिश्ता ऐसी जगह क्या किया ?' लडका पढा लिखा है, लडकी कही भी मिल जाती।

शकू की तकदीर से ससुराल उसे सुखदायी नही मिली। पहले दो एक साल तो ठीक बीते पर बाद मे, उसके और उसकी सास के बीच झगडे शुरू हुए। शकू हमारी अतिम बहन। सबसे लाडली। उसके सारे लाड पूरे किये गये। माँ का उस पर सबसे अधिक प्यार था। ऐसे मे उस सास की तानाशाही सहन न होती।

अपने बेटे को बडी महनत से बडा किया, पढाया। अब कही लडका हाथ से न निकल जाये, इस बात को लेकर शकू और उसकी सास के झगडे शुरू हुए। शकू को बचपन से कम सुनायी देता है। अत किसी को धीरे बोलते देखकर उसे यह शका होती है कि उसी के बारे मे बात चल रही है और जोर से बोलने पर कहती, "मैं कोई बहरी हूँ।"

अत मे मैं उसे और उसके पति को बम्बई ले आया। सोचा, एकाध दूकान चलाने को दी जाये। पर बेटे को लगता 'मैं इतना पढा-लिखा और हज्जाम का धधा करूँ ?' उसे तो आफिस मे कही अच्छी नौकरी चाहिए थी। पर वह कहा मिलती ? आखिरकार, बेटा, एक दिन गुस्से मे फौज म भरती हो गया। तीन चार साल रहा। तब तक शकू

हमारे पास रही। हम पुणे गये। उस समय भी शकू हमारे पास ही रही। उसका पति घर का इकलौता लड़का! दूसरा कोई नहीं। इसलिए खटपट करके उसे वहाँ से मुक्त किया। शकू को और उसके पति को फिर उसके गाव, अर्थात नगर भेज दिया। लगा, अब सुख से गृहस्थी जमाएँगे। पर फिर वही शुरू हो गया। मैं दो-तीन बार हो आया। समझौता करा आया। कुछ समय के लिए वातावरण ठीक रहा, पर फिर शकू हमारे घर! यह दो तीन बार हुआ।

सच बात क्या है, यह जानने के लिए मैं नगर गया। शकू के पति से मिला। अलग ले जाकर पूछा। पर मन की बात कुछ न बोलना। 'मेरा कुछ नही पर माँ की और उसकी नहीं पटती। मैं क्या करूँ?' इस तरह घुमा फिराकर उत्तर देता। इसलिए उसके खास मित्र से मिला। शायद अपने मित्र से कभी कुछ उगला हो! मेरा अन्दाज सही निकला। उसका मित्र बोला "सास उसके सपने मे आती है। कहती है शकू के नाम की एक दूकान है छोड़े मत, माग ले।"

मैं तो चक्कर खा गया! बेटे की बड़ी अजीब माग! उसकी और उसकी सास की सिफ सगाई मे मुलाकात हुई थी, वह भी उड़ती उड़ती, फिर वह इसके सपने मे आयेगी कैसे? मैंने उसके मित्र से कहा "मेरे भी सपने मे मेरी मा आती है और कहती है किसी ने भी दूकान मागी तो उसे जूते स पीट!"

इस तरह धीरे धीरे हमारे सम्बन्ध बिगड़ते चले गये और एक दिन तलाक दिलाकर शकू का दूसरा घर बसा दिया।

माँ गयी। शकू की शादी हुई। अब मेरी पत्नी और भाई की पत्नी के बीच कभी कभी खटकने लगी। गिरगाव की दूकान की अवधि पूरी हुई और उस पुराने मालिक को सौंप दिया। फिर सोचा कि दूसरी कोई दूकान देखी जाये जिससे एक भाई की और एक मेरी हो जाये। पर थोड़े पैसो

कि दूकान कहाँ से मिलती ? इसलिए पुणे में दूकान खोजने, वहीं कमरा ढूँढ़ने और भाई को वहाँ भेज देने की बात सोची। सफेदपोश समाज में भाई-भाई अलग रहते हैं और घर में एक लगाव भी बना रहता है। इसलिए पुणे में नीलू भाऊ के घर मुकाम किया। उसे लेकर, ये दूकान देख, वो दूकान देख! परन्तु मन लायक कहीं दूकान न मिली। तब उससे यह कहकर बम्बई चला आया कि अच्छी दूकान कहीं मिलते ही मुझे लिख भेजा।

एक दिन नीलू भाऊ की चिट्ठी आयी कि तिलक रोड पर एक दूकान है। मैं तत्काल चल पड़ा। जगह देखी। पसन्द आयी, पर दूकान का मालिक और मालिक द्वारा माँगी गयी रकम नहीं पोसा रही थी। जगह छोड़नी नहीं है, इसलिए कुछ दिन रुका। अन्त में उसकी मर्जी के अनुसार पैसे दिये और दूकान अपने कब्जे में ली।

जितने पैसे थे, दूकान खरीदने में लग गये। अब दूकान नहीं करने के लिए पैसे कहाँ से आते ? आठ महीने सिर्फ किराया दिया। दूकान बन्द थी। पैसे कैसे इकट्ठे किये जायें, यह सवाल था ही। साथ ही, दूकान एकदम शानदार होनी चाहिए, यह बात भी दिमाग में पक्की बैठ चुकी थी। मैंने विचार किया। बीस लोगों के नाम तैयार किये। सब सम्पन्न थे लोग। हरेक आदमी पाँच सौ दे—यह बात लीलाधर से कही। नीलू को भी बतायी। वह और मैं आबासाहेब दलवी के पास गये। उन्हें बताया। उस दलवी ने झट में पाँच सौ रुपये निकालकर मुहूर्त किया। पैसे जमा करने में मैं, नीलू, दामू बोरकर इसी तरह घूमते रहे। कहीं आना नहीं है, फिर फिर ' कह रहे थे, यहाँ [illegible] [illegible] मिली। लीलाधर हेगड़े और मैं, हरि भाऊ गद्रे के पास गये। [illegible]

गयी। दूकान सजे एक हफ्ता हो गया, पर पूजा के पैसे नहीं थे। अब किसी ▪ किस मुँह से माँगते! दूसरे, बिना पूजा किये दूकान खोलना भी ठीक नहीं था!

एक बार मन में आया कि नीलूभाऊ से माँगा जाये, परन्तु उसकी और उसके घर की स्थिति मुझे मालूम थी। यह दूकान खड़ी करते समय मैं उसी के घर रहा था। खाना भी वहीं। इसलिए घर की हालत मुझे मालूम थी।

उसकी माँ साक्षात देवी! मेरी फजीहत उसे मालूम थी। मैं उसके घर में दो-तीन महीना तक रहा। मैं नीलूभाऊ से कहता कि तू खाने के पैसे ले ले, पर वह न लेता। एक बार तो गुस्से में यहाँ तक कह डाला कि मैं दूसरी व्यवस्था करता हूँ!

महाराष्ट्र में हर वर्ष अकाल तो पड़ता ही है। उस समय भी जोरदार अकाल पड़ा था। सेवादल ने पुणे से अनाज जमा करके अकाल ग्रस्त इलाकों में भेजने की बात सोची। नीलूभाऊ ने इसमें विशेष पहल की। अनाज एकत्र होने लगा। उसे अच्छा सहयोग भी मिलने लगा। पाँच छह बोरी अनाज एकत्र हुआ। यह सब नीलूभाऊ के घर रखा गया।

घर में अनाज का दाना न था। गाँठ में पैसे नहीं। खानेवाले मेरे समेत बारह तेरह। ऐसे में क्या किया जाये? यह समस्या नीलू की माँ के सामने। दरवाजे पर अनाज के बोरे भरे पड़े थे। उन्हें देखकर वह बोली 'नीलू कुछ पैसे हैं क्या?"

'पगार तुम्हें दे देता हूँ। अब पैसे कहाँ से आयेंगे?" नीलू ने कहा।

अरे घर में अनाज का दाना नहीं है। क्या करूँ? बोल।"

'पास पड़ोस से ले लो।" नीलू ने सुझाया।

'ले लती, पर पहला लौटाने से पहले अब कौन देगा?"

'तू अपना देख ले, मैं राम के साथ जा रहा हूँ।"

ऐसा कहकर नीलूभाऊ घर से बाहर निकला। जहाँ मैं खड़ा था वहाँ पहुँचा। माँ बेटे की बात मैंने सुन ली थी।

हम चलने ही वाले थे, तभी माँ ने फिर पुकारा। नीलू फिर पीछे मुड़ा। मैं भी दो कदम पीछे आ गया।

"क्या है ?" उसने पूछा।

"अरी, मैंने अब भी बताया न, कि मेरे पास पैसे नही है।"

"अच्छा ये बता, ये बोरे कब जाने वाले हैं ?"

"चार पाँच दिन मे जानेवाले हैं, पर तू क्यो पूछ रही है ?"

"दो चार दिन बाद भेजना है न, तो फिर आज के लिए मैं इसमे अनाज ले लेती हूँ। कल वापस डाल दूगी।"

माँ के इतना कहते ही नीलू भड़क उठा, "सारे भूखो मर जायें, परवाह नही, पर इन बोरो को छूना मत!" इतना कहकर वह बाहर आया। मैं सुन रहा था। मुझसे भी गलती हुई। इतना सारा दिखने के बावजूद, दूकान के हजारो रुपये जेब मे होते हुए भी, मैं मजे से मुफ्त मे खा रहा था! वह भी इतनी तगी मे! मुझे बडी शर्म आयी अपने आप पर।

नीलू बाहर आया। ऐसे जैसे भीतर घर मे कुछ हुआ ही नही। "चलो!" उसने कहा। मैंने लाख उसके हाथो मे नोट ठसने की कोशिश की, पर वह लेने को तैयार नही। तब मैंने आवाज ऊँची करते हुए कहा, "ये यदि नहा लेगा तो मैं यहाँ नही रहूँगा।"

तब नीलू ने बडी मुश्किल से पैसे लिये।

ऐसे नीलू से किस मुह से पूजा के लिए पैसे माँगता? बगल के फूल-वाले को हमारी भाग दौड का पता चला। उसने बिना कहे हमारी आवश्यकता पूरी की और दूकान की पूजा बडे ठाठ से हुई। नीलू की माँ ने अपने घर की तरह सारा कुछ सभाला। अत मे दूकान किसी तरह दत्तू के हवाले करके नवी पेठ मे उसे एक कमरा दिलवाया और इत्मीनान से बम्बई लौट आया।

एक महीने मे दत्तू की चिट्ठी आयी कि दूकान अपेक्षित रूप स नही चल रही है। मेरा गुजारा नही होता।

अब मैं क्या करूँ, कुछ समझ मे न आया। सही बात तो यह थी कि

दूकान धडल्ले से चलनी चाहिए थी, पर दत्तू के पत्र आते थे कि दूकान चलती नहीं। मुझे दूकान के सामनेवाले के शब्द याद आये। जब दूकान बन रही थी तो उस समय मैंने पान खाते हुए पानवाले से जान बूझकर पूछा था "कौन सी दूकान खुल रही है?"

वह मुझे पहचानता नहीं था। बोला, 'कोई बम्बई का नाइ एयर-कंडिशन सैलून खोल रहा है।" मैंने पूछा था "चलेगा?"

"चलेगा! (छदम हँसी हँसता हुआ) अरे, उसे कुछ ही दिनों मे बोरिया बिस्तर लपेटना पडेगा।' पानवाला चूना लगाते हुए बोला।

"क्यों, बिस्तर क्यों लपेटना पडेगा? एयरकंडिशन टॉप दूकान पुणे मे खुल रही है! चलने मे क्या हर्ज है?"

पानवाला बोला, "अरे भई, यह पूना है! और वह भी सदाशिव पेठ! सस्ता कहाँ मिलता है, लोग पहले ढूढ़ते हैं। और आसपास क्या कम सैलून है! पहले ही सब ठंडे पडे हैं। फिर कैसे चलेगा?"

दूसरा महीना बीत गया। दत्तू की फिर चिट्ठी आयी। मैं पुणे का चक्कर लगा आया परंतु धधा जैसा होना चाहिए वैसा सचमुच नहीं था। ग्राहक बाहर से झाकते सोचते बहुत रेट होगा' और साइकिल पर टाँग मारकर चले जाते।

तीसरे महीने म भी यही हालत। मैं बहुत घबराया। सागा के पसे लौटाने हैं। बक का सारा कर्ज आँखो के सामने घूमने लगता। उधर दत्तू लोगों स कह रहा था कि भैया ने जान बूझकर मुझे पुणे रख दिया।

इसी तरह कुछ दिन बीते। एक दिन दत्तू अपने बाल बच्चो के साथ बम्बई हाजिर हो गया। उसे देखकर मैं चकराया कि बिना किसी खबर-सूचना के आ गया। अब इसे क्या कहूँ? लेकिन मेरे कुछ कहने स पहले उसी ने शुरू कर दिया, 'दूकान ठीक से चलती वलती नहीं है। ग्राहक सारे सदाशिव पेठ और आसपास के। कमस है कि एक पसा भी ज्यादा

दे दें। कारीगरों का सिर्फ तनख्वाह में कैसे गुजारा होगा? और उन्हीं का गुजारा नहीं होता तो फिर मेरा गुजारा कैसे होगा?"

एक दिन मैं पुणे का चक्कर लगा आया। कारीगरों में से ही एक को मैनेजर बनाकर दूकान संभालने को कहा और लौट आया। यह सौदा कितना महँगा पड़ा? अब सवाल यह था कि लोगों के पैसे कैसे दें? शुरू में लगा था कि दूकान खूब अच्छी चलेगी, पर हुआ कुछ और ही। कारीगर, किराया, बिजली का बिल—यही सब देते देते नाक में दम हो गया, फिर किस्तें कैसे चुकाएँगे? ऐसे कई प्रश्न सामने खड़े हो गये। अंत में किसी को दूकान चलाने के लिए देने की बात मन में पक्की कर ली।

'तिलक रोड एस० पी० कॉलेज के पास भयंकर दुर्घटना! चार की जानें गयीं।' अखबार में छपी इस खबर से मैं अस्त व्यस्त हो गया। अखबार ध्यान से पलटने लगा—

'बी० एम० नी० × × × नम्बर की लारी सुबह आठ के आस-पास अलका टॉकीज से खारगेट की ओर बहुत तेज गति से जा रही थी। मॉडर्न बेकरी के सामने एक साइकिलवाले को बचाने के लिए ड्राइवर ने बस दायीं ओर मोड़ी, परन्तु उसका नियंत्रण छूट जाने के कारण गाड़ी तिलक रोड पर नये बने एयर-कंडीशन सैलून 'वदन केश कर्तनालय' की ओर मुड़ गयी। परन्तु फुटपाथ की वजह से अगले चक्के कुछ घूम जाने के कारण गाड़ी ने उस सैलून के बाहर का छप्पर, दरवाजे के सामने की साइकिलें, और एक फूलवाले की दूकान उड़ा दी। फिर कॉलेज की ओर जाती एक लड़की और फुटपाथ पर चल रहे तीन पैदल लोगों को रौंदती हुई वह लॉरी एस० पी० कॉलेज की दीवार से जा टकरायी।'

यह खबर पुणे के सारे अखबारों में पहले पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में फोटो सहित छपी थी। उस फोटो में मेरी दूकान साफ दिख रही थी। यह खबर पुणे में हवा की तरह फैल गयी और उस एक्सीडेंट को देखने सारा पुणे उमड़ पड़ा। लोग आपस में बातें कर रहे थे—

"अरे वाह ! यह दूकान कब खुली यहाँ ?"

"अच्छी, एयरकंडिशन लगती है !"

"अच्छा हुआ कि सिर्फ छप्पर ही उड़ा, नहीं तो लॉरी भीतर घुसती और ...!"

दूकान दो दिन बन्द रही। एक्सीडेंट को देखने के लिए पुणेवासी ऐसे उमड़े पड़ रहे थे, जैसे कोई प्रदर्शनी देखने जा रहे हों और मेरी दूकान का विज्ञापन हो रहा था।

दो तीन दिन बाद जब दूकान खुली, तो खचाखच भरी हुई। दाढ़ी बाल बनानेवाला सोच रहा था, यह सब कैसे हो गया ! कहने लगा, 'उसी दिन दूकान खोलने लगी। जोरों से चल निकली।"

मैं शनिवार-रविवार को बम्बई से पुणे आता रहता। धंधा अच्छा चल निकला था। मैं उस टूटे छप्पर की ओर देखता तो सोचता, 'स्साला-यह एक्सिडेंट नहीं हुआ होता तो ...'

कुछ लोग उस छप्पर की ओर देखकर कहते, "चार-पांच सौ का नुकसान तो हुआ ही होगा !"

मैं कहता, 'अरे भई, मेरा तो सिर्फ दूकान के छप्पर का नुकसान हुआ पर जो तीन चार लोग मर गये, उनके घर के लोगों का कितना हुआ होगा ? वे यदि घर के कर्ता धर्ता रहे होंगे, तो उन घरों के लोगों पर हमेशा के लिए छप्पर टूट पड़ा है !"

जवाब में वे कहते, "यह ठीक है, पर कभी कभी बुरे में से भला भी निकलता है।"

वह कैसे ?"

अरे भई, इस एक्सीडेंट ने तुम्हारी दूकान को सारे पेपरों में मुफ्त विज्ञापन दे दिया।

'पर उसके लिए जो चार लोग मरे ?' जवाब में, बोलने वाले कुछ बोलते और निःश्वास छोड़ आगे निकल जाते।

मुझे सिर्फ तुम्हारा साथ चाहिए।" दादा कोडके ने अपनी कैफियत दी। मैंने पूरे सहयोग का वचन दिया और 'शाहीर दादा कोडके ऐंड पार्टी' का जन्म हुआ।

पी० एस० पी० और समाजवादी पार्टी के बीच वाराणसी में जो दंगा हुआ, उससे राजनीति से चिढ़ सी हो गयी। परन्तु नाचने के लिए कुछ कारण चाहिए थे। दादा ने अवसर खोज निकाला। उसका कहना था कि हम एक ऐसी पार्टी बनाएँगे, जिसमें राजनीति नहीं होगी। सिर्फ मनोरंजन होगा। मैंने उसकी बात का समर्थन किया और उसमें से पार्टी का जन्म हुआ।

दादा ने तुकाराम शिंदे, वसंत सबनीस को भी जानकारी दी। तुकाराम शिंदे ने भी पूरा सहयोग देना स्वीकार किया।

ठाणा के सेवादल ने वसंत सबनीस का लोकनाट्य 'छपरी पलंग' बैठाया था। वहीं इस पार्टी की ओर से खेलना तय हुआ। वसंत सबनीस को इसकी जानकारी दी गयी। उन्होंने उसमें कुछ परिवर्तन करना स्वीकार कर लिया। संगीत की जिम्मेदारी तुकाराम शिंदे ने उठायी। हमारी बैठकों में यह तय होने लगा कि इसमें क्या होना चाहिए और क्या नहीं।

दादा नौ-साढ़े नौ बजे कोठा आता। फिर हम गप्पें मारते हुए कैपिटल सिनेमा के पास आते। वहीं घंटा दो घंटा चर्चा करते। विषय यह होता कि हम जो नाटक खेलेंगे, वह 'पावरफुल' कैसे हो।

फिर रूपरेखा बनी। 'छपरी पलंग का लोकनाट्य' नाम बदलकर 'इच्छा मेरी पूरी करें' नाम दिया गया और एक दिन मेरे हाथों इसके मुहूर्त का नारियल फोड़ा गया।

बड़े-बड़े थियेटरों में हमारे कार्यक्रम होंगे, यह बात हमारे मन में कभी नहीं थी। सत्यनारायण की महापूजा, गणेशोत्सव, नवरात्रि जैसे किसी समारोह में और बहुत हुआ तो दामोदर हॉल, गिरगाँव हॉल, भाँगवाड़ी, रानी का बाग आदि स्थानों पर कम-से-कम शनिवार रविवार को हमारे कार्यक्रम हों, ऐसी इच्छा थी। उन दिनों मावळ पार्टी जोरों पर थी। हम सोचते, उन्हीं की तरह हम भी आगे बढ़ें, कई लोकनाट्य खेलें और उसमें राजनीति की गंध भी न हो। इसीलिए पार्टी स्थापित की।

हमने लोकनाटक का नाम तय किया, पात्र एकत्र किये। पात्रों का चुनाव किया पर अब समस्या थी कि रिहर्सल कहाँ किये जायें? जनता कलापथक की अपनी जगह थी। हम उसमें से अलग होकर बाहर आये थे। वे कैसे देते? उल्टे वे हमें कहने लगे थे, "नाचने निकले हैं! देखें कितने दिन डुगडुगी पीटते हैं!" कोई कहता, "भटका हुआ मेमना आज नहीं तो कल इसी झुंड में आ मिलेगा।"

ऐसे में जगह मिलना दूर की बात थी। दादा का कोई रिश्तेदार नायगाव की सीमेंट चाल में रहता था। वहाँ रिहर्सल शुरू की, पर यह बात कुछ बनी नहीं। फिर तुकाराम शिंदे का भायखला में जहाँ क्लास था, वहां रिहर्सल की शुरुआत की। फिर हम लीलाधर की अनुमति लेकर मान गुरुजी आराध्य मन्दिर', सांताक्रूज में रिहर्सल करने लगे। इसी बीच दादा के घर कोई काम निकला। वह अपने गाँव चला गया। अब सारी जिम्मेदारी मुझ पर आ पड़ी। पर कुछ अलग करने की धुन में, मैं काम में जुट गया। मुझे कोतवाल की भूमिका करनी थी। उन दिनों 'खानदान' पिक्चर लगी थी। उसमें सुनील दत्त का बायाँ हाथ टेढ़ा था। कोतवाल का हाथ मैंने वैसा ही बनाया। चार्ली चैपलिन की तिरछी चाल (दायें पैर का बूट बायें पैर में बायें का दायें पैर में पहनने पर अपने आप लँगड़ा सकते हैं) अपनायी।

पहला मंचन रानी के बाग' में किया। कलापथक और सेवादल के कार्यक्रमों में इतना डर नहीं लगा था। पर अपने कार्यक्रम में हम सब डर गये। कार्यक्रम में क्या चिराग जलाएँगे हम भी देखें —ऐसा कहनेवाले भी बहुत लोग थे। स्वयं सबनीस साहब हाजिर थे। वे धीरज बँधा रहे थे। हमने उनके पैर छूकर आशीर्वाद लिया। जब तीसरी बेल बजी तो सौभाग्य से कोयल ने 'कुहू कुहू' की आवाज से हमारा साथ दिया।

पहला मंचन तो कुछ कठिन लगा, पर आगे धीरे धीरे जमने लगा। हम उसमें और कुछ जोड़ रहे थे। मैं हल्या' (अनाड़ी कोतवाल) की भूमिका में और रंग भरने की तलाश में था। हल्या शब्द का जन्म भी बड़े मजेदार ढंग से हुआ था।

भोर में कार्यक्रम था। हम एक निजी वाहन से जा रहे थे। सामने से

भर्से आ रही थी। मैंने हॉन बजाया। पर वे रास्ते से न हटती। तब भसवाले ने उधर हल्या-हल्या' कहकर बाजू म सरकाया। बस, उसी रात कामक्रम म हल्या' शब्द ले लिया। वह इतना फिट बैठा कि आगे उसी नाम स यह भूमिका मशहूर हो गयी।

एक काट्रक्टर ने हमारे सामने प्रस्ताव रखा, "मैं हजार रुपये मे चार मचन करा सकता हूँ, पर शत यह है कि वसत सबनीस खुद काम करें।"

हमने यह बात साहब को बतायी। पहले तो वह तैयार नही थे, पर अन्त म तयार हो गये। चार प्रस्तुतियो मे वे राजा का काम करें ऐसा तय हुआ। पर वे बोले, मैं लोकनाटक म काम नही करूँगा। इसके बदले एक स्वाग' लिखूगा। उसम काम करूँगा, ताकि वे आगे न अडें।'

चार म स पहला मचन 'रगभवन' मे तय हुआ। दूसरा 'अमर हिंद मडल' मे, तीसरा 'दामोदर हॉल' मे और चौथा 'साहित्य सघ' मे। साहब पहले हास्य नाटक का रिहसल कर मचन के लिए खडे हुए। रगभवन भर गया था। उसम काफी आमन्त्रित निमन्त्रित थे। साहब खुद काम करनेवाले हैं, इसलिए काफी विज्ञापन किया गया था।

नाटक की शुरुआत हुई। अब हमे कुछ न लगता था, पर साहब ! पहले नाटक म हमारी जो हालत हुई थी वही अब साहब की हुई। परन्तु नाटक अच्छा जम गया। लोगो को पसन्द आया। दाद मिली। पन्द्रह मिनट का हास्य नाटक धीरे धीरे पौन घटे का हो गया ! उसमे कितना-कुछ जुडता चला गया !

मैं तीन भूमिकाएँ करता—मौसी की, प्रधान की और 'हल्या' की। मेरी दो भूमिकाएँ—मौसी और हल्या की—बहुत सराही गयी। वे इतनी लोकप्रिय हुई कि भीतर से मेरी आवाज तक आने पर लोग तालिया बजाने लगते। हल्या' की भूमिका इटरवल के बाद शुरू होती। इटरवल में हमें मिलने वाले लोग आते। इटरवल के बाद मेरे काम की शुरुआत। मेरी हल्या की भूमिका देखकर, इटरवल मे मिलकर गये लोग फिर विशेष रूप से मुझे मिलने आते, बधाइयाँ देते।

उस नाटक का बबई म चार बार मचन हुआ। पुणे के एक कांट्रैक्टर ने दो प्रस्तुतियाँ करवायी। उन दिनो 'बालगधव थियेटर नही था। भरत

पुरानी स्थिति मे था । वही दोनो प्रस्तुतियाँ हुईं । पहली की बुकिंग चार साढे चार सौ की हुई । यह देख कांट्रैक्टर घबराया । उसने दूसरी प्रस्तुति को रद्द कर दिया, पर पुणे मराठी ग्रथालय ने अपने सदस्यों के लिए जो तीन प्रस्तुतिया करवायी, वे हाउसफुल गयी और तब स 'इच्छा मेरी पूरी करें' के 'हाउसफुल' बोड लगने लगे ।

पुणे म जब प्रस्तुतिया हमेशा हाउसफुल जाने लगी तो, ऐसे मे पहचान वाले, रिश्तेदार 'ए, राम, पास जमाओ न !' या कुछ, 'ए, एकाध टिकट जमाओ न !' ऐसा आग्रह करने लगे । हर बार कोई न कोई आ धमकता । यह तकलीफ भी चालू हो गयी !

फिर मैं एक काम करता । साढे नौ की प्रस्तुति के लिए मै सवा नौ बजे ही आता । यदि कोई मिलता तो, "देखता हूँ" कहकर भीतर जाता, और भीतर ही रह जाता । इस व्यवहार के कारण खास जानवाले बोलते, 'बेटा, अकड़ू बन गया है !"

ऐसे ही पुणे की एक प्रस्तुति म मैं सवा नौ बजे पहुँचा कि पास पडोस मे से एक बाला अहो, राम नगरकर आपका फोन बार बार आ रहा है !"

'किसका है ?' मैन पूछा ।

वैसे नाम तो कुछ बताया नही पर कोई महिला है ।'

महिला ?' मैं तो घबरा गया ।

महिला का फोन ? वह भी मुझे ? कौन होगी ? इसी सोच म था कि फिर फान आने की खबर मिली । मैं भागता गया और फोन उठाया, "हलो कौन बोल रहे हैं ?"

आप रामनगरकर ही हैं न ? ' कोई महिला बोल रही थी ।

'हाँ मैं ही आप कौन ? ' मन पूछा ।

आवाज पहचान की नहीं है क्या ? अब मुझे टाल रहा है ? पुणे म आकर भी कोई पूछताछ नही करता । भूल गया ? तब पीछे पीछे घूमता था ! अब बडे पढे लिखे लोगा म रहन लगा तो पिछली बातें भूल गया । मैं कदमी हूँ, तू इतना घमडी कैसा हो गया ? य दो, जो निकाल कर रखे

हैं, इन्हें कौन पालेगा ? तेरा ?"

और आगे कुछ भी सुनने से पहले मैंने दन से फोन रख दिया। 'स्साली अजीब झंझट है !' ऐसा मन में कहते हुए मैं मेकअप में लिए गया। यह खबर मैंने दादा और सबनीस को भी बतायी। वे कुछ पल मुझे निहारते रहे। अब मैं घबराया। फिर वे खिलखिलाकर हँस पड़े।

नाटक शुरू हुआ। फिर फोन आया। मैंने टालना चाहा। कहला दिया, 'मैं स्टेज पर हूँ।' फिर कुछ देर में फोन ! वही महिला, वही फोन ! 'रामनगरकर को बुलाइए !' एक बार तो लगा, अच्छी तरह भटक दूँ। फिर लगा, जरूर कोई गड़बड़ी है। इस फोन से 'भरत' वाले इतने तंग आ गये कि फोन आया नहीं कि कह देते, 'काम में हैं।'

नाटक समाप्त हुआ। हमने मेकअप उतारा। अब खाना खाकर तुरंत मद्रास मेल से बंबई रवाना होना। सारा सामान जमाकर बाहर आया। देखा, तो एक महिला दो बच्चों को लेकर खड़ी थी। वो देखिए, रामनगरकर !' किसी ने उस महिला को बताया। वह मेरे पास आयी और मेरी ओर देखती रह गयी। मैंने पूछा, "किससे मिलना है ?"

"आप राम नगरकर ?"

"हाँ, क्या ?"

"नहीं मुझे लगा ," वह बोलते बोलते रुक गयी।

"बहनजी, आप कौन हैं ? मुझसे मिलने का क्या कारण है ? क्या फोन आप ही कर रही थी ?' मैंने प्रश्नों की झड़ी लगा दी।

' हाँ, मैं ही फोन कर रही थी। मेरे लोकनाटक में आप ही के नाम का एक विदूषक था। मैं उसके फंदे में फँस गयी। मुए ने खूब लूट लिया। मुझे लगा, वही होगा पर । और वह फूट फूटकर रोने लगी।

मैंने महिला की हथेली पर पाँच का एक नोट रखा—बच्चों की मिठाई के लिए और रिक्शा तय कर दिया। महिला ने रिक्शावाले से 'आयभूषण थिएटर, गणेश पेठ।' चलने को कहा और रिक्शा वाला चल पड़ा।

मैं रिक्शे की ओर देखता रह गया।

"मैं अनुशासन का पक्का हूँ। किराया हर माह पाँच तारीख के भीतर आ जाना चाहिए। मैं यह समझकर चलता हूँ कि आपके लड़कों में अनुशासन अच्छा होगा!"

मकान मालिक एक के-बाद एक नियम गिनाये जा रहा था और मैं गरजमंद जैसा 'हाँ हाँ' कहे चला जा रहा था।

हमें बाहर बैठने के लिए कहकर मकान-मालिक भीतर गया। "पूरा पैसा लाया है न ?" जाते जाते पूछता गया। वह क्या-क्या कर रहा है, यह बाहर से दिखलायी पड़ता। वह एक टेबल के पास गया। कुर्सी पर बैठा। एक कागज निकाला। फिर दलाल को बुलाया। उसके साथ कुछ बातें हुई। दलाल ने पैसे गिने, फिर मालिक ने गिने और दराज में रख लिये। हम तीनों खड़े थे। मकान-मालिक कागज़ पर लिखने लगा।

"नाम क्या ?" मकान मालिक ने पूछा।

"राम विट्ठल नगरकर!" मैंने बताया।

"बाहर बैठिए! यह सब लिखकर मैं आपको बुलाऊँगा!" मकान-मालिक ने हुक्म दिया। हम दोनों बाहर आये। दलाल वहीं मँडराता रहा।

पाँच दस मिनट भी न हुए होंगे, कि मकान मालिक दलाल पर बिगड़ने लगा, "पहले ही क्यों नहीं बताया ? ऐसा फालतू तक्लीफ देता है!"

कागज फाड़ने की आवाज़ आयी। दराज जोर से खोली और उसमें से हमारे दिये पैसे बाहर निकाले। वे हाथों में रखते हुए उसने कहा, "ये लो अपने ढाई हजार। अपना रास्ता पकड़ो! दलाली का धंधा अच्छी तरह सीखो! किसको कहाँ जगह देनी चाहिए, यह यदि नहीं समझते तो जाकर कहीं हजामत करो! चलो, चलते बनो!"

हम दोनों को कुछ पल्ले नहीं पड़ा, कि क्या हुआ ? दलाल जैसे ही बाहर आया दरवाज़ा खटाक से बन्द हो गया।

"क्या हुआ ?" मैंने घबराकर पूछा।

'पहले बाहर आइये, सब बताता हूँ।" दलाल हमें बाहर निकालते हुए बोला। हम बाहर आये और दलाल ने जो कुछ हुआ था सब बता दिया। मकान मालिक करारनामा लिख रहा था। तभी दलाल यूँ बोल गया "मालिक आपने मकान दिया और धंधे के हिसाब से सुविधाजनक

मुझे चुप देखकर वह बोला, "मकान मालिक ऊपर रहते हैं। आप नीचे रहेंगे। और कोई नही। अच्छा, उन्हे भी बाल-बच्चे वाले लोग चाहिए। मैंने उन्हे आपकी जानकारी दे दी है।"

'आपने क्या जानकारी दी ?" मेरे बारे मे क्या बताया होगा, इसका अदाज लगाते हुए मैं पूछ पडा।

"आपका नाम आप पोस्ट आफिस मे सर्विस करते हैं और नाटको मे शानदार काम करते हैं। पत्नी और तीन बच्चे हैं। पढे लिखे हैं," आदि-आदि।

दलाल मुझे खुश कर रहा था। बाद म हम दूकान म आये। दलाल के बारे मे पूरी जानकारी हासिल की। पुणे के ही एक मित्र के माध्यम से पाँच सौ रुपये एडवास दिये और कमरा बुक करने को कहा।

'इच्छा' का दौरा निकला। पन्द्रह दिन का था। वहा से वापस आया। तभी जिसके माध्यम म दलाल की पहचान निकली थी, वह मिला। उसने बताया, 'तुम दौरे पर थे। मैंने खुद जगह देखी। मालिक अच्छा है। मालिक और आप, बाकी कोई नही। बच्चो को खेलने के लिए पर्याप्त मैदान है। ऐसे मे दो हजार रुपय लेकर जाना है।"

मुझे खुशी हुई। पत्नी को खुशखबरी सुनायी। उसे भी अच्छा लगा। इतना ही नही, उसकी काफी दिना की इच्छा पूरी होने वाली थी।

उसके कह मुताबिक मैंने पैसे लिये। मित्र और मैं दलाल की राह देख रहे थे। दलाल साइकिल से देख आया, मकान मालिक है या नहीं। वह हमारी राह ही देख रहा था।

कहते हैं न तीन किसी काम के लिए न जायें। पर हम गये। मकान-मालिक को नमस्कार किया।

'राम विटठल नगरकर कौन ?' हमारा नमस्कार स्वीकारते हुए उसने सवाल किया।

'मैं।' मैंने बताया और मन जीतने के लिए फिर नमस्कार किया। जैसे ही मैंने कहा वह मेरी ओर कुछ देर देखता ही रह गया। फिर बोला,

"मैं अनुशासन का पक्का हूँ। किराया हर माह पाँच तारीख के भीतर आ जाना चाहिए। मैं यह समझकर चलता हूँ कि आपके लड़कों में अनुशासन अच्छा होगा।"

मकान मालिक एक-के-बाद एक नियम गिनाये जा रहा था और मैं गरजमंद जैसा 'हाँ-हाँ' कहे चला जा रहा था।

हम बाहर बैठने के लिए कहकर मकान मालिक भीतर गया। "पूरा पैसा लाया है न?" जाते जाते पूछता गया। वह क्या-क्या कर रहा है, यह बाहर से दिखायी पड़ता। वह एक टेबल के पास गया। कुर्सी पर बैठा। एक कागज निकाला। फिर दलाल को बुलाया। उसके साथ कुछ बातें हुई। दलाल ने पैसे गिने, फिर मालिक ने गिने और दराज में रख लिये। हम तीनों खड़े थे। मकान-मालिक कागज पर लिखने लगा।

"नाम क्या?" मकान मालिक ने पूछा।

"राम विट्ठल नगरकर!" मैंने बताया।

"बाहर बैठिए! यह सब लिखकर मैं आपको बुलाऊँगा!" मकान-मालिक ने हुक्म दिया। हम दोनों बाहर आये। दलाल वहीं मँडराता रहा।

पाँच-दस मिनट भी न हुए होंगे, कि मकान मालिक दलाल पर बिगड़ने लगा, "पहले ही क्यों नहीं बताया? ऐसा फालतू तकलीफ देता है!"

कागज फाड़ने की आवाज आयी। दराज जोर से खोली और उसमें से हमारे लिए पैसे बाहर निकाले। वे हाथों में रखते हुए उसने कहा, "ये लो अपने ढाई हजार। अपना रास्ता पकड़ो! दलाली का धंधा अच्छी तरह सीखो! किसको कहाँ जगह देनी चाहिए, यह यदि नहीं समझते तो जाकर कहीं हजामत करो! चलो, चलते बनो!"

हम दोनों के कुछ पल्ले नहीं पड़ा, कि क्या हुआ? दलाल जैसे ही बाहर आया, दरवाजा खटाक से बन्द हो गया।

"क्या हुआ?" मैंने घबराकर पूछा।

"पहले बाहर आइये सब बताता हूँ।" दलाल हमें बाहर निकालते हुए बोला। हम बाहर आये और दलाल ने जो कुछ हुआ था सब बता दिया। मकान मालिक करार-पत्र लिख रहा था। तभी दलाल यूँ बोल गया, "मालिक आपने मकान दिया और धंधे के हिसाब से सुविधाजनक

हो गया !'

''धंधा ? कौन-सा धंधा ?'' मालिक ने पूछा।

''वाह ! तिलक रोड पर एक अच्छा एयर कंडिशन सैलून है, उसका !'' दलाल ने बताया।

''सैलून ! क्या मतलब ? नापरकर कौन ?'' मालिक चौंक गया हुआ।

''उसी धंधे में हैं ।'' दलाल बोला।

बस ! मालिक उठ खड़ा हुआ और फिर से कागज फाड़ दिया।

इस तरह वह मकान हाथ से निकल गया।

मकान के मामले में एक बार ऐसा घटने के बाद भी मैं अच्छे मकान की तलाश में भाग-दौड़ कर ही रहा था।

कई दलाल देखे, कई मकान देखे। पर मन में कुछ खटकता रहा। कुछ मकान अच्छे थे पर दुकान से दूर थे। किसी की आसपास की बस्ती ठीक न थी। अच्छी बस्ती में कम से-कम दो कमरों का अच्छा मकान चाहिए था। विलेपार्ले में रहने की इच्छा पूरी करनी थी ! एक सिंगल रूम से डबल रूम में आने की छटपटाहट थी, ताकि लोग कहें, 'विट्ठल का छोकरा, किसी तरह क्यों न हो, काफी सुधर गया है।

पेपर में यह विज्ञापन छपा—'लोकमान्य नगर में नयी बनी बिल्डिंग के ब्लॉक आवंटित होने हैं। कम से-कम आय, पाँच सौ होनी चाहिए। आवेदन करें।'

लोकमान्य नगर का दुकान से पांच मिनट का रास्ता। सच, वहाँ मकान मिल गया तो कितना मजा आयेगा ! पर वहाँ सिफारिश व पहचान की जरूरत थी। 'इच्छा' के कारण पहचान बढ़ी थी। माधा, कोशिश करने में क्या बुराई है ? बस, करीब के एक दलाल को भी मैंने बताया। वह बोला 'अहो, वह सफेदपोश लोगों की सोसायटी, अपने जैसों की कहाँ पूछ !'

''पर, वह तो सरकारी सोसायटी है ! महाराष्ट्र हाऊसिंग बोर्ड है न ?'' मैंने कहा।

'आपकी बात सही है पर आवेदन करने पर ब्लॉक मिलेगा, इसकी क्या गारंटी ? वहाँ इतने पुराने नगर हैं कि नये लोगों को ब्लाक मिलना

असभव । और उनकी सिफारिश ऊपर तक ।" दलाल का जवाब था ।

दलाल को अपनी दलाली जाने का डर था, इसलिए वह अनाप शनाप कह रहा था। मैंने मन म सोचा, 'अजी करने मे क्या दिक्कत है ? नबर लगा तो पौ बारह !' इस तरह मन मे सोचकर मैंने उस दिशा म कदम बढाये । हाऊसिग बोड के आफिस मे पूछताछ की । वहा सवादल का एक मित्र मिला। उसने बताया कि अर्जी किस तरह देनी होगी । दो बडे लोगो के हस्ताक्षर सहित पाँच सौ डिपाजिट भरना होगा । उसने पूछा, "ए टाइप चाहिए या बी टाइप ?" मुझे कुछ न समझ आया । तब वह बोला, 'बी टाइप लीजिए, इसमे मिलने की गुजाइश है !"

'कुछ सिफारिश वगैरह ?" मैंने पूछा ।

'नही, नही ! वैसा कुछ नही है । सीधे बडे लोगो की ओर से नबर खोले जाते हैं।" उसने जानकारी दी ।

मैं फाम लेकर घर आया । इतनी खटपट की जाये या नही, इस सोच-विचार मे ही दिन बीतने लगे । अतत फॉम भर दिया, हस्ताक्षर किये, डिपॉजिट भरा और कब नबर खुलेगा, इसपर टकटकी लगाये रहा। मन मे एक ही बात थी— अपने नसीब मे मकान नही है ।' बीच म ही दौरे पर जाना पडा । इस बीच सारा कुछ भूल गया कि मैंने अर्जी दी है पैसे भरे हैं ।

दौरे से लौटते ही देखता हूँ कि दूकान म हाऊसिग बोड का पत्र— 'आपकी अर्जी का लकी नबर आया है। आप स्वय आफिस म आकर मिलिये ।"

वह पत्र देखकर मन नाच उठा । कितना आनन्द हुआ ! सच तकदीर की बात थी । तिलकरोड पर दूकान और पाच मिनट के रास्ते पर ब्लाक । वह भी अच्छी बस्ती मे ! कितने दिनो का सपना पूर्ण होता जैसा लगा ।

हाऊसिग बोड म गया । उन्होंने बताया, इतने इतने पैसे भरिये और अपना ब्लॉक लीजिए ।'

मेरे नाम का ब्लॉक पहली मजिल पर (पुणे की भाषा मे मजिल पर), रास्ते पर था । जब मकान के लिए परेशान था, लगता कि लोकमान्य नगर म यदि मकान मिल गया तो कित

होगा ? कैसा भी ब्लॉक मिले, पर इसी इलाके में मिले। अब ब्लॉक मिला तो लगता है 'स्साला, ग्राउंड फ्लोर पर मिलना तो कितना अच्छा होता ! ब्लॉक के सामने अच्छा सा बगीचा लगाया होता !'

मन भी कितना अजीब है ! जो भी मिला है, उससे अच्छा मिलता तो बेहतर होता ऐसा लालच रहता ही है। पत्नी को बड़ी खुशी हुई। अपना संडास और अपना नल देखकर।

अब भई किसी की झंझट नहीं। अब कोई नहीं कहेगा कि मेरा नम्बर है। संडास पर कोई थपथपायेगा नहीं कि जल्दी कीजिए !"

चाल में जितने ठाठ से गये, उस तरह नहीं जाना है। फालतू फजीहत नहीं होनी चाहिए। अच्छा, सामान भी थोड़ा सा। स्टील की आलमारी, टेबल, कुर्सियाँ आदि कुछ नहीं थे। एक बोरे में बर्तन, एक लोहे की खाट, उस पर गद्दा और ओढ़ने बिछाने के कपड़े, दो ट्रंक, मेरे प्रवासी बैग—बस इतना सामान !

ब्लाक में जाने का सोच विचार कर, अच्छा दिन चुना। 'महा-शिवरात्रि' का। इससे पहले पत्नी, मैं और सासूजी नारियल, हल्दी सिन्दूर रख आये। ब्लाक देख आये। एक रसोईघर, एक दूसरा कमरा, एक गैलरी तथा संडास बाथरूम। बाथरूम में दो नल। एक नगरपालिका का और एक बोर्ड का।

रात में एक बैलगाड़ी लाया उसमें सारा सामान भरा सबको 'राम-राम' किया और निकल पड़ा। वैसे, नवी पेठ हाऊसिंग बोर्ड दूरी पर नहीं था। ब्लाक में सामान रखा। पत्नी, सासूजी और बच्चे पैदल आये। हमसे पहले आये ब्लॉकवाले व सामने के ब्लॉकवाले बड़े कुतूहल से हमें देखने लगे।

नौ गजी साड़ियाँ देखकर तो यहाँ भी लोगों ने मुँह बिचकाया पर हम अब आदत हो गयी थी। वैसे हमें लोगों का पूर्व अनुभव था ही। आने के लिए इसीलिए यह समय चुना था।

पत्नी ने ब्लॉक में आते ही सबसे पहले कपड़े धोने की शुरुआत की। धोये अनधोये सारे कपड़े लेकर वह बैठ गयी क्योंकि इतना भरपूर पानी उसे कभी न मिला था। उसके बाद पत्नी और सासूजी रसोईघर में बर्तन-

भांडे माज पोछकर सलीके से लगाने मे व्यस्त हो गयी। और मैं बाहर के कमरे मे सामान लगाने लगा। अब इसके बाद कौन कौन सा सामान लाना अच्छा रहेगा, यह सोचते हुए फर्नीचर आदि के सपनों मे खो गया। बच्चे यह सोचते हुए कि 'आज हम कहाँ आ गये!' चुपचाप सब-कुछ देख रहे थे। अशोक तब तेरह साल का था और मन्दा नौ महीने की।

सारा सामान लगाने मे ग्यारह बज गये। अब ससुरजी आये। मैंने ही उन्हें खाने पर बुलाया था। भोजन हुआ। भोजन के बाद सास ससुर चले गये। उनके जाने के बाद हम दोनों काफी देर तक यही सोचते रहे कि 'चलो, किसी तरह ब्लॉक मिल गया, और वह भी दूकान के पास!' इसी बात को लेकर कब नींद लग गयी, पता ही न चला।

"अजी उठिए, थोडी देर मन्दा को खिलाइए! मैं संडास हो आती हूँ।" ऐसा कहते हुए पत्नी उठ चुकी थी। बच्ची रो रही थी। मैं उठा और बच्ची को ले लिया।

पत्नी ने तम्बाकू भूनकर 'मिस्सी' बनायी। पत्नी की यह आदत थी कि गरमागरम मिस्सी हाथ मे लेकर और तम्बाकू की तरह मलकर उसका चूरा करगी फिर कुछ फटककर धीरे धीरे दाँत घिसेगी। ऐसा किये बगैर संडास में उसे ठीक न लगती।

यह आदत बडे बडो की है। बम्बई मे मेरी मा को और आसपास की औरतो को भी यह आदत थी। उनकी इस आदत से बिल्डिंग का कोना कोना रंग गया था।

नवी पेठ मे आये। वहाँ भी पत्नी को आसपास की औरतों का साथ मिला। सुबह शाम उनका प्रोग्राम तय रहता। मिस्सी घिसते घिसते अस्सी फुट रास्ते के उस ओर सतरह नम्बर के स्कूल के पास नगरपालिका के सार्वजनिक संडास की ओर वे मोर्चा निकालती।

मिस्सी करके पत्नी संडास गयी थी। मैं बच्ची को लेकर बैठा था। नींद मुझे घेरे हुए थी। मैं दीवार से टिककर सोता तो बच्ची रोने लगती, जागने पर वह सो जाती। इस तरह हमारी जुगलबन्दी चल रही थी।

काफी समय हो गया पत्नी सडास से बाहर ही नहीं आयी। मैंने आवाज दी तो भीतर से 'हूं' की आवाज आयी।

अरी जल्दी आओ भी। कितना समय हो गया।" मेरे भीतर का पति जाग गया। थोड़ी देर में पत्नी बाहर आयी।

इतनी देर ?

अजी हुई ही नहीं, मैं क्या करूं ?'

'अच्छा, अच्छा, इसे संभाल।"

"जरा रुकिए, मैं एक बार और 'मिस्सी' लगाकर जाऊँगी।'

फिर पत्नी ने मुंह धोया, एक कप चाय पी, मिस्सी भूनी और हमेशा की आदत के अनुसार दाँतों पर लगाने लगी। मैं बच्ची को गोद में लेकर बैठा रहा। हमारी जुगलबन्दी समाप्त हो चुकी थी और अब दोनों ऊँघ रहे थे।

अजी ऽऽऽ मैं सडास होकर आती हूँ।" पत्नी ने आवाज दी।

जल्दी आ मुझे भी जाना है , मैंने ऊँघते हुए कहा।

नींद में कितना समय निकल गया पता ही नहीं चला। पत्नी अब तक न आयी थी। मेरी हलचल से बच्ची जागकर रोने लगी। मैं झल्ला उठा।

अरी जल्दी आ। कितनी देर ?'

परन्तु भीतर से कोई आवाज नहीं आयी। मैं घबराया। रसोईघर में बच्ची को लेकर गया। वहाँ भी पत्नी नहीं थी।

'स्साला इतनी देर सडास में ? मैं खुद ब खुद बड़बड़ाता रहा।

फिर मुझे अचानक याद आया। मन घबराया। उसने दूसरी बार तम्बाकू की मिस्सी लगायी थी। कहीं भीतर चक्कर खाकर गिर तो नहीं पड़ी ? मैं घबरा उठा। बच्ची को कांधे पर उठाकर सडास की ओर गया।

अरी ए राधा ! राधा ऽऽ !!' दो चार आवाजें दीं पर भीतर से कोई जवाब नहीं। फिर मैं दरवाजा थपथपाने लगा अरी, जल्दी आ मुझे भी जाना है।

थोड़ी देर में पत्नी बाहर आयी।

'अरी, कितनी देर लगा दी ? अपना सडास है तो इतनी देर बैठना ?"

"अजी, हुई ही न थी।"

'अब हो गयी न ?"

'आपने दरवाजा थपथपाया तब हुई !"

यह सुनकर हँसते या रोते ? फिर मेरे दिमाग मे बात स्पष्ट हुई ।

बम्बई म थे, तब चार घरो के लिए एक सडास था । सबका समय एक ही था । भीतर बैठा कि बाहर थपथपाहट होती । उसी आदत का यह परिणाम था ।

लोकमान्य नगर म रहने आये, पर आसपास उतने मिलजुलकर रहने वाले लोग न थे। इसका कारण हमारा रहन सहन। बच्चो के मुह मे फालतू गालिया । छोटा चन्दन तो माँ बहन की गालियो के बिना बात न करता । उसकी भी क्या गलती थी ! अब तक की उसकी दोस्त मडली इसी किस्म की थी । जब बोलना सीख रहा था, तभी 'साला' बोला था । हमे खुशी हुई थी, पर यह खुशी सभालनी चाहिए भी न ! उसका परिणाम यह हुआ कि बच्चा फालतू बोलने लगा। रोज दो चार नयी गालिया सीखने लगा ।

अच्छे लोगो के बीच इसीलिए रहना चाहिए कि अपने घर का वातावरण सुधरे । इसीलिए यह ब्लॉक लिया, पर हुआ उलटा ही। हमारे बच्चो के कारण आसपास के लडके भी उसी तरह बोलने लगे। मैंने तय कर लिया, अब घर सुधारना चाहिए ! अब ब्लॉक मे रहते समय अन्य ब्लॉकवालो की तरह रहना चाहिए । इसलिए हमेशा नौ गजी साडी पहनने वाली पत्नी के लिए मैंने छह गजी साडी ला दी ।

'ए, मेरे सामने, ये साडी पहन ! दो चोटिया डाल ! पाउडर लगा ! किसी को लगना नही चाहिए कि देहाती लोग यहाँ रहने चले आये ।"

"अरी अरी, बुढापे मे आपको अजीब खुजली छूटी है ! चार बच्चे हो गये और अब दो चोटियाँ डालू गोल साडी पहनू बिंदिया लगाऊँ ?"

पत्नी ने मुझसे कहा, तो मैंने उसे डाटा। फिर वह गोल साडी पहनने लगी । पर दो चोटिया नही डाली। एक चोटी के लिए ही बाल नही बचे थे, तो दो कहाँ से डालती ? मन म सोचा, चलो कुछ तो सुधार हुआ ।

पर यह सिलसिला कुछ ही दिन चला। बाद म पत्नी फिर पहले की ही तरह रहन लगी। तब मैंने पूछा "ये क्या है ? गोल साडी क्या छोड दी ?"

'उसमे बड़ा खुला खुला लगता है ।"

ऐसा उत्तर पाकर मैं भला क्या बोलता ?

हमारे ब्लाक के सामने गन्दी नाली थी। मच्छरो स बडी तक्लीफ होती। यह मेरे ध्यान म नही आया था। जब पत्नी ने कहा, तब ध्यान गया। शुरु न बाजार जाकर बडी मच्छरदानी ले आया और पत्नी को ओढाता हुआ बोला "कहती थी न, कि बहुत काटते हैं, बहुत काटत हैं। ल यह मच्छरदानी ले आया हूँ—बस्स।"

उसी दिन 'भरत' म 'इच्छा' का मचन था, इसलिए वहाँ गया। नाटक खतम हुआ तो घर लौटते समय सोचा 'पत्नी बच्चे मच्छरदानी लगाकर मस्त सोय होंगे।' घर म कदम रखा, तो देखा कि जैस बिस्तर लपेटा रखा हो इस तरह सारे मच्छरदानी लपेटकर सोय थे।

फिर भी मैंने सुधार कायक्रम नही छोडा। पत्नी घर म कपडे धोती थी बतन माजती थी—इसका कारण था कि महरी नही थी। मैंन महरी रखी धोने माजने के लिए तो पत्नी बहुत भुनभुनायी। मैंने उसकी एक न चलन दी, पर एक दिन महरी काम छोडकर चली गयी।

ऐसा हुआ कि एक दिन दोपहर म वह हमेशा की तरह बतन मांजने आयी। उस दिन वह कुछ अकड मे ही आयी थी। कुछ गडबड था। उसने बतन बाथरूम म झन से पटक दिय। और जोर से माजने लगी। पत्नी ने ताड लिया कि काशीबाई के साथ कुछ गडबडी है। उसन आहिस्ते से पूछा, क्या काशीबाई क्या हुआ ? बतनो पर क्या गुस्सा निकाल रही हो ?'

काशीबाई की आँखें छलछला गयी। बतन मांजते मांजते वह बोली 'मुझे पति ने छोड दिया है इसलिए भाई के घर रहती हूँ। वैस भाई अच्छा है पर भौजाई बडी पाजी है। मैं घर का खाना बनाती चार घर के बतन मांजती हूँ, फिर अपने घर के बतन माजती हू। वह रानी की तरह पडी रहती है। इसलिए आज मैंने खाना नही बनाया। सोचा,

रहने दो भूखे।"

काशीबाई ने एक ही सास मे अपना दुख बता दिया। पत्नी सुनती रही। वतन मांजना हो गया ता पत्नी को लगा, 'अब दोपहर के दो बज गये हैं। दूसरे घरा के वतन माजेगी, फिर घर जायेगी और खाना बनायेगी। तब तक भूखी!' अत उसने काशीबाई स कहा, "काशीबाई, खाना बचा है। थोडा सा खाओगी ?"

अँ ? क्या कहा ? भोजन करूँ ?" जैसे किसी नागिन पर पैर पड गया हो और वह फन फैलाकर खडी हो गयी हो, उसी तरह काशीबाई ने कहा, "शम नही आती पूछते हुए ? नाई के घर वतन मांजती हूँ तो सारी बिरादरी मेरे नाम पर थूकती है। अब मुझे खाना खिलाकर बिरादरी स भी बाहर निकालना चाहती हो ?"

ऐसा कहते हुए, वतन पटककर, वह वहा से गुस्से म निकल गयी। पत्नी मुह फाडे दखती रह गयी।

शाम को मैं घर आया। पत्नी ने मुझे सब कुछ बताया। मैने कहा, "इतनी मुहजोर महरी रखी किसलिए ? बन्द कर दो।'

"अर-अरे! निकाल देने को कहते हो! आजकल महरी मिलती कहाँ हैं ?' पत्नी मुझसे बोली।

' अरी, वह गगूबाई खाली है। उसे रख ले।"

मैंने जैसे ही गगूबाई का नाम लिया, वह काशीबाई के लहज म उतर आयी, ' क्या कहा ? उस गगूबाई को रखू ? बोलते हुए कुछ शम आती है या नही ? वह महारीन (अछूत), हम नाई! उसे बतन माजन को रखें ? इससे अच्छा है मुझे महरी नही चाहिए।"

'इच्छा' का मचन जैसे जैसे बढने लगा, लोकमान्य नगर के लाग मेरी ओर आदर से देखने लगे। आसपास मेरी प्रशसा होने लगी। लोग निमत्रण देने लगे, 'हमारे घर चाय पीने आइए न!'

कभी दादा आता, तो कभी वसत बापट और लीलाधर! ऐसे लोग आने लगे, तो वे कहते, ' नगरकर कलाकर होते हुए भी बडा सादा रहना है।"

पत्नी को भी पडोस मे उठने बैठने के लिए बुला लगे । उनके बच्चा के साथ हमारे बच्चे खेलने लगे ।

'फालतू लडको के साथ खेलता रहता है' नालायक !' कहकर अपने बच्चा को डाटने वाले मा बाप 'इच्छा' नाटक देखकर दग रह गये । ''आइए न हमारे घर चाय के लिए !'' कहने लगे । इच्छा' का प्रभाव जिस तरह घर पर पडा उसी तरह दूकान पर भी पडा । लोग आपस मे बातें करते—

'अरे, जो 'हत्या' का काम करता है न उस नगरकर का एक सैलून है ।'

अच्छा ! कहा ?''

तिलक रोड पर । अरे, दूकान एकदम पास है । एयर कडीशड । स्वच्छ । सर्विस भी अच्छी है ।''

'फिर तो चलना चाहिए !''

इस तरह दूकान के ग्राहक बढ रहे थे । रसे, मैं अपने धन्धे का विज्ञापन भी करता था । लोगो को जान बूझकर बताता था ।

लीलाधर का सदेशा आया कि सेवादल की ओर से शकर पाटील लिखित लोकनाटक 'गल्ली से दिल्ली तक' बैठाना है । मैने जिम्मेदारी उठा ली । गणेशोत्सव मे दस जगह उसका मचन कर आया । एक एक मचन पुणे व बम्बई म, थियेटर मे किया । अखबार वालो ने भी उसे उछाला । सारे अखबारो मे प्रशसा हुई । लीलाधर ने उसकी प्रस्तुतियाँ शुरू की, इस कारण इच्छा' की प्रस्तुतियो मे कुछ बाधाएँ आयी । तब दादा कोडके ने तग आकर मुझसे कहा 'देखो राम, तुम्हें या तो इच्छा' छोडना होगा, या सेवादल ।'

तू जो कहेगा वही तारीख सेवादल को दूगा फिर क्या कठिनाई है ?'' मैने पूछा ।

अगर उसी तारीख म 'इच्छा' का मचन आया तो ?'' दादा ने सवाल के जवाब मे एक और सवाल जमा दिया ।

कही न कही तो समझौता करना ही होगा । मैंने अपनी स्थिति स्पष्ट की ।

"मुझे वही नही चाहिए।" दादा का दो टूक जवाब था।

हमारे बीच बहसें हुईं। सच तो यह था कि यह एक बहाना था। हमारे बीच कुछ अनबन पहले से थी। दादा की कई बातें मुझे न रुचती। मेरी बातें उसे न रुचती। कई बार आदमी अनजाने म कान का कच्चा हो जाता है। हमारा यही हुआ। हमम से ही कुछ लोग, उसे कुछ मुझे कुछ कहते। हम दोनो सच मानते रहते, परन्तु आमने मामने कभी एक दूसर को कुछ नही बताते।

"नगरकर, आप जो हँसी मजाक करते हैं, यह उन्हे पसन्द नही। आपकी सिफ 'एट्री' को तालियाँ मिलती हैं यह उनसे देखा नही जाता। देखिए, आपसे कहा न, कि यह 'कट' करो, वह 'कट करो' यह मत लो। वह मत लो। अब आप ही इसका अर्थ लगाएँ।' हममे से एक मुझसे कहता। मैं चुपचाप सुन लेता। वही व्यक्ति दादा के पास जाकर इससे उलटा बताता।

गोवा महाराष्ट्र मे रहे या स्वतन्त्र ? इसके लिए मतदान होनेवाला था। लीलाधर ने प्रचार हेतु उधर जाना तय किया। मैं भी उसके साथ हो लिया। दस पन्द्रह दिन का दौरा था। जब उसे निपटाकर लौटा, तो दादा चिढा हुआ था। मेरे कारण नाटक मे व्यवधान हुआ। मुझे 'इच्छा' को छोड देना पडा। मैंने उससे विदा ली, लेकिन प्रेम से। इसी सिलसिले मे कुछ दिन मैं खाली रहा। तब दूकान मे बैठा करता। बीच बीच मे सेवादल का कायक्रम करता रहता।

एक दिन अमृत गोरे मेरे पास आये। वे एक लोकनाटक तैयार कर रहे थे। उसमे मैं काम करूँ, यह उनकी इच्छा थी। साथ मे नीलू फूले और लीला गाधी। मैंने तुरन्त स्वीकृति दे दी और 'कथा अक्ल के दुश्मन की' नामक लोकनाटक का अभ्यास शुरू हुआ। लोकनाटक का विषय बडा अच्छा था। हम सबको बडा पसन्द आया।

'अक्ल के दुश्मन' के मचन धूम धडाके से शुरू हुए। पुणे-बम्बई मे उसके प्रदर्शनो की खूब सराहना हुई। इस लोकनाटक के डेढ दो साल मे दो ढाई सौ मचन हुए। फिर आगे अच्छे मचन के बावजूद शिथिल पड गया। परन्तु इस लोकनाटक के कारण हमको फिल्म लाइन म अवसर मिले।

नीलूभाऊ को 'एक गाँव हज़ार झझटें' फिल्म मिली और मुझे 'गोप ग्वालिन' मिली जिसमे से उसकी पिक्चर जोरदार चली, लेकिन मेरी पिट गयी। मेरी पिटी और मैं गिरा!

जिसका पहलो पिक्चर हिट हुई, वह भाग्यशाली! उसे तुरन्त दूसरी मिलती है। मेरी पिक्चर पिट गयी थी, इसलिए मुझे मौका नहीं मिला। फिर भी मेरी चार-पाँच पिक्चरें आयी। लोग मुझे 'सिने स्टार' भी कहने लगे। पर जैसा चाहिए वैसा प्रसिद्ध नहीं हो पाया।

इसी बीच मैं लाडली मैना जिसे मिरासदार ने लिखा था, लोक-नाटक के रूप में स्टेज पर आया। उसमें मैं और नीलूभाऊ आगे थे।

नाटक-पिक्चर के कारण दो पैसे हाथ में आ गये। जब पुणे जाता और साइकिल या रिक्शा से दोस्तों को मिलने जाता, उनमें से कोई कहता, 'क्या नगरकर साहब, अब एकाध मोटर साइकिल खरीदिए!"

'अरे बाबा मोटर साइकिल के लिए जेब में पैसे भी चाहिए!' मैं जवाब देता।

'स्साला, पैसों की चिन्ता आप जैसे करें? दुकान, नाटक, पिक्चर—चारों ओर से पैसा बरस रहा है, फिर भी रो रहे हैं!" वह ताने कसता।

दोस्त लोग इस तरह सोचते। यदि दोस्तों को बता दें कि हम सिनेमा से कितने पैसे मिलते हैं तो उन्हें सच नहीं लगेगा। इसलिए विवाद क्या करें? पर एकाध मोटर साइकिल ली जाय यह विचार मन में अवश्य आया। मैंने पूछताछ शुरू की। दूकान में आनेवाले ग्राहकों में से कुछ मैकेनिक थे। उनसे पूछा।

सकाल (सुबह) अखबार में विज्ञापन देखना! आने-जानेवाली मोटर-साइकिल स्कूटर की ओर जिज्ञासा से देखते रहना! इसी में मन डूबा रहता। वैसे मैं नाटकों सिनेमा में काम करता था, पर मेरी आय सीमित ही थी। और उसमें भी मैं दूसरे नम्बर का अभिनेता। ऐसे में भला मेरी क्या आय होगी! पर लोगों को विश्वास न होता, उन्हें लगता—'बेटा, खूब कमाता है। इसे क्या कमी है?' मैं भी सोचता कि अपने को कोई

'अमीर' समझे, तो समझने दीजिए। अपने बाप का क्या जाता है ?

एक बार पत्नी ने सहज लाड मे कहा था, "अजी, एकाध स्कूटर ले लीजिए कालोनी मे सबके पास स्कूटर है।"

उसका कहना सच था। लोकमान्य नगर मे, आसपास सभी के पास स्कूटर थे। सुबह दस बजे के आसपास उनमे से कुछ स्कूटरवाले बच्चो की जिद पूरी करने के लिए एकाध चक्कर लगा आते। यह सारा मेरे लडके देखते। उन्हें भी लगता, हमारा बाप भी हमे स्कूटर पर इसी तरह घुमाए। मैंने तय कर लिया, बच्चो की जिद पूरी करनी चाहिए। मैंने मोटर साइकिल खरीदने के लिए जोरदार पूछताछ शुरू कर दी।

कुछ लोग उपदेश भी देते, "क्या साहब, स्कूटर ले रहे हैं? अरे एकाध साढे-तीन हॉर्स पावर की रॉयल इनफील्ड या इंडियन लीजिए!

मैं कहता, "मुझे लगता है, शहर के लिए स्कूटर अच्छा रहेगा।"

"तो नया लीजिए, दो साल देखने की जरूरत नही।"

तब मैं कहता, "स्कूटर से जावा या राजदूत शायद जल्दी मिल जाये!"

"अरे, गाडी लेनी ही है तो होंडा लें! बस लोग देखते रहें!' सब एक एक बात बताते। मन इस गाडी से उस गाडी के साथ दौडता रहता।

बीच म ही दस दिन का दौरा कर आया। इस बीच मुझे मोटर साइकिल लेनी है, यह भूल चुका था। पर फिर किसी ने याद दिला दिया "क्या ले ली मोटर-साइकिल ?"

यादो के कपाट खुल गये। मन फिर उधर मॅंडराने लगा। मन ने हार मान ली। गाडी बाद मे देखेंगे, ऐसा सोच लिया। इतने म एक विज्ञापन पढा, "एक 'सुवेगा' बिकाऊ है। कीमत सिर्फ 1300 रुपये! हालत अच्छी।" देख भी आया। तय किया, यह गाडी लेनी चाहिए।

पहचानवाले मॅकेनिक को दिखायी। गाडी का एक चक्कर भी लगा आया। मॅकेनिक बोला, ' ले लीजिए, अच्छी है। 100 रुपय खर्च

होंगे मरम्मत के, फिर दो साल के लिए फुरसत। अहो, तेरह सौ में बहुत चीप! आज 2300 रुपये में नयी मिलेगी।"

मैकेनिक के इतना कहने के बाद खरीदने में क्या समय लगना था! एक हज़ार रुपये पास में थे। तीन सौ एक से उधार लिये और छोटी ही सही मगर एक मोटर-साइकिल ले डाली।

अपनी गाड़ी! अब तो मज़े-ही मज़े! किक मारी कि गाड़ी चल दी। दूसरे दिन भी वही किया। गाड़ी लेकर एक दोस्त के घर गया। सही उद्देश्य तो यह था कि कोई तारीफ करे। पर तारीफ रह गयी अलग, एक-एक ने ऐसा दाव चला कि मत पूछिए! "अरे वाह ये गाड़ी ली है? ज़रा देखें एक चक्कर लगाकर! कुछ पुरानी लगती है। कब का मॉडेल है?" ऐसा कहकर किक लगाकर वह गाड़ी पर बैठता और आधे घंटे के करीब घूमकर वापस आता। सच तो यह था कि वह अपना काई-न-कोई काम कर आता।

एक दोस्त चपू बोराटे ने कहा "अच्छी है पर स्टार्टिंग ट्रबल है इसमें। तो नयी लेनी थी।"

दूसरा मित्र बोला "वाह नगरकर, ये किसकी गाड़ी है? खरीदी है? बट, तुझे शोभा भी देती है यह? तेरा वज़न क्या है और गाड़ी क्या ली! सच तो यह था कि तू फियट, अम्बेसडर लेता।"

सदगुरु दत्ता मलवदकर का कहना था, "मैं कहता हूँ, तुझे गाड़ी की ज़रूरत ही क्या है? नाटक सिनेमा में बीस पच्चीस दिन तू बाहर घूमता है। फिर ये नखरा क्या?"

इस प्रकार के उपदेशों के डोज़ पिलाए जाते। मगर गाड़ी देखकर बच्चों को खुशी हुई—चलो अब गाड़ी पर चक्कर लगाएँगे। पर पत्नी कुछ नाराज़ थी। उसके मन में था कि पति अगर स्कूटर लेता तो कभी कभार उसे भी अन्य औरतों की तरह पीछे पति से सटकर बैठने को मिलता। पर क्या करती? फिर उसने कहा, 'अजी, ये क्या खटारा उठा लाये! आपको शोभा देता है? लेना ही था, तो नयी लेते। पुरानी उठा लाये!"

सच तो यह था कि मैं इन सारे उपदेशों से तंग आ गया था। उसमें पत्नी का उपदेश! गुस्से में बोला, "बस मारो! तुम्हें कुछ कहना है?

अरे, मैंने क्या कोई शो के लिए गाडी खरीदी है ? दूकान पर चक्कर लगा सकूं इसलिए ली है।"

मेरे गुस्सा होते ही पत्नी चुप हो बैठी। फिर मेरी नाराजी का अंदाज लगाती बोली "नाराज न हों, तो एक बात कहूँ ?"

"क्या ?" मैं गुर्राया।

'अब गाडी ले ही ली है, तो अच्छा रंग करवा लीजिए। ताकि लोगों को लगे कि नयी है।"

पत्नी की सलाह मन को अच्छी लगी।

दूकान के पडोस मे जो फूलवाला था, उसके पास बापू नाम का मैकेनिक हमेशा आता था। उसकी कुशलता का गुणगान फूलवाला करता रहता। वैसे वह हमारी दूकान मे भी आया करता था बैठता था। हमारी पहचान भी थी।

इतने करीब का मैकेनिक मिल जाने की खुशी थी। मैंने अपनी गाडी की पेंटिंग की बात की। वह बोला, 'हां, मुझे दीजिए। ऐसा फस्स क्लास रंग पेंटिंग करूँगा कि लोग कहेंगे, नयी गाडी है।"

ऐसा उत्साह बँधाने पर, मैं भला कब पीछे हटनेवाला था ? खर्च की बात पूछने पर बोला, "सेठ, आपकी ओर से क्या हम नफा लेंगे ? आप हमारे आदमी अपना समझकर काम करेंगे। देखते रहिए।"

इस तरह गाडी उसके हवाले करके मैं दौरे पर निकल गया।

दौरा पंद्रह दिन का था। वापस आया। मैकेनिक बापू से मुलाकात की। गाडी के बारे मे पूछा उसने बताया, ''अल्का के पास रँगने के लिए दी है। आठ दिन मे मिलेगी।"

मैं हर आने जानेवाली सुवेगा की ओर उत्सुकता से देखता। पूछ ताछ करता। बतानेवाले कहते, "गाडी अच्छी है, रिपेयर का खर्च कम है। एक लीटर म इतने किलोमीटर जाती है।"

अब ऐसा लगने लगा कि हां, सचमुच 'सुवेगा' लेकर मैंने बुद्धिमानी की है। जब साइकिल मेरा वजन ढो लेती है, तो सुवेगा तो उससे

मजबूत हूं। अच्छा, मुझसे भी मोटे लोग 'सुवेगा' से जाते दिखायी देते। ऐसे में यह बात सच न लगती कि मुझे यह गाड़ी शोभा नहीं देती।

आठ दिन बीते। बापू से मुलाकात की। पूछा, "भई, गाड़ी का क्या हुआ?

"पहला काट लिया है। दो हाथ और घुमाने पड़ेंगे, साहब! जल्दी मत कीजिए।" उसने बताया।

अब तक गाड़ी के काम के लिए बापू ने सौ रुपये ले लिये थे। गाड़ी का काम कितना हुआ, क्या और चाहिए यह सब खुद जाकर देखने की इच्छा हुई। अच्छा, गाड़ी सिर्फ मैंने तीन दिन ही 'वापरी' (प्रयोग की) थी। बापू के पीछे लगा। अंत में वह मुझे लेकर रंग करने वाले के पास गया और मैंने अपनी गाड़ी के दर्शन किये।

अरे! अरे! क्या गाड़ी थी! सारा अस्थि पंजर अलग अलग! क्लच, एक्सिलेटर के तार झूल रहे थे। पैडल दयनीय स्थिति में गर्दन झुकाकर लुढ़का पड़ा था। जैसे बीमार दोस्त को हास्पिटल देखने जाने पर उसके चेहरे की ओर देखकर हम उससे कहते हैं, जल्दी ठीक हो जायेगा उसी तरह मैं गाड़ी की ओर देख रहा था और आगे के सपने बुन रहा था। गाड़ी तैयार हो गयी है मैं उस पर शान से बैठा हूं और रास्ते में गाड़ी बेतहाशा भाग रही है पहचान के लोग देख रहे हैं कुछ हाथ उठाकर नमस्ते कर रहे हैं।

फिर भी आठ दिन लगेंगे। बापू ने मुझे बताया और तभी सपने की गाड़ी में ब्रेक लग गया।

हर माह नाटक और आउटडोर शूटिंग का कार्यक्रम चलता। मैं हमेशा पुणे से बाहर रहता।

कुछ दिन बाद पुणे आया। तब तक बापू और सौ रुपये ले चुका था। अर्थात अब तक उसने दो सौ रुपये ले लिये थे। इसलिए, जहाँ गाड़ी

रँगने डाली थी, मैं वहीं गया। बापू भी वहीं था। गाडी के कुछ पुर्ज़े वह ठोक पीट रहा था। मेरी ओर बापू ने देखा। मुझे उसकी कुछ मालूमात न थी। बापू दनादन ठोके जा रहा था। मैं देखता हुआ खडा था। मेरी ओर बापू ने देखा और हँसते हुए बोला, "यह पुर्ज़ा नहीं निकल रहा है। इसी के कारण रँगने का काम पडा रहा।"

"पर पुर्ज़ा टूट गया, तो?" मैंने शंका जाहिर की।

"टूट गया, तो नया डाल देंगे वैसे यह महँगा नहीं है। और इसे निकाले बिना रँगना व्यर्थ होगा।" उसने जवाब दिया।

मैं भला क्या बोलता?

सिर्फ रँगने में ही ढाई-तीन महीने निकल गये।

गाडी लेते ही बच्चे खुशी से नाचने लगे थे। 'पिताजी के पीछे बैठकर मैं पहला चक्कर लगाऊँगा,' इस बात पर आपस में झगड रहे थे। मैं घर आता कि पूछते, "हमारी गाडी कब आयेगी?"

मन में आता कि बापू की खबर ली जाये। उससे पूछा जाये कि 'तू तो आठ दिन में गाडी देनेवाला था! दो महीने हो गये, फिर भी गाडी तैयार नहीं है! तुम्हें क्या कहे?'

पर तुरन्त लगता, मेरे ऐसा कहने से अगर उसने गाडी के बारह बजा दिये तो? ऐसे में खुशी खुशी अपना काम करवा लेने में ही समझदारी है। जान जो फँस गयी है!

संयोग से बापू दुकान पर आया। उसे होटल ले गया। नाश्ता करवाया। वह जब खा पी रहा था तब मैंने गाडी की बात शुरू की, 'बात ये है कि गाडी अभी तक मेरे नाम नहीं है। अच्छा आर० टी० ओ० में गाडी दिखाये बिना मेरे नाम होगी भी नहीं, यह तुम्हें मालूम ही है। ऐसे में, यदि गाडी जल्दी हो गयी तो अच्छा होगा! इसलिए कहता हूँ।'

आठ दिन में गाडी दे दूँगा। बस?" इतना कहकर बापू चला गया।

सच ! क्या आठ दिन में बापू गाड़ी दे देगा ? उसने दो महीने में तो कोई ढंग का काम किया नहीं ! मन में आया, इसकी पूछताछ ठीक से करनी चाहिए। मगर नाटकों में मगन रह हो गये थे। दिन खाली थे। सोचा इसका लाभ लेना चाहिए। इसलिए उसके पीछे पड़ा।

सच तो यह था कि बापू रिक्शा का फिटर था। उसने अपने एक ऐसे दोस्त को गाड़ी दी थी जिसे 'सुवेगा' की जानकारी थी। उस पट्ठे ने गाड़ी पेंट कर उसी तरह रखी क्योंकि बापू ने पैसे नहीं दिये थे। फिर बापू के साथ उसके घर गया। उसे कुछ स्पेयर पार्ट (जो बापू ने ठोक पीटकर निकाले थे और जिनमें से कुछ टूट गये थे) लाने के लिए पैसे दिये।

गाड़ी के स्पेयर पार्ट की पुणे में एक ही एजेंसी थी। उनके नियमानुसार उनके पास जो गाड़ी रिपेयर के लिए आती सिर्फ उसी का स्पेयर पार्ट देते, अन्यथा नहीं।

बापू और उसके दोस्त ने जूना बाजार, नया बाजार घूमकर पार्ट्स इकट्ठे किये और किसी तरह गाड़ी तैयार हुई।

मालिक, शाम को गाड़ी दुकान पर लेकर आता हूँ। बापू ने आश्वासन दिया।

मैंने भी यह खुशखबरी घर में सुना दी। बच्चे नाचने लगे। पत्नी ने भी आसपास के पड़ोसियों को बताया, 'अरी हमारे इन्होंने गाड़ी ली है।

बापू के बताये अनुसार मैं उत्सुकता से गाड़ी की राह देख रहा था। छह बजे, सात बजे और आखिरकार आठ भी बज गये, पर बापू के आने के कोई लक्षण दिखायी न दिये। मन में बापू के लिए इतना गुस्सा था कि क्या कहूँ ! पर क्या करता ! अपनी चीज उसके पास फँसी पड़ी थी।

दुकान का हिसाब कर रहा था कि इतने में बापू बाहर गाड़ी पर बैठा लगातार हॉर्न बजाता दिखायी दिया। कितना आनन्द हुआ उस क्षण !

'देखिए सेठ, गाड़ी कितनी शानदार हो गयी है ! अब दो साल की फुरसत ! ' बापू चाबी गाड़ी मेरे हाथों में देता बोल रहा था। मैं गाड़ी पर बैठ गया और एक चक्कर लगाया। इसके बाद बापू चला गया। जाते-

जाते पचीस रुपये और ले गया।

फिर मैं घर आया। साढे नौ बजे होंगे। बच्चे सो गये थे। पत्नी जाग रही थी। कॉलोनी सुनसान थी। सोचा, लोग जगे होते तो !

मैं जोर जोर से हॉर्न बजा रहा था।

हॉर्न कौन बजा रहा है, यह पत्नी ने खिडकी से देख लिया था। पर सब बेकार। जब आवाज दी, तब खिडकी के पास आयी।

"अरी ए, देख, गाडी ले आया।"

मैंने जोर स चिल्लाकर कहा। उद्देश्य एक ही था, आसपास के लोग सुनें, पर बेकार।

अपना पति गाडी पर बैठा है, यह देखकर पत्नी चिल्लायी, "जरा रुकिये, ऊपर मत आइए।"

पत्नी की राह देखना मैं उसी तरह खडा रहा।

पत्नी हाथ मे सिन्दूर की डिबिया ले आयी। पानी से भरा लोटा और रोटी का टुकडा। मैं सब खडा देखता रहा। मैं कुछ बोलू, इससे पहले उसने गाडी को सिन्दूर लगाया, रोटी का टुकडा मुझ पर से और गाडी पर से उतारा और पैर समझकर गाडी के चक्के पर पानी डाला।

यह सब होगा, इसकी मुझे जानकारी नही थी और मेरी तकदीर कि यह सब देखने के लिए कॉलोनी का कोई भी नहीं जाग रहा था।

सुबह बच्चो की हडबडी म ही नीद खुली।

'पिताजी, मुझे पहले!"

"नही! मैं पहले!" इस तरह वे आपस मे झगड रहे थे।

उनको बहुत उतावली थी कि कब पिताजी के साथ गाडी पर बैठें। उनकी उम्र क लडके अपने पप्पा की गाडी पर बैठकर चक्कर मार आते। वह सारा ये देखते रहते।

'तुम्हारे पप्पा के पास कहाँ गाडी है?" इस तरह वे लडके मेरे बच्चो को चिढाते। उन लडको को मेरे बच्चा ने पहले ही बता दिया था कि आज हम अपने पप्पा की गाडी पर घूमने जायेंगे।

हमेशा की तरह मैं साढे आठ नौ बजे उठा। अर्थात कुछ जल्दी ही। वह भी बच्चों की गडबडी स। प्रातःकालीन दिनचर्या निपटाकर दस बजे

नीचे उतरा। तब तक अपने मित्रों को लेकर बच्चे तैयार थे।

मैं कुछ इतनी शान से उतरा, जैसे रेसकोर्स पर रेस में उतरने से पहले जाकी घोड़े के साथ लोगों के सामने जाता है। मैं ठीक उसी तरह बच्चों के सामने से गाड़ी की ओर बढ़ रहा था। जाते-जाते यूँ ही आसपास, ऊपर नीचे, देखा। सारे लोग अपना काम छोड़कर मेरी ओर कुतूहल से देख रहे हैं, ऐसा मुझे आभास हुआ।

मैंने गाड़ी हाथ में ली। रास्ते पर लाया। मेरे बच्चे 'मैं पहला', 'मैं पहला,' कहते चिल्लाने लगे।

'ठहरो! पहले गाड़ी स्टार्ट होने दो!' मैं गाड़ी पर चढ़ता चिल्लाया।

गाड़ी पर चढ़ा। गाड़ी स्टार्ट करने लगा। दो चार किक लगायी, पर गाड़ी स्टार्ट न हुई।

मैंने लाचारी में ऊपर देखा। मुझे लगा, मेरी पत्नी सहित सारे लोग मुझे देख रहे हैं।

बच्चों की हड़बड़ी थी कि कब गाड़ी पर बैठें? गाड़ी पर बैठने का अपना पहला नम्बर कब लगेगा इसलिए वे छटपटा रहे थे।

मैं गाड़ी को नीचे से ऊपर तक यूँ ही देख रहा था मानो उसमें कोई खराबी हो गयी हो। कभी पेट्रोल देख, कभी ये देख कभी वो देख! इस तरह नखरे करता रहा।

फिर दो चार छह किक मारी पर गाड़ी स्टार्ट न हुई। गाड़ी धक्के से भी स्टार्ट होती है, यह देख चुका था। वैसा किया जाये, यह तय किया।

'ए तुम सब धक्के लगाओ!' अपने बच्चे सहित सभी एकत्र लड़कों से मैंने कहा।

सारे बाल गोपाल तैयार हो गये। दो सौ पौंड का हुड्ड उस गाड़ी पर बैठा और दस बारह बच्चे धक्का लगाने को तैयार हुए। सात से दस साल के बीच के सारे बच्चे! दो चार धक्कों में ही वे थक गये। पर गाड़ी हिलने तक को तैयार न थी। मैंने फिर दिमाग दौड़ाया।

गाड़ी लेकर दौड़ता और थोड़ी स्टार्ट होते ही उछलकर बैठ जाता। मैं जैसे ही दौड़ता, सारे बच्चे चिल्लाते निकलते। मैं बैठता, गाड़ी कुछ

दूर दौड़ती कि बच्चे तालियाँ बजाते। फिर बंद हो जाती। मैं फिर गाड़ी को लेकर दौड़ता। बच्चे फिर मेरे पीछे चिल्लाते दौड़ते। गाड़ी स्टार्ट हुई कि फिर तालियाँ। चार-पाँच बार ऐसा ही हुआ। आखिरकार बच्चे थक गये। मैं तो कब का थक चुका था। इसी चक्कर में, मैं सारी कॉलोनी का चक्कर लगा आया था। मेरी गाड़ी का वैभव करीब करीब सभी देख चुके थे। फिर भी गाड़ी स्टार्ट न हुई। तकदीर जोरदार थी कि यह भाग दौड़ रविवार को छुट्टी के दिन चल रही थी।

हमारे एक पड़ोसी श्री लुल्ला को गाड़ी की (स्कूटर की) कुछ जानकारी थी। मेरी यह फजीहत देखकर उन्होंने अपने घर की खिड़की से पूछा, "नगरकर, गाड़ी में कुछ खराबी है ?"

सच तो यह था कि इस प्रश्न से मैंने अपने आपको अपमानित अनुभव किया। दो सौ पचास रुपये खर्च करके बापू जैसे कुशल मैकेनिक से गाड़ी तैयार करवायी और लुल्ला पूछ रहे हैं कि गाड़ी में कुछ खराबी है ? मन में लगा, अब सारी इज्जत खराब हो जायेगी। इसलिए मैंने लुल्ला को बताया, "लुल्लाजी, अजी, पेट्रोल खत्म हो गया, यह ध्यान में ही नहीं रहा। इसीलिए देखिए न कितनी झंझट हो गयी।"

इस प्रकार मैंने उनसे झूठ बोलकर किसी तरह अपनी इज्जत बचा ली और गाड़ी हाथ से ढकेलता हुआ दूकान पर लाया। फूलवाले से पूछा "बापू कहाँ गया ?"

उसने बताया, "बापू रिक्शा लेकर निकलूण गया है। पाँच-छह दिन नहीं आयेगा।'

यह सुनकर मैं ठंडा पड़ गया। चार दिन बाद मुझे कोल्हापुर जाना था। अब प्रश्न था, इस गाड़ी का क्या किया जाये ? कौन-सा मैकेनिक पकड़ें ? दिन भर गाड़ी दूकान के सामने खड़ी रखी। संयोग से उस दिन एक मैकेनिक दूकान में आया। उससे अपना रोना रोया। उसने गाड़ी को नीचे से ऊपर तक देखा और बोला, 'आप इस गाड़ी को, मेरी मानिए तो उस कम्पनी में ही डालिए। उसके पास इसके सारे स्पेयर-पार्ट्स ही होते हैं। इस गाड़ी को छोड़कर किसी और गाड़ी का काम ही नहीं करते।'

"अजी, अभी हाल ही म रिपेयर करायी है ।"

"किसने की ?"

"बापू महाडिक—साले ऐंड माल गरज म रहता है, वह !

'अजी उस रिक्शे की अच्छी जानकारी है । इसम वह क्या समझेगा ? अब आप उसी कम्पनी मे जाइये !' इतना कहकर मैकेनिक चला गया ।

सोमवार आया । दूकान बन्द । सोच विचार म ही दिन निकल गया । गाडी घर आयी । गयी । पत्नी-बच्चे गाडी के बारे म पूछते रहते । अब उन्हें क्या बताऊँ ? बच्चो के मित्र उन्हें 'धन्न ! तेरे पिता की गाडी फुस्स !' कहकर चिढाने लगे । बच्चो के पास या मेरे पास कोई उत्तर न था ।

दो एक की सलाह और ली । अन्त म मगलवार को गाडी लेकर उस कम्पनी मे गया ।

आइए नगरकर !' कम्पनी के मैनेजर विमलराव ने मेरा स्वागत किया । वैसे मेरी पहचान नही थी । पर उसकी बातो से लगा कि वह हमारा कदर होगा ।

चलो अच्छा हुआ अपनी पहचान का निकला ! मन को अच्छा लगा क्योकि आज की समझ के अनुसार पहचान से कोई भी काम सस्ता और ठीक हो जाता है ।

'गाडी रिपेयर करानी थी ।" मैंने कहा ।

गाडी की छोडिए भी ! अभी पिक्चर कौन सी चालू है ?'

मैंने उन्हें सब बताया । बताने का उद्देश्य था कि वे मेरी गाडी ठीक से बना दें । परन्तु विमलराव हमारे धन्धे का पीछा छोडनेवाले नही थे ।

यानी अभी जोरदार चल रहा है !"

'हाँ, हाँ ! अब गाडी देखेंगे जरा ?" मैंने उनका ध्यान गाडी की ओर खीचा ।

फिलहाल नीलूभाऊ कहाँ है ?' उनका अगला सवाल आया ।

कोल्हापुर म गाडी अभी रिपेयर करायी थी पर चल नही रहा है ।'

"आप दोनो तो बस लॉरेल हार्डी की जोडी हैं।"

स्वय के विनोद पर वे स्वय हँसे। ऐसा लगा कि भागें। गाडी लेकर चलते बनें। पर इतने मे उन्होने चाय का जो ऑर्डर दिया था, वह आ गयी। चाय ली। उन्होने अपने मैकेनिक को गाडी देखने को कहा। इसके बाद बोले, "नगरकर, आप आठ दिन बाद आइए! इस गाडी को एक वन कर दूगा।"

सच तो यह था कि पहले ही ढाई सौ खर्च कर चुका था। और कितने लगेंगे, इसका डर था। इसलिए डरते डरते पूछा, "लेकिन खर्च कितना पडेगा?"

"अजी ऐसा कौन सा खर्च पडेगा? और फिर आप खर्च की चिन्ता करें! कमाल है।"

किसनराव अपने पिछले विनोद पर फिर हँसे।

"फिर भी?" मैंने जोर देना चाहा।

"चिन्ता मत कीजिये। आप हमारे हैं। आपसे क्या ज्यादा लेंगे?" उन्होने बात फिर आयी गयी कर दी। लेकिन इस वाक्य से मेरी सतुष्टि हुई। नमस्कार किया और खुशी खुशी बाहर आया।

'हृद्या नारमा' और 'थापाड्या' (गपोडिया)—इन दो फिल्मो की शूटिंग धूम धडाके मे चल रही थी। बीच बीच मे नाटक भी चल रहे थे। इस तरह दो तीन महीने निकल गये। जैसे ही समय मिलता, कम्पनी मे चक्कर लगा आता। गाडी का काम कहा तक हुआ, पूछ आता। वैसे मुझे, फिलहाल काम की भाग-दौड होने के कारण गाडी की आवश्यकता नही थी। मालिक को गाडी की आवश्यकता नही है, यह जानकर उसकी रिपयरी का काम मन्द गति से चल रहा था।

दो तीन बार गया। एक बार नीलूभाऊ के साथ भी गया। उद्देश्य यही था कि उसके कारण पैसे कुछ कम पडेंगे। जब जब किसनराव से बिल के बारे मे पूछता वह एक ही जवाब देते—"बिल की इतनी चिन्ता क्या करते हैं? वह भी हमारे रहते हुए!"

एक मुलाकात में बताया, 'नगरकर, काफी नया सामान उसमें डालना पड़ा। अजी, आपके इस बापू ने पता नहीं क्या क्या पार्ट डाल रखे थे। गाड़ी चलती भी तो कैसे ?'

मेरी गाड़ी रिपेयर हो रही थी। होने वाली रिपयरिंग को छोड़कर अब तक तेरह सौ और बापू के चक्कर में तीन सौ, इस तरह सोलह सौ रुपये की रकम लग गयी थी। इसी बीच पेपर में नयी लूना गाड़ी का विज्ञापन आया। कीमत साढ़े सत्रह सौ थी। मन का रोना शुरू होने लगा। कोल्हापुर रहते हुए कम्पनी का पत्र आया कि गाड़ी ले जाइये।

पत्र लिया। कम्पनी में गया। उन्होंने जो बिल बताया उसे सुनकर यह न सूझा कि अपने भाग्य पर हँसें या रोयें ! बिल का आँकड़ा था— चार सौ पचीस रुपये !

मैंने किसनराव से घिसघिस की, पर बेटा, पक्का धन्धेवाला। उसने जो एक एक बात बतायी उसे मैं सुनता ही रह गया ! उन्होंने बताया, "कोई भी गाड़ी खोली कि उसके कुछ पार्ट बेकार हो जाते हैं। उस पर आपके बापू की शैतानी ! गाड़ी की मशीन नाजुक होती है। फिर, गाड़ी को रंग लगाने की आवश्यकता नहीं थी। कुछ न बिगड़ता। अच्छी गाड़ी की इच्छा होने पर हमेशा नयी ही खरीदनी चाहिए। मेरी मानिये तो ये गाड़ी अब फूँक डालिए। आप अपने हैं इसलिए फायदे की बात बताता हूँ। गाड़ी की वेल्डिंग भी हुई है। आप अब इसे नहीं ही चलाइए। नहीं तो, कभी आपको भी धोखा हो सकता है। इसका कोई भरोसा नहीं।"

'कितने तक चली जायेगी ?' मेरा दयनीय सवाल था।

'सुवेगा अब तेईस सौ की और लूना साढ़े सत्रह सौ की। फिलहाल पूना की दौड़ लूना की ओर है। अब कोई बाहर गाँव का ही आया तो अच्छी कीमत दे सकेगा।' किसनराव बोले।

"फिर भी कितना लेना चाहिए ?" मैंने पूछा।

'वैसे पन्द्रह सोलह सौ में जानी चाहिए। पर यह कीमत पुणे में नहीं मिलेगी। पुणे में बहुत हुए तो बारह सौ मिलेंगे। बस्स।'

यह सब सुनकर अपनी मूर्खता का पूरा पूरा अहसास हो गया। तब

किया कि इसके बाद गाड़ी के चक्कर में नहीं पड़ना है। कम-से कम पुरानी के पीछे तो बिलकुल नहीं। परन्तु सवाल सामने था कि—अब इस गाड़ी का क्या करें। आखिरकार किसनराव ने ही कहा 'अब, आप ही दान कर दीजिए!" और मरम्मत के पैसे देकर ठंडे दिल से घर की ओर लौट पड़ा। मैं अपनी ही उधेड़बुन में चला जा रहा था कि तभी एक साइकिल वाले से टक्कर हो गयी। मेरी झुंझलाहट गुस्से में बदल गयी। मैंने डपटकर कहा, 'साइकिल चलाते हो या हजामत करते हो।''

कहने को तो झुंझलाहट में मैं कह गया, पर हजामत वाली बात से मुझे घर आने पर ही बहुत हँसी आ रही थी।

□□